स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक नाटक

Social Dramas Of Post Independence Period

Thesis Submitted to
THE UNIVERSITY OF COCHIN
For The Degree Of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

RAJALAKSHMY. A
राजलक्ष्मी. ए

Prof. And Head of the Dept.
DR. N. RAMAN NAIR

Supervisor
DR. A. RAMACHANDRA DEV
(READER)

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN-22
1980

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of research work carried out by A. RAJALAKSHMY under my supervision for Ph.D. Degree of the University of Cochin and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any other University.

Department of Hindi,
University of Cochin
Cochin-22

A. Ramachandra Dev

Dr. A. RAMACHANDRA DEV
M.A., Ph.D.
Supervising Teacher

ACKNOWLEDGEMENT

The work was carried out in Department of Hindi, University of Cochin, Cochin-22 during the tenure of Junior Research Fellowship awarded to me by the University of Cochin. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin and the University Grants Commission for this kind help and encouragements.

Cochin, 682022 |
30th, August, 1980 |

A. RAJALAKSHMY

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन ... 2-9

अध्याय - 1 10-42

आधुनिक साहित्य का अरुणोदय

अंग्रेजों का आगमन - भारत की तत्कालीन परिस्थिति राजनीतिक परिस्थिति - सामाजिक परिस्थिति - आर्थिक परिस्थिति - धार्मिक परिस्थिति - ब्रिटीश सत्ता की स्थापना और प्रसार - भारतीय जीवन में आधुनिकता - मध्यवर्ग का उदय - अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार प्रसार - अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव - सांस्कृतिक आन्दोलन, ब्रह्मसमाज - प्रार्थना समाज - थियोसिफिकल सोसेटी - आर्यसमाज - रामकृष्ण मिशन - भारत में मुद्रणालयों का प्रचार - हिन्दी प्रदेश में मुद्रणालय मिशनरियों का कार्य - भारतीय सहयोग - पत्र-पत्रिकाएं - भारतीय साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव - गद्य का प्रसार, अन्य साहित्यक प्रकार - प्रान्तीय भाषाएं और साहित्य - भारतेन्दु की क्रान्तदर्शिता - हिन्दी गद्य का प्रसार संस्थाओं का योगदान - फोर्ट विलियम कोलेज - हिन्दी के विकास में सांस्कृतिक संस्थाओं का योगदान शिक्षा संस्थाएं - मिशनरियों का हिन्दी गद्य - प्रत्यवलोकन - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - 2 43-90

आधुनिक साहित्य का सामाजिक परिवेश

साहित्य और साहित्यकार - समाज के प्रति साहित्यकार का दायित्व - क्रान्तदर्शी ही साहित्यकार है - साहित्य और सामाजिकता हिन्दी उपन्यासों में सामाजिकता - कहानी में सामाजिकता - काव्य में सामाजिकता - निबन्ध साहित्य का सामाजिक परिदृश्य - प्रत्यवलोकन - निष्कर्ष ।

अध्याय - 3 ... 91-103

नाटक और उसकी सामाजिक संवेदना

कला और सामाजिक जीवन - नाटक : एक सामाजिक कला - नाटक के प्रकार - नाटककार का सामाजिक दायित्व सामाजिक यथार्थ का चित्रण पश्चिमी नाटकों में - आधुनिक हिन्दी नाटकों में सामाजिकता - निष्कर्ष ।

अध्याय - 4 104-147

भारतेन्दु कालीन नाटकों में सामाजिक निरूपण

राजनीतिक परिस्थिति - सिपाही गदर - ब्रिटीश सम्राज्ञी की घोषणा और प्रतिक्रिया - कांग्रेस की स्थापना - देशी रियासतें - सामाजिक परिस्थिति -

पृष्ठ-संख्या

जाति-पाति की भावना - अस्पृश्यता का भीषण
रूप - संयुक्त परिवार प्रथा - दहेज प्रथा - बाल
विवाह - अनमेल विवाह - कुलीन प्रथा और
बहु विवाह - विधवाओं की हीन दशा -
सती प्रथा - पर्दे का प्रचलन - नारी की करुण
दशा - अंग्रेजी फैशन - आर्थिक परिस्थिति -
ब्रिटीश सत्ता का आर्थिक शोषण - खेती की
दशा - भूमि कर नीति - अकाल - धार्मिक
परिस्थिति - हिन्दू मुस्लिम संघर्ष - धर्म की
स्थिति - पुरोहित वर्ग का अत्याचार -
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - नाटक युग - भारतेन्दु
की नाट्य कृतियों - मौलिक कृतियां - अनूदित
कृतियां - मौलिक नाटकों में सामाजिकता वैदिकी
हिंसा - हिंसा न भवति - प्रेम जोगिनी - विषस्य
विषमौषधम् - चन्द्रावली - भारत दुर्दशा - नीलदेवी
अन्धेर नगरी - सती प्रताप - सामाजिक चेतना:
अनूदित नाटकों में विद्या सुन्दर - पाखण्ड
विडम्बन - धनंजय विजय - सत्य हरिश्चन्द्र - कर्पूर
मंजरी - भारत जननी - मुद्रा राक्षस - समसामयिक
नाटककार - मंडली नाट्य कृतियों में सामाजिक
चेतना - फुटकल रचनाएं - प्रत्यवलोकन -
निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - 5 ... 148-214

प्राक् स्वाधीनता युग के नाटकों में सामाजिकता

राजनीतिक परिस्थिति - बंग-भंग - मुस्लिम लीग की स्थापना - स्वराज्य की माँग - प्रथम विश्व युद्ध - महात्मा गांधी का पदार्पण असहयोग आन्दोलन - चौरी चौरा कांड - साइमन कमीशन का विरोध - सविनय अवज्ञा आन्दोलन - द्वितीय विश्वयुद्ध और भारतीय राजनीति - व्यक्तिगत सत्याग्रह - पाकिस्तान की माँग - भारत छोड़ो आन्दोलन - आन्दोलन का सक्रिय रूप - सुभाष चन्द्र बसु और आज़ाद फौज - नौ सेना विद्रोह - भारत विभाजन और स्वतंत्रता प्राप्ति - सामाजिक परिस्थिति नारी जागृति - वैवाहिक स्वरूप में परिवर्तन जाति-पाँति का विरोध - अस्पृश्यता निवारण और हरिजनोद्धार - मद्य निषेध - खादी का प्रचार सरकारी स्कूलों और उपाधियों का त्याग - हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयत्न - संयुक्त परिवार का विघटन - पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव - आर्थिक परिस्थिति - कृषक आन्दोलन - मज़दूर आन्दोलन - किसान और मजदूर संगठन ट्रेड यूनियन - आर्थिक स्थिति पर दोनों युद्धों का प्रभाव - बेकारी की उग्रता और बंगाल का दुर्भिक्ष

पृष्ठ-संख्या

भारत का औद्योगिक विकास - धार्मिक परिस्थिति -
हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष - धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन -
प्रसाद के नाटकों में सामाजिक चेतना - राज्यश्री -
विशाख - अजातशत्रु - कामना - जनमेजय का
नागयज्ञ - स्कन्दगुप्त चन्द्रगुप्त - ध्रुवस्वामिनी
हरिकृष्णप्रेमी - लक्ष्मी नारायण मिश्र - सेठ गोविंद
दास - पं॰ उदयशंकर भट्ट - उपेन्द्र नाथ अश्क -
वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यवलोकन - निष्कर्ष ।

अध्याय - 6 ... 215-240

स्वतंत्र भारत की सामाजिक - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक परिस्थिति - महात्मा गांधी का
बलिदान - देशी राज्यों का विलयीकरण -
गणतंत्र का उदय - पंचशील तत्व - जनतंत्रात्मक
समाजवादी शासन - व्यवस्था - भाषावार प्रान्तों
की मांग - भारत पर चीनी आक्रमण - भारत-
पाक युद्ध - सामाजिक परिस्थिति - पारिवारिक
विघटन - वैवाहिक मान्यताओं में परिवर्तन - प्रेम
और यौन संबंधों में जटिलता - दाम्पत्य जीवन में विघटन
जात पाँत में शैथिल्य - हरिजनोद्धार - ग्राम पंचायत -
भ्रष्टाचार और स्वार्थ भावना - पश्चिमी सभ्यता का
अन्धानुकरण - आर्थिक परिस्थिति - खाद्यान्न की
समस्या - पंचवर्षीय योजनाएं - जमीन्दारी की समाप्ति
औद्योगिक विकास - श्रमिक वर्ग - पूंजीपति वर्ग -
भूदान आन्दोलन - बेकारी - अकाल और अनावृष्टि

पृष्ठ-संख्या

महंगाई - धार्मिक परिस्थिति - धर्म का अभिनव रूप - धर्म - निरपेक्षता - धर्म, राजनीति और सांप्रदायिक संघर्ष - वसुधैव कुटुम्बकम् - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य: एक दृष्टि - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - निष्कर्ष ।

अध्याय - 7 ... 241-278

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों का राजनीतिक परिवेश

देश विभाजन - प्रजातंत्र का समर्थन - पंचशील तत्व - विदेशी आक्रमण - देश प्रेम और स्वातंत्र्य सुरक्षा - राष्ट्रीय एकता - स्वतंत्रता और समान अधिकार संकीर्णता का विरोध - राष्ट्र भाषा और खादी सर्वोदय - गांधीवाद का समर्थन - राजनीति की दाव पेंच - दलों में मुठ भेड - सुयोग्य नेताओं की कमी - नेताओं का चारित्रिक पतन - पुलिस का अत्याचार - टूटे हुए सपने - प्रत्यवलोकन - निष्कर्ष ।

अध्याय - 8 279-378

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्रस्फुटित सामाजिक विचारधाराएं

नारी जागरण - नारी स्वातंत्र्य - जाति-पाति का विरोध - प्रेम और वैवाहिक जीवन - हरिजनोद्धार और ग्राम जीवन - भ्रष्टाचारों की भयानक व्याप्ति पैसा ही परमेश्वर है - पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव - आधुनिक शिक्षा की आलोचना - उच्च-नीचत्व का विरोध

पृष्ठ-संख्या

पीढ़ियों की दरार - सामाजिक अन्धविश्वास -
पारिवारिक संबंधों में विघटन - मद्य निषेध -
कुंठा और निराशा - निष्कर्ष ।

अध्याय - 9 ... 379-414

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में आर्थिक परिवेश

भारत का आर्थिक ढांचा - निर्धनता - बेकारी -
महंगाई - जमाखोरी और चोरबाज़ारी - आर्थिक
असमानता - गरीबों का शोषण - पूंजीपति -
शोषण - ज़मीन्दारी की समाप्ति - कृषक आन्दोलन
कृषक जीवन में सुधार - गावों की सफाई और
और ग्रामीणों का स्वास्थ्य - कृषि सुधार और
सरकारी कार्यक्रम - मज़दूर जागरण - भूदान यज्ञ
और कुटीर उद्योग - प्रत्यवलोकन - निष्कर्ष ।

अध्याय - 10 415-444

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में धार्मिक परिस्थिति का प्रतिफलन

स्वतंत्र भारत में धर्म - धर्म के नाम पर शोषण -
मिथ्याचार और बाह्याडम्बर - धर्माधिकारियों के
घृणित जीवन की निन्दा - धर्म का सच्चा स्वरूप
क्या है ? - धर्म और राजनीति का गठबन्धन -
धार्मिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता का भाव - धर्मों का
समान महत्त्व - एकेश्वरवाद - अन्धविश्वासों की आलोचना

पृष्ठ-संख्या

एकता का सन्देश - दीवारें गिरती हैं - आधुनिक सामाजिक चेतना का प्रभाव - धर्म में मानवतावाद का प्रवेश - प्रत्यवलोकन - निष्कर्ष ।

उपसंहार ... 445-449

सहायक ग्रंथ सूची 450-475

1. प्रबन्ध में वर्णित नाटक
2. आलोचनात्मक ग्रंथ (हिन्दी)
3. आलोचनात्मक ग्रंथ (अंग्रेजी)
4. पत्र-पत्रिकाएं

प्रा क्क थ न

प्राक्कथन

पहले साहित्य रसास्वादन की वस्तु माना जाता था । इस उद्देश्य से रची गई समस्त कृतियां विद्वान मण्डलों में सीमित रह गई । फलतः साहित्य जन साधारण की पकड़ से दूर रह गया । साहित्य का उद्देश्य रसास्वादन होने पर भी उसकी सार्थकता, सामाजिकता के निरूपण और उसकी सफलता पर निहित है, चाहे वह दृश्य काव्य हो या श्रव्य काव्य । दृश्य काव्य का विकास श्रव्य काव्य की अपेक्षा मन्द गति में था । सभी विद्वान श्रव्य काव्य को ही वास्तव में श्रेष्ठ साहित्य समझते थे । अतः श्रव्य काव्य के सृजन में और उसके बहस में ही अधिक लोगों की रुचि गई थी । फलतः श्रव्य काव्य का क्षेत्र अधिक विशाल और संपुष्ठ बन गया । पर दृश्य काव्य की ओर अधिकांश लोगों का ध्यान नहीं गया ।

हिन्दी में मौलिक नाटकों की रचना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से होती है । उनके पूर्व तक अनुदित नाटकों को छोड़कर मौलिक हिन्दी नाटक नहीं के बराबर थे । भारतेन्दु ही वास्तव में हिन्दी नाटक के जन्मदाता थे । उन्होंने हिन्दी का अपना नाट्य साहित्य और रंगमंच की स्थापना करने का प्रयत्न किया था । सामयिक परिस्थिति से साधारण जनता को अवगत कराने का एकमात्र माध्यम उनकी दृष्टि में नाटक ही था ।

यह तो ठीक ही था । फलत: अनेक सोद्देश्य नाटक रचे गए । उनके नाटकों के मूल्यांकन में यह सोद्देश्यता अवश्य एक त्रुटि है फिर भी हिन्दी नाटक विधा का समारंभ उन्हीं के हाथों हुआ । यह भी नहीं साहित्य के क्षेत्र में भाषा संबंधी आधुनिक भाव बोध का पहला साक्षात्कार भारतेन्दु के नाटकों में देख सकते हैं । खड़ी बोली हिन्दी का अपने नाटकों में प्रयोग करके भारतेन्दु ने भाषा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया । भारतेन्दु के जितने नाटक हैं उन सब में सामाजिक विधियों और समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास है । अथवा यों कहिए कि भारतेन्दु के नाटकों में सामाजिकता का पुट अधिक है ।

भारतेन्दु के बाद उल्लेखनीय और सर्वथा माननीय प्रतिभा है जयशंकर प्रसाद । सामाजिक परिवर्तन से उद्भूत वैचारिक संकट के फलस्वरूप प्रसाद जी का साहित्य संबंधी दृष्टिकोण ही बदल गया । हिन्दी साहित्य में छायावादी संस्कार के जनयिता प्रसाद मात्र कवि नहीं, बल्कि एक सशक्त नाटककार भी है । उनके नाटकों में भी अपना छायावादी संस्कार अवश्य पड़ा है । बात यह है कि उनके नाटकों में साहित्यिकता और ऐतिहासिकता का अद्भुत मिश्रण हुआ है । हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय व्यक्तित्व और काल खण्ड है प्रसाद का । भारतेन्दु के समान प्रसाद के नाटकों में भी सामाजिकता अवश्य है । पर फरक यह है कि प्रसाद सोद्देश्य नाटक के पीछे नहीं गए । उनका भी अपना उद्देश्य था । भारतीय इतिहास के स्वर्णिम अतीत को मंच पर प्रस्तुत करके जनमानस में नवस्फूर्ति पैदा करना उनका लक्ष्य था । इसकेलिए वे अपने आदर्श, संस्कार और साहित्यिक सौष्ठव को छोड़ देने केलिए तैयार नहीं थे । लेकिन उनके साहित्य की मूल चेतना सामाजिकता है । नाटक में उन्होंने उसकी सरल व्याख्या प्रस्तुत की तो काव्य में दार्शनिक व्याख्या । अत: प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी बिलकुल सामाजिक समस्याओं के

नाटक है । उनमें सामाजिकता की एक अन्तर्धारा प्रवाहित है । यह धारा भारतेन्दु के नाटकों में सलती है तो प्रसाद में बहुत गहरी । इसकी सैद्धान्तिक विवेचना वांछित है ।

प्रसाद के बाद विचारणीय एकाधिक नाटककार अवश्य हुए हैं । लक्ष्मी नारायण मिश्र की ओर इस सन्दर्भ में ध्यान देना आवश्यक है । उन्होंने समस्या प्रधान नाटकों की रचना की । यह विधा बिल्कुल विदेशी होते हुए भी हिन्दी नाट्य साहित्य से परिचित कराने का स्तुत्य कार्य मिश्र जी का है । प्राब्लम प्ले (PROBLEM PLAY) पश्चिम के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन का भारतीकरण करके युगानुकूल रूप देने का सराहनीय कार्य मिश्र का है । याने कि वे समस्या नाटक के सिद्धांतों का हूबहू अनुकरण करने के बदले अपने संस्कार और रुचि के अनुकूल उसे ढालने में दत्तचित्त थे । फल यह हुआ कि सामाजिकता के निरूपण केलिए नाट्य साहित्य में एक नई विधा का सूत्रपात हुआ । सामाजिक परिस्थिति के बदलाव के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाल सामयिक समस्याएं नाटक के विषय बन गईं ।

समस्या नाटकों में ही नहीं, यथार्थवादी नाटकों में भी सामाजिक समस्याओं को स्थापित करने का प्रयत्न शुरू हुआ । उपेन्द्रनाथ अश्क इस विधा के प्रवर्तक और समर्थक हैं । यथार्थवादी साहित्य भी एक परिवर्तित सामाजिक परिस्थिति की उपज है । मार्क्सवाद ने प्रचलित सभी मान्यताओं और मूल्यों को हिला दिया । बहुत कुछ मान्यताओं और मूल्यों का तिरस्कार हुआ । यथार्थ की ओर देखने और उसकी तीव्रता का सामना करने की क्षमता मार्क्सवाद की देन है । स्पष्ट है कि नाट्य साहित्य में सामाजिकता उत्तरोत्तर स्पष्ट होती आ रही है ।

अधुनातन नाट्य साहित्य की विशेषता है, जीवन की वास्तविकता से संघर्षरत एण्टी हीरो का प्रस्तुतीकरण । नायक संबंधी परिकल्पना प्रसाद युग के बाद ही नाट्य क्षेत्र में मिट चुकी है । लेकिन अधुनातन नाटकों में नायक वर्ज नहीं

पाठक या दर्शक या यों कहिए कि हर आधुनिक मानव इसके नायक बनने योग्य है । समस्त मानव की अभिशाप्त स्थिति को मंच पर लाने का प्रयास इन नाटकों में दर्शित है । स्वातंत्र्योत्तर नाटक इन विशेषताओं से अभिभूत हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों में जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश और लक्ष्मी नारायण लाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इन्होंने ऐतिहासिकता की नयी व्याख्या प्रस्तुत की । इनमें ऐतिहासिक घटनाओं की सच्चाई की ओर खोजपरक दृष्टि डालने की शौक नहीं । बल्कि जनता के अन्तर्मन में स्थिर प्रतिष्ठा पायी गई पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं और घटनाओं के माध्यम से सामयिक सामाजिक गतिविधियों, परिवर्तनों और सच्चाइयों का निष्पक्षीय दृश्य चित्रण प्रस्तुत करने की अधिक शौक थी । इसमें उन्हें कभी पूर्वाग्रह नहीं था । भोगी हुई समस्याओं को प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य नहीं था पर उसके चित्रण केलिए वे विवश थे । राकेश के नाटक इसके स्पष्ट उदाहरण हैं । इनके नाटकों में कथ्य और शिल्प का अद्भुत समन्वय हुआ है । राकेश का रंगमंच सरल तथा सुविकसित था । यह हिन्दी नाट्य साहित्य केलिए हमेशा सम्मानजनक ।

बाद में लक्ष्मी नारायण लाल के हाथों रंगमंच का और अधिक विकास हुआ । वे रंगमंच के अन्वेषी थे । सही रंगमंच की उनकी तलाश अब भी जारी है । समाज की विविध समस्याओं का वैविध्यपूर्ण अंकन लाल के नाटक की खूबी है । अत: कहने का मतलब यह हुआ कि सभी नाट्य प्रणालियों और नाट्य रचनाओं का मूल उद्देश्य सामाजिकता है । इस सर्वेक्षण का उद्देश्य यह है कि समस्त नाट्य साहित्य की और उसकी रचना प्रक्रिया की मूल चेतना सामाजिकता है ।

पहले हम कह चुके हैं कि शुद्ध साहित्यिक कृतियाँ जनसाधारण की पहुँच से बाहर है । यह प्रवृत्ति सभी साहित्य विधाओं में विद्यमान है ।

पर नाटक, साहित्य की एक ऐसी विधा है जो जनसाधारण से निकट का संबंध रखता है । नाटक की अपनी खासियत यही है कि वह कुछ कहता नहीं बल्कि बहुत कुछ दिखा देता है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में यह प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट है । भारतवासियों केलिए स्वतंत्रता एक स्वप्न है । भारतवासियों, केलिए स्वतंत्रता एक स्वप्न था । उस स्वप्न के सत्य निकलते समय जनमानस सुखद कल्लोल उठी । पर आशा के विरुद्ध परिस्थितियों ने जनता को विद्रोही बना दिया । स्वातंत्र्योत्तर नाटक ने इस विद्रोह को मंच पर लाकर जनता को अपनी वर्तमान स्थिति से अवगत करा दिया । इसमें नाट्य शाखा को जितनी सफलता मिली है उतनी शायद अन्य को नहीं । अतः इस शोध प्रबन्ध में मैं ने यह साबित करने का प्रयास किया है कि नाटक जो भी हो चाहे ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, या पौराणिक उन सबका उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण है । याने कि सभी नाटक इस अर्थ में सामाजिक है ।

नाटक के संबंध बहुत आलोचनात्मक और शोधपरक ग्रंथ अवश्य हुए हैं । ऐतिहासिकता की दृष्टि से, पौराणिकता की दृष्टि से यथार्थवाद, प्रगतिवाद, संघर्ष तत्व, नायक की परिकल्पना, नारी चित्रण, सामाजिकता इन सभी दृष्टियों से शोध प्रबन्ध हुए है । लेकिन इनमें से किसी में पूरे नाटक में व्याप्त सामाजिक पक्ष उद्घाटित कर उन्हें आम तौर पर सामाजिक नाटक कहने का साहस नहीं दिखाई पड़ता । यह बिलकुल एक नई दिशा है । इस अज्ञात तथ्य को स्थापित करने के उद्देश्य से मैं ने इस शोध प्रबन्ध को तैयार किया है । इसकेलिए 1948 से 1965 तक लिखे गये नाटकों की सामाजिकता का अध्ययन किया गया है । एकांकी और गीति नाट्य स्वयंविस्तृत अध्ययन के विषय होने के कारण उनकी चर्चा पूर्णरूपेण छोड दी गई है । "स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक नाटक" नाम इसलिए रखा है कि स्वातन्त्र्योत्तर सामाजिक नाटक के संबंध में अनेक शोधग्रंथ हुए हैं लेकिन समस्त नाटकों को सामाजिकता की दृष्टि से देखने परखने का यह प्रथम उद्यम है ।

इस शोध प्रबन्ध में दस अध्याय हैं । "आधुनिक हिन्दी साहित्य का अरुणोदय" नामक प्रथम अध्याय में अंग्रेजों के आगमन और सत्ता स्थापन के फलस्वरूप भारतीय जीवन और संस्कृति पर हुए परिवर्तन, आधुनिकता का प्रवेश, आधुनिक हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास आदि बातों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है । द्वितीय अध्याय है, आधुनिक हिन्दी साहित्य का सामाजिक परिवेश" । इसमें नाटकेतर साहित्यिक शाखाओं - उपन्यास, कहानी, कविता, निबन्ध - में चित्रित सामाजिक पक्ष का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि सामाजिकता की चेतना मात्र नाटक में ही नहीं, समस्त साहित्यिक विधाओं की मूल चेतना है ।

"नाटक और उसकी सामाजिक संवेदना" नामक तृतीय अध्याय में नाटक और समाज के तथा नाटककार और समाज के पारस्परिक संबंध पर विचार विमर्श हुआ है । समाज के प्रति नाटककार के दायित्व संबंधी समस्या को भी स्पष्ट करने का प्रयास भी हुआ है । पाश्चात्य नाट्य साहित्य में सामाजिकता व शुरुआत, हिन्दी नाटकों पर उसका प्रभाव आदि भी इस अध्याय की चर्चा का विषय है । भारतेन्दुकालीन नाटकों में सामाजिकता का निरूपण" शीर्षक चतुर्थ अध्याय में आधुनिक नाटक के उन्नायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मौलिक तथा अ अनूदित नाटकों का विवेचनात्मक अध्ययन सामाजिकता की दृष्टि से ही किया गया है । साथ ही भारतेन्दु मण्डली के अन्य नाटककारों की रचनाओं पर भी विचार प्रस्तुत किया है ।

पंचम अध्याय "प्राक् स्वाधीनता युग के नाटकों में सामाजिकता" में जयशंकर प्रसाद से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति तक के नाटकों और नाटककारों पर अध्ययन हुआ है । छायावादी संस्कार से परिपूर्ण इस युग की रचनाओं में चित्रित सामाजिकता को विश्लेषित करके यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि वे कितने सामाजिक सजग थे । षष्ठ अध्याय में "स्वतंत्र भारत की सामाजिक -

सांस्कृतिक भूमिका" को प्रस्तुत किया गया है । स्वाधीनता प्राप्ति ने भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों को कैसे अस्त व्यस्त कर दिया, हिन्दी साहित्य की विशेषकर नाट्य साहित्य की नई गति विधियां क्या है आदि बातों पर तटस्थ दृष्टि प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है ।

सप्तम अध्याय "स्वातंत्र्योत्तर नाटकों के राजनीतिक परिवेश" का परिचयात्मक विश्लेषण है । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्रस्फुटित सामाजिक विचारधाराएं- नामक अष्टम अध्याय में नाटकों में प्रतिबिंबित सामाजिक परिस्थितियों के प्रति नाटककारों की विचार-दृष्टि प्रस्तुत की गई है ।

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में आर्थिक परिवेश" नवम अध्याय का वर्णित विषय है । दशम अध्याय में "स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में धार्मिक परिस्थिति का प्रतिफलन है । इसमें धार्मिक आचारों और विश्वासों के क्षेत्र में जैसा परिवर्तन आया, नाटकों में इसका चित्रण प्रस्तुत करते हुए जनता को सचेत बनाने में नाटककारों ने कैसे प्रयत्न किया, इसपर विचार किया गया है ।

"उपसंहार" में संपूर्ण अध्ययन का मूल्यांकन और निष्कर्ष है ।

यह शोध प्रबन्ध कोचीन विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के रीडर आदरणीय डॉ॰ रामचन्द्रदेव के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन और अमूल्य सुझावों की शीतल छाया में तैयार किया गया है । उनकी प्रेरणा और निरंतर प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही यह शोध प्रबन्ध संपन्न हो सका । उनके प्रति श्रद्धा और आभार से मैं नत हूं ।

कोचीन विश्वविद्यालय ने छात्र-वृत्ति देकर इस शोध-कार्य में जो आर्थिक सहायता दी है उसकेलिए मैं आभारी हूँ ।

उन विद्वानों और लेखकों के प्रति भी मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ जिनकी रचनाओं तथा विचारों का अध्ययन प्रस्तुत शोध-कार्य में मुझे सहायक रहा । हिन्दी विभाग पुस्तकालयाध्यक्षा श्रीमती कुंचिक्कावुट्टी तम्पुरान की सहायता की भी प्रस्तुत अवसर पर याद की जाती है जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक पुस्तकें देकर मेरे शोध कार्य को सुगम बना दिया ।

इस शोध प्रबन्ध की तैयारी में जिन अन्य महानुभावों ने अपने सत्परामर्श से मुझे अनुगृहीत किया है, उन सभी का भी मैं ऋणी हूँ ।

कोचीन विश्वविद्यालय,
कोचीन - 68 20 22,
तारीख - 30/08·1980

राजलक्ष्मी· ए·

अध्याय - 1

आधुनिक साहित्य का अरुणोदय

प्रथम अध्याय

आधुनिक साहित्य का अरुणोदय

भारतीय इतिहास में आधुनिक युग का आरंभ सन् 1857 से माना जाता है[1]। इसी वर्ष इस देश में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई । हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का सूत्रपात भी लगभग इसी समय से होता है[2]। भारतीय जन - जीवन में जो आमूल परिवर्तन इस युग में लक्षित होता है, "आधुनिकता" शब्द उसी को द्योतित करता है । इस अभूतपूर्व परिवर्तन का मुख्य दायित्व ब्रिटिश शासन-सत्ता पर निहित है ।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही भारतीय जीवन में परिवर्तन के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे थे । यह मध्य युग के क्षय परिवर्तन तथा आधुनिक युग के अरुणोदय का समय है[4]। यह नव जागृति या संक्रमण की वेला है । इस समय समस्त भारतीय जीवन नई चेतना, नई भावना और नये वातावरण से प्रभावित हो उठा । इसके मूल में वह नवजागृति कार्य करती रही जो अंग्रेजों के संपर्क से उत्पन्न हुई थी ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेन्द्र - प्रथम सं.-पृ.431
2. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य-विषय प्रवेश तृतीय संस्करण - पृ.2
3. Jawaharlal Nehru - Discovery of India 1961, p.330
4. V.D. Mahajan - India since [illegible]

पश्चिमी शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के कारण पुरानी भारतीय दृष्टि एकदम परिवर्तित हो गई । रेल, तार, डाक, मुद्रण-कला, समाचार पत्र आदि के व्यापक प्रसार ने हमारी जीवन पद्धति में एक नया बौद्धिक उन्मेष उत्पन्न कर दिया । शताब्दियों के बोझ से गतिरुद्ध और शिथिल जन-जीवन में गतिशील एवं शक्तिशाली पाश्चात्य सभ्यता के संस्पर्श से जो नव जागृति उत्पन्न हुई, वह ऐतिहासिक महत्व की बात है[1] ।

अंग्रेजों का भारत आगमन

मानव सभ्यता के प्रमुख स्रोत के रूप में भारत, हमेशा विश्वविख्यात रहा । इस सुजला-सुफला भूमि के अतुल धन-वैभव और यहाँ के प्रतिभावान शिल्पियों के कला सौन्दर्य की चमक दमक से विदेशी शक्तियाँ भारत की ओर आकृष्ट हुईं । पुर्तगाल के निवासी वास्कोडिगामा ने 8 जुलाई, सन् 1497 में भारत के दक्षिण में मलाबार तट के कालिकट से आठ मील दूर एक छोटे गाँव में पदार्पण किया । पुर्तगालियों का अनुगमन करके डच, अंग्रेज, फ्रेंच आदि यूरोपीय शक्तियाँ भी भारत आयीं और इस देश से उन्होंने व्यापारिक संबन्ध स्थापित किया । लेकिन इनमें से केवल अंग्रेजों का संबन्ध ही स्थायी रह सका ।

सन् 1600 में लन्दन के व्यापारियों ने पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए महारानी एलिज़ाबेथ से अधिकार-पत्र प्राप्त किया और "इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कंपनी" की स्थापना की[3] । कंपनी ने जहाँगीर से अनुमति प्राप्त करके सन् 1612 में सूरत में अपनी पहली व्यापारिक संस्था खोली[4] ।

---

1. D.P. Singhal - India and world civilisation Vol.II 1972 p.277
2. The Cambridge History of India - Vol.V, Edn H.H.Dodwell 3rd Edn. pp.3-4
3. V.B. Kulkarni - British Dominion in India & After - 1st Edn. p.10
4. The Cambridge History of India - VolIV Ed.Sir Richard Burn October 1965 p.306

शनैः शनैः बंबई, मद्रास और कलकत्ते में भी व्यापारिक शालाएँ खोलने में अंग्रेज सफल हुए । वे अपनी साम्राज्य स्थापना में प्रयत्नवान हो गए । यहाँ की परिस्थितियाँ भी इसकेलिए अनुकूल थीं ।

भारत की तत्कालीन परिस्थिति

अंग्रेजों के आगमन समय में भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थिति सर्वथा अस्त व्यस्त थी । अंग्रेजों ने इस बिगड़ी हुई अवस्था का खूब लाभ उठाया और धीरे - धीरे यहाँ अपना धाक जमाने में वे सफल निकले ।

राजनैतिक परिस्थिति

औरंगज़ेब के शासन-काल में ही मुगल साम्राज्य के पतन का बीजारोप हो चुका था । मुगलों के केन्द्रीभूत शासन को तहस-नहस करने के उद्देश्य से छोटी छोटी शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं । सन् 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई[1] । उसके साथ ही केन्द्रीय-शासन का लगाम ढीला पड़ गया । फलस्वरूप अधीन शासक अपने - अपने प्रदेश के अधिकारी खुद बन बैठे । संगठित एवं केन्द्रीय सत्ता के अभाव तथा आन्तरिक शक्ति के विच्छेद के कारण राजाओं का संघर्ष बढ़ता गया । जनता में एकता और राष्ट्रीयता की भावना लुप्त हो गयी ।

---

1. The Cambridge History of India - Vol.IV Ed.Richard Burn p.302

सामाजिक परिस्थिति

उपर्युक्त अव्यवस्थित एवं अशान्तिपूर्ण वातावरण में सामाजिक प्रगति बिलकुल नामुमकिन थी । जनता का मानसिक, बौद्धिक और नैतिक पतन हो चुका था । उनमें एकता और दूरदर्शिता नहीं थी । वर्णाश्रम-धर्म, संयुक्त-परिवार प्रथा, छुआछूत, बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, सती, बालहत्या, पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह जैसे अनाचारों का समाज में खूब प्रचलन था ।[1] केवल ब्राह्मण वर्ग शिक्षा प्राप्ति के अधिकारी थे ।[2] सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र पर उनका नियंत्रण था । जनता समुद्र-यात्रा निषेध जैसे सामाजिक नियमों का भंग करने से डरती थी ।[3] मुहूर्तों, शुभाशुभ दिनों, जादू-टोनों, कवचों, झाड़-फूंकों पर लोग अमित विश्वास रखते थे ।[4] इसलिए समाज में ज्योतिषियों और ओझों की बड़ी भरमार थी । स्त्रियों और निम्नजातवालों की दशा बड़ी दर्दनाक थी ।[5] सामन्तवादी प्रथा ने अज्ञान, अविद्या, अन्धविश्वास और अनाचारों से संवेष्टित समाज को और भी अधिक दुर्दशाग्रस्त कर दिया । समाज उस तालाब की भांति था जिसके जल की उन्मुक्त गति अवरुद्ध हो गई थी और फलतः जिसका पानी सड़कर नाना प्रकार के विकार उत्पन्न कर रहा था । सड़ा पानी निकालकर स्वच्छ जल भरनेवाला कोई न था । शायद सड़े पानी के निकास का रास्ता ही लोग भूल गये थे ।[6]

---

1. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture - 5th Edn.p.633
2. A.R. Desai - Social Background of India Nationalism Edn.IV p.137
3. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका प्रथम सं॰ पृ॰123
4. वही पृ॰273
5. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture - p.273
6. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ॰125

आर्थिक परिस्थिति

यही स्थिति आर्थिक जीवन में भी प्रतिफलित हुई । यद्यपि अंग्रेजों के आने के पहले भारत, आर्थिक दृष्टि से सुसमृद्ध था तथापि उनके आगमन-समय उसका आर्थिक आधार टूट गया था । अन्तरंग आभ्यंतर कलह ही इसका कारण था[1] । आर्थिक जीवन मुख्यतः कृषि और उद्योग-धन्धे पर निर्भर था । जाति के अनुसार पेशा निश्चित किया जाता था[2] । कृषि-संपत्ति पर किसान का कोई अधिकार नहीं था । वे बढ़े हुए लगान के भार से ग्रस्त थे । उत्पादन की दिशा में नवीन साधनों और उपकरणों का भी विकास नहीं हुआ था ।

धार्मिक परिस्थिति

धार्मिक परिस्थिति पतनोन्मुख थी । हिन्दू-धर्म उस पुष्प की भांति था जो चारों ओर अपनी सुरभि फैलाकर मुरझा गया था[3] । जनता, कर्मकाण्ड से परितुष्टि पाती थी । आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म पर उनका विश्वास अटल था । फिर भी परम्परागत रूढ़ियों का पालन ही धर्म माना जाता था । अनेक संप्रदाय प्रचलित थे । साधुओं और फकीरों की पूजा की जाती थी[4] । पशुबलि जारी थी । यत्र-तत्र नरबलि होती थी ।

---

1. डॉ॰ आशिर्वादीलाल श्रीवास्तव – मुगलकालीन भारत – पंचम सं॰ पृ॰601
2. Hans Nagpaul - The study of Indian Society 1978 - p.81
3. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ॰106
4. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture p.436

मूर्ति पूजा पर लोगों की आस्था अविचल थी[1]। दलाधिकारियों के अत्याचार बढ़ रहे थे। काशी जैसे तीर्थ स्थानों में भी पुजारियों और पंडितों का अत्याचार शुरू था। इन परिस्थितियों का संबन्ध प्रमुख रूप से हिन्दू समाज से है। इस्लाम, ईसाइयत, सिक्ख आदि धर्मों की अवस्था भी उससे भिन्न नहीं थी।

ब्रिटीश-सत्ता की स्थापना और प्रसार

यह कहा जा चुका है कि 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के साथ मुगलों की केन्द्रीय शक्ति शिथिल हो गई थी। नवाबों और सरदारों ने अपनी सिक्का जमाने का कार्य शुरू किया था। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर अंग्रेज़ों ने अपनी सत्ता स्थापना की ओर कुछ ध्यान दिया।

सन् 1757 के प्लासी-युद्ध में अंग्रेज़ों ने बंगाल के सिराजुद्दौला को परास्त किया। इस विजय ने भारत में ब्रिटीश साम्राज्य की आधार शिला स्थापित की[2]। उसके बाद अंग्रेज़ों ने राजपूताने पर अपना अधिकार जमाया। भोपाल, मालवा और बुन्देलखण्ड ने भी उनकी अधीनता स्वीकार की। क्रमशः अंग्रेज़ संपूर्ण उत्तर भारत के मालिक बने। कर्नाटिक युद्धों की सफलता ने भी उनको भारत में अपनी सत्ता जमाने में सहायता पहुँचायी[3]। सन् 1799 की मैसूर लड़ाई के साथ उन्होंने मैसूर सुल्तान के अधीनस्थ प्रदेशों पर अपना धाक जमाया[4]।

---

1. डॉ॰ आशिर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत - पृ॰593
2. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.289
3. R.C. Majumdar - History of Freedom Movement in India Vol. 1st edn. p.6
4. Ramakrishna Mukherjee - The Rise and fall of East India Company First Indian edn.p.271

दक्षिण के मराठों ने अंग्रेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली।[1] मध्य एवं पश्चिमी भारत का अधिकार भी उनके हाथों में आ गया। सन् 1849 में सिक्खों को पराजित किया गया और पंजाब की आज़ादी छीन ली गई।[2]

सन् 1857 की राज्य क्रान्ति के बाद भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से ब्रिटिश मंत्री-मण्डल के हाथ में चला गया।[3] इस प्रकार समूचे भारत वर्ष पर अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

भारतीय जीवन में आधुनिकता

पश्चिमी सभ्यता ने भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया। जीवन और जगत को नवीन परिप्रेक्ष्य में, नए सन्दर्भ में देखने की क्षमता उसने प्रदान की।

आधुनिकता-बोध ने भारत के परम्परागत और रूढ़िग्रस्त बन्धनों का विकृत रूप समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। फलस्वरूप अन्ध विश्वासों निर्जीव रूढ़ियों, सामाजिक दुर्बलताओं और विडम्बनाओं के प्रति जनमानस सचेत हो उठा। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गए।[4] आधुनिकता ने भारतीयों के धर्म-कर्म, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, खान-पान, वेष-भूषा, बोलचाल, शिष्टाचार आदि को परिवर्तित एवं नवीन बना दिया।

---

1. Ramakrishna Mukherjee - The Rise and F̄ll of East India Company First Indian Edn.p.27B 27B
2. The Cambridge History of India Vol.V -Edn.H.H.Dodwell p.556
3. R.P. Masani - Britain in India 2nd Edn. p.46
4. History and Culture of Indian People Vol X Ed.R.C.Majumdar

हमारे इतिहास में यह एक प्रकार से नवोत्थान का युग था । इसके फलस्वरूप कुछ लोगों ने भारत भूमि पर एक नये यूरोप के निर्माण की कोशिश की[1] । फलतः पुरानी गतिहीन व्यवस्था टूट गई और देश को नूतन गत्यात्मकता का अनुभव हुआ । लोग अपने को नये ढंग से ढालने लगे[2] ।

मध्यवर्ग का उदय

भारत का मध्यवर्ग आधुनिकता की उपज है । इस विभाग के आविर्भाव के मूल में अंग्रेज़ों का उदय भी कारणस्वरूप विद्यमान है[3] ।

नये मध्यवर्ग के माध्यम से ही पश्चिमी विचार धाराएं देश के कोने-कोने में पहुँच गई[4] । परिणाम स्वरूप पुरानी सामाजिक व्यवस्था और मान्यता पर कठोर आघात लग गया । यह कहना अतीत न होगा कि भारतीय जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रतिष्ठापक है, मध्यवर्ग । इसकी नवीन चेतना ही नवोत्थान का रूप धारण करती दिखाई देती है[5] ।

अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार-प्रसार

अंग्रेज़ सरकार ने यहाँ अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार अनेक कारणों से आवश्यक समझा । शासन-तंत्र में अंग्रेज़ी जाननेवालों की ज़रूरत थी[6] ।

---

1. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture p.88
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डॉ. नगेन्द्र - पृ.447
3. Tharachand - History of Freedom Movement in India Vol.II p.1
4. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture p.513
5. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.89
6. Jawaharlal Nehrue - Discovery of India p.331.

उन सेवाई के माध्यम के रूप में भी किसी भाषा की स्वीकृति आवश्यक थी। शासकों के लिए सर्वथा सुगम और उपादेय भाषा थी अंग्रेज़ी। यही उसके व्यापक प्रचार-प्रसार का कारण है।

सन् 1835 में "जन शिक्षा समिति" गठित की गई[1]। इसके अध्यक्ष थे टामस बेंबिगटन मेकाले। उन्होंने शिक्षा संबन्धी अपने विचारों की एक रिपोर्ट समिति के सम्मुख प्रस्तुत की। उसके अनुसार भारत की सभी पुरानी सभी भाषाओं से अंग्रेज़ी ही उत्तम है[2]।

सर मेकाले ने अंग्रेज़ी को शिक्षा के माध्यम स्वरूप स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव राजाराम मोहन राय जैसे कुछ शिक्षित भारतीयों द्वारा अभिनन्दित हुआ[3]। मेकाले का मिनिट्स [1835] सचमुच परम्परागत भारतीय मूल्यों और ब्रिटीश मूल्यों का संघर्ष है[4]। रिपोर्ट के अनुसार भारतीयों के ऐक्य का सुवर्ण सूत्र है अंग्रेज़ी। यही सभी भारतीय भाषाओं की पथप्रदर्शिका है। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में नियुक्त करने का सुझाव भी रखा गया।

अंग्रेज़ी-शिक्षा के प्रचार में सरकार और ईसाई मिशनरियों के अतिरिक्त शिक्षित भारतीयों का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

1.

2. K.M. Panicker - Foundations of New India p.116

3. T.M. Thomas - Foundation Indian Educational reforms in Cultural perspectives - 1970 p.86

4. Ibid p.87

सरकारी प्रयास

अंग्रेज़ी-शिक्षा का प्रसार मन्तव्य ग्रहण करते हुए सरकार ने देश के नाना भागों में विद्यालय खोले।[1] कलकत्ते का फोर्ट विलियम कालेज[2] [1800], आगरा कालेज[3] [1823], दिल्ली कालेज[4] [1830] आदि इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। इलाहाबाद, मेरठ जैसे स्थानों में भी अंग्रेज़ी शिक्षा-केन्द्र खुले। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष चार्ल्स वुड ने, अंग्रेज़ी शिक्षा प्रसार की एक रूपरेखा तैयार की जो आधुनिक शिक्षा की आधार शिला मानी जाती है।[5] इसी के परिणाम स्वरूप सन् 1857 में मद्रास, बंबई तथा कलकत्ते में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई।[6]

मिशनरियों का प्रयास

मिशनरियों ने दिल्ली में सेंट स्टीफन्स कालेज [1882], इलाहाबाद में इण्डियन क्रिश्चियन कालेज [1884] तथा कानपुर में क्राइस्ट चर्च कालेज [1892] की स्थापना की।[7] श्रीरामपुर का मिशनरी कालेज और कलकत्ते का बिशप्स कालेज भी मिशनरियों द्वारा स्थापित है।[8]

---

1. पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - सोलहवाँ सं॰ पृ॰ 407
2. Jawaharlal Nehru - Discovery of India
3. सत्यकाम वर्मा - आधुनिक हिन्दी साहित्य - दूसरा सं॰ पृ॰ 37
4. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ॰ 132
5. T.M. Thomas - Indian Educational reforms in cultural perspective p.88
6. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - अष्टम अध्याय - सं॰ विनय मोहन शर्मा - प्रथम सं॰ पृ॰ 23
7. डॉ॰ कमला कानोडिया - भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - प्रथम सं॰ पृ॰ 163

विद्यालयों के अतिरिक्त उन्होंने मुद्रणालय भी स्थापित किए । इन सब संस्थाओं का प्रमुख लक्ष्य यद्यपि धर्म-प्रचार था तथापि शिक्षा के प्रचार में भी उनका योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं[1] । पाश्चात्य साहित्य और ज्ञान विज्ञान का इन संस्थाओं ने जनता के बीच प्रचार किया । ये सब भारत के निर्माण में परोक्ष रूप से कारण बन गयीं ।

<u>व्यक्तिगत प्रयास</u>

मिशनरियों के अतिरिक्त नव शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने भी अंग्रेज़ी शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के प्रचार का समर्थन किया । इनमें प्रमुख हैं राजा राममोहन राय, राजा राधाकान्त देव, महाराज मजेश चन्द्र, राय बहादुर वैद्यनाथ, जयनारायण आदि[2] ।

अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रचार के लिए राजा राममोहन राय ने कलकत्ते में हिन्दू कालेज की स्थापना की[3] । इस कालेज के विद्यार्थी, अध्ययन के बाद आसानी से सरकारी नौकरी प्राप्त कर सके[4] । बनारस के रेज़िडेंट जोनाथन के प्रयासों से काशी में संस्कृत कालेज की स्थापना हुई[5] । देश में पश्चिमी-शिक्षा के प्रचार में उपर्युक्त संस्थाओं का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

---

1. A.R. Desai - Social Background of Indian Nationalism p.139
2. T.M. Thomas - Indian Educational reforms in cultural perspectives p.86
3. पं॰रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰407
4. वही
5. Jawaharlal Nehru - Discovery of India p.336

अंग्रेजी - शिक्षा का प्रभाव

अंग्रेजी-शिक्षा के प्रचार ने भारतीय जीवन, संस्कृति तथा सभ्यता को कुछ प्रभावित किया[1]। ज्ञान विज्ञान के अनेक परिदृश्य समाज के सामने खुल गए। देश-प्रेम, राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, एकता और समता की भावना लोगों में जागृत होने लगी। नवीन सभ्यता के अतिप्रसार से अपने पुरातन सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन होते देखकर कुछ शिक्षित भारतीयों ने उनकी सुरक्षा के लिए नये संगठनों का आरंभ करना आवश्यक समझा।

पश्चिमी सभ्यता बुद्धिवाद पर अधिष्ठित है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि उसके प्रभाव से भारतीयों ने भी बुद्धिवादी दृष्टि ग्रहण की[2]। भारतीयों की मनोवृत्ति, भावुकता से अधिक बौद्धिकता की ओर मुड़ने लगी। मध्यवर्ग भी नव चेतना से सर्वाधिक प्रभावित हुआ। भारतीय पुनरुत्थान इसका सम्मिलित फल माना जाता है।

सांस्कृतिक आन्दोलन

आधुनिक जीवन दृष्टि ने भारत की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना को प्रबुद्ध किया। समाज सुधार की आवश्यकता जन नायकों ने अनुभव की। परिणाम स्वरूप अनेक सुधारवादी आन्दोलन उठ खड़े भी हुए।

---

1. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.337
2. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture - p.671

सुधारों के कार्यान्वयन केलिए कई संस्थाएं स्थापित हुईं । इन संस्थाओं ने सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का अथक प्रयत्न किया । इनमें प्रमुख है ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसफिकल सोसायटी, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन ।

नव भारत के निर्माण में इनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । इन्होंने मृतप्राय हिन्दू समाज में नव जीवन फूंक दिया । प्रमुख संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है ।

1. <u>ब्रह्म समाज</u>

ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय हैं । इसकी स्थापना सन् 1828 में की गई[1] ।

राजा राममोहन राय उच्च कोटि के विद्वान और समाज-सुधारक थे । उन्होंने पश्चिमी तथा भारतीय दोनों विद्याओं में विचक्षणता प्राप्त की थी[2] । अपने देश की दुस्थिति से उनका हृदय कराह उठा । हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों का कठोर शब्दों में उन्होंने विरोध किया[3] । उनके प्रयास से ही बाल-विवाह, सती-प्रथा, बहु-विवाह आदि पर रोक लगा दिया गया । उन्होंने जाति-भेद का खण्डन करके विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, स्त्री-शिक्षा आदि सुधारात्मक कार्यों का समर्थन किया[4] ।

---

1. V.D. Mahajan - Indian Since 1526 - p.594
2. Jawaharlal Nehru - Discovery of India p.33
3. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय - पृ.सं. पृ.547
4. Saumyendranatha Tagore - Raja Ram Mohan Roy - April 1973 pp 63 and 67

ब्रह्म समाज, एकेश्वरवाद पर आस्था रखता है। यह विश्वबन्धुत्व का समर्थक है। उस समय के बड़े बड़े समाज सुधारकों का सहयोग ब्रह्म समाज को प्राप्त हुआ। राजा राम मोहन राय के पश्चात् महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर, केशव चन्द्र सेन जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति ब्रह्म समाज का प्रचार करते रहे[1]।

भले ही ब्रह्म समाज को सनातनियों का समर्थन नहीं प्राप्त हुआ फिर भी हिन्दू समाज में नवीन विचार धारा को प्रविष्ट कराने में यह संस्था सफल हुई[2]। भारतीय नवोत्थान के अग्रदूतों में ब्रह्म समाज का स्थान अद्वितीय है।

2. <u>प्रार्थना समाज</u>

सन् 1867 में केशव चन्द्र सेन ने इसकी स्थापना की[3]। इसके प्रमुख कार्यकर्ता थे महादेव गोविन्द रानडे। वे पश्चिमी - शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे[4]। उन्होंने सामाजिक क्रान्ति का समर्थन किया[5]। रानडे ने बाल-विवाह, बहु-विवाह, पर्दा-प्रथा, जाति-पांति आदि का विरोध करके स्त्री-शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि का समर्थन प्रभावशाली ढंग से किया[6]। समाज की ओर से "सुबोध पत्रिका" नामक एक दैनिक पत्र निकाला जाता था। "पत्रिका" ने सामाजिक परिवर्तन को त्वरा पहुँचाई।

---

1. The cultural Hiritage of India - Vol.IV Ed.Haridas Battacharya - 2nd Edition p.627
2. Ibid pp.653 and 654
3. History and culture of Indian peopoh - Vol.X Ed.R.C. Majumdar p.106
4. P.J. Jagirdar - Mahadeo Govind Ranade, July 1971 p.12
5. Sitharam Singh - Nationalism and Social reform in India
6. इन्द्र विद्या वाचस्पति - भारतीय संस्कृति का प्रवाह - 1959 - पृ०184

प्रार्थना समाज ने दलित वर्गों का उद्धार भी अपना लक्ष्य बनाया था । अनेक अनाथालयों, विधवाश्रमों और पाठशालाओं की स्थापना भी समाज ने की । रानडे का विचार था कि भारतीय संस्कृति में परिवर्तन, वैज्ञानिक आधार पर लाया जाना चाहिए[1] ।

3. थियोसॉफिकल सोसाइटी

यह सोसाइटी मूलत: अमेरिका में स्थापित हुई थी[2] । इसके संस्थापक थे मादाम ब्लावेट्स्की और कर्नल एच॰एस॰ ओल्कॉट । इसकी एक शाखा सन् 1882 में मद्रास के अड्यार में स्थापित हुई । भारत में इसकी प्रमुख कार्यकर्ता रही डॉ॰ एनी बेसेंट । इनके व्यक्तित्व के प्रभाव से भारत का अधिकांश शिक्षित वर्ग सोसाइटी की ओर आकर्षित हुआ ।

सोसाइटी ने भारतीय समाज की अनेक अंध परम्पराओं और कुप्रथाओं का विरोध किया । जात-पात का उन्मूलन, दलित वर्ग एवं विधवाओं का उद्धार आदि सामाजिक सुधारात्मक कार्यों को सोसाइटी ने अपने हाथ में ले लिया । अनेक विद्यालयों की स्थापना भी सोसाइटी ने की । पश्चिमी तथा भारतीय दर्शनों के समन्वय में सोसाइटी ने विशेष ध्यान दिया । फलत: धार्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टि का समर्थन प्राय: हुआ । सामाजिक क्षेत्र भी अप्रभावित नहीं रह सका ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं॰डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰444
2. C.P. Ramaswamy - Annie Besant - Second Edition p.28

थियोसॉफिकल सोसायटी का कार्य केवल भारत में ही सीमित नहीं रहता । इसकी शाखाएँ दुनिया भर में व्याप्त है । भारतीय संस्कृति और आधुनिक वैज्ञानिकता के बीच समन्वय स्थापित करने में वे हमेशा जागरूक रहती है ।

4. <u>आर्य-समाज</u>

आर्य समाज के संस्थापक है स्वामी दयानन्द सरस्वती । इसकी स्थापना स्वामी जी ने सन् 1875 में बंबई में की[1] ।

स्वामी दयानन्द, वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे । उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर एक नवीन भारत की सृष्टि करनी चाही । छुआछूत, जाति-पाति, बाल-विवाह, गोवध आदि अत्याचारों का विरोध करते हुए जातीय ऐक्य, स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह, गोरक्षा, अछूतोद्धार, दीन सेवा, दुर्भिक्ष निवारण संस्कृत शिक्षा, अंग्रेज़ी शिक्षा जैसी बातों का आर्य समाज ने समर्थन किया[2] ।

दयानन्द सरस्वती ने सन् 1882 में गोरक्षा समिति की स्थापना हुई[3] । उनके तत्वावधान में गो संरक्षण के लिए अर्थ-संचय किया गया है ।

---

1. The cultural Heritage of India - Vol.IV Ed. Haridas Battacharya p.654

2. Ibid p.655

3. Tharachand - History of Freedom Movement in India Vol.II p.422

दयानन्द सरस्वती ने स्त्री और पुरुष की समानता स्वीकार की।[1] सामाजिक अत्याचारों से डरकर हिन्दू धर्म छोड़नेवाले अछूतों के उद्धार का प्रयत्न भी आर्यसमाज ने किया। इसने स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना भी लोगों में भर दी।

5. रामकृष्ण मिशन

सन् 1897 में स्वामी विवेकानन्द ने इसकी स्थापना की।[2] इसके पीछे मानव-सेवा का लक्ष्य ही कार्य करता रहा।[3]

मिशन ने हिन्दुत्व को नवीन अभिव्यक्ति दी और पाश्चात्य भौतिकवाद के विनाशकारी शक्तियों से हिन्दू धर्म की रक्षा की।[4] जाति-पाँति, छुआछूत आदि का विरोध करके मिशन ने विश्वबन्धुत्व स्थापित करने की चेष्टा की। आधुनिक समाज पर मिशन के कार्यों का गहरा प्रभाव पाया जाता है। पश्चिमी प्रभाव से स्वकीय संस्कृति को विस्मृत करनेवाले भारतीयों को पहली बार यह अनुभव हुआ कि उनकी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसे तत्व हैं जिन्हें संसार के समक्ष अभिमान रखा जा सकता है।

मिशन ने सामाजिक सुधार केलिए अनेक कार्य किए। स्कूलों, अस्पतालों और आश्रमों की स्थापना देश के कोने-कोने में मिशन की तरफ से की गई।[5]

---

1. यदुवंश सहाय - महर्षि दयानन्द - प्रथम सं. पृ.32
2. रोमा रोलाँ - विवेकानंद - अनु.अज्ञेय और रघुवीर सहाय-प्र.सं.पृ.121
3. विनोद - स्वामी विवेकानंद - पाँचवाँ सं. पृ.44
4. A.R. Desai - Social Background of Indian Nationalism p.293
5. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.333

इन संस्थाओं के सम्मिलित प्रभाव से भारतीय आत्मा अपना आलस्य छोड़कर नवीन स्फूर्ति के साथ उत्थित हो गई।[1] वर्ण-व्यवस्था, जात-पात आदि की जड़ें धीरे-धीरे विचलित होने लगीं। जनता का ध्यान अपनी विधिव्यवस्था की तरफ गया। हिन्दू धर्म जो सैकड़ों विभागों में विभक्त था, ऐक्य की आवश्यकता अनुभव करने लगा। वह समझने लगा कि केवल परम्पराओं के परिपालन मात्र से समाज, धर्म तथा राष्ट्र का उद्धार संभव नहीं। जब तक जनता का उद्धार नहीं होगा तब तक राष्ट्र का भी उद्धार नहीं होगा।

अभी तक भारतीयों में राष्ट्र भावना नहीं के बराबर थी। प्रत्येक समुदाय अपने को दूसरों से अलग मानता था। दूसरों के सुख दुख से अपने को अप्रभावित मानता था। परन्तु इन संस्थाओं के सत्प्रयासों के फलस्वरूप जनता यह समझने लगी कि भारत एक राष्ट्रीय इकाई है और एक जन समुदाय का सुख दुःख अन्य समुदाय के सुख दुःख से संपृक्त है। यद्यपि देश की चिर पुरातन कुरीतियों के पूर्ण उन्मूलन करने में इन संस्थाओं के कार्य कलाप सफल नहीं हुए तथापि यह मानना ही पड़ता है कि उनमें ढिलाई के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। यह कम महत्वपूर्ण बात नहीं है।

<u>भारत में मुद्रणालयों का प्रचार</u>

आधुनिकता की दूसरी देन है - मुद्रण यंत्र।[2] भारत में मुद्रणालयों की स्थापना प्रथमतः बंगाल में ही हुई। चार्ल्स विल्किन्स और पंचानन कर्मकार भारत में बंगाली और नागरी टाइप के जनक माने जाते हैं।[3]

---

1. The Cultural Heritage of India Voo.IV Ed.Haridas Battacharya p.656

2. Sarada Devi Vedalankar - The Development of Hindi prose Literature in the early 19th Century Ist Edn. p.39

सन् 1878 में संस्कृत के विद्वान चार्ल्स विल्किन्स ने अक्षरों का निर्माण किया[1]। एण्ड्रूस ने हुगली में बंगला भाषा के प्रथम प्रेस की स्थापना की[2]। इसी प्रेस में "ए ग्रामर ऑफ बंगाली लैंग्वेज" नामक बंगला व्याकरण ग्रंथ का मुद्रण हुआ था[3]।

हिन्दी प्रदेश के मुद्रणालय

हिन्दी के प्रथम मुद्रित ग्रंथ निकले, कलकत्ते के हरकारू प्रेस से (1802)[4]। इन पुस्तकों में उल्लेख योग्य हैं- "मर्सिया", "सिंहासन बत्तीसी" और "माधोनल"[5]। ये सब प्रारंभिक प्रयास हैं। पर सुव्यवस्थित रूप से पुस्तकें छापने का श्रेय गिलक्रिस्ट द्वारा कलकत्ते में स्थापित हिन्दुस्तानी प्रेस को प्राप्त है[6]।

धीरे - धीरे बंगाल के बाहर भी मुद्रणालय स्थापित होने लगे। प्रसिद्ध संपादक - लेखक लल्लूलाल के स्वामित्व में सन् 1881 में आगरे में संस्कृत प्रेस स्थापित हुई[7]। इसके पश्चात् आगरा में बहुत से मुद्रणालय खोले गए। उनमें मुख्य हैं आगरा प्रेस, विद्या रत्नाकर प्रेस, राजपूत एंग्लो ओरियेंटल प्रेस, आगरा पब्लिशिंग हाउस तथा मुफ़ीद आम छापाखाना[8]।

---

1. विश्वनाथ — हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव - प्रथम सं - पृ.93
2. कृष्णाचार्य - हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ - प्रथम सं. पृ.12
3. कृष्णाचार्य - वही पृ 12
4. वही पृ.24
5. वही पृ 24
6.
7. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.400
8. कृष्णाचार्य - हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ - पृ. 43

इन मुद्रणालयों में हिन्दी ग्रंथों का मुद्रण होता था । देश के नाना भागों में और भी प्रेस स्थापित हुए जिनमें चन्द्र प्रभा प्रेस, लाइट प्रेस [बनारस], नवल किशोर प्रेस [लखनऊ], मुंबई उल. उलूम प्रेस [मथुरा], ब्रह्म प्रेस [इन्दौर], गणपत कृष्णाजी प्रेस, ग्रंथ प्रकाश प्रेस, निर्णय सागर प्रेस [बंबई] आदि उल्लेखनीय हैं[1] ।

मिशनरियों का कार्य

भारतीय मुद्रणालयों के इतिहास में ईसाई मिशनरियों का महत्वपूर्ण स्थान है[2] । धर्म-प्रचार को लक्ष्य में रखते हुए ही मिशनरियों ने मुद्रणालय खोले । इनमें प्रमुख है बेप्टिस्ट मिशनरियों द्वारा स्थापित श्रीरामपुर का प्रेस[3] । इसी में बाइबिल का प्रथम मुद्रण हुआ[4] । कलकत्ते के बेप्टिस्ट मिशन प्रेस के अनुकरण में आगरा तथा बनारस में मिशन प्रेस स्थापित हुए । सन् 1836 में अमेरिकन प्रेस बिटेरियन मिशन ने लुधियाना प्रेस स्थापित किया[5] । 1840 में आगरा के निकट सिकन्दरा में भी एक प्रेस की स्थापना हुई[6] ।

भारतीय सहयोग

यह कहना गलत है कि मुद्रणालयों की स्थापना की ओर केवल पाश्चात्यों की दृष्टि ही गई । बहुत से भारतीयों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये ।

---

1. कृष्णाचार्य - हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रंथ - पृ.45
2. Dr. Ram Ratna Batnagar - The Rise and Growth of Hindi Journalism p.22
3. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - pp.321-322
4. Sarada Devi Vedanlankar - The Development of prose literature in the early 19th Century.p.
5. कृष्णाचार्य - हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रंथ - पृ.42

सन् 1674 - 75 में ही भीमजी पारेख ने बंबई में एक प्रेस की स्थापना हुई थी ।[1] इसके संस्थापक थे भीमजी पारेख । इस प्रेस का काम बहुत समय तक जारी नहीं रह सका पर यह मानना ही पड़ता है कि इससे प्रेरणा ग्रहण करके कई भारतीय इस क्षेत्र में आगे बढे । पण्डित राम बाबू[2] ने सन् 1805 - 1806 के आसपास कलकत्ते में संस्कृत प्रेस की स्थापना की । कलकत्ते में 1822 में जो प्रेस स्थापित हुआ उसके पीछे जयनारायण नामक भारतीय का प्रयत्न वर्तमान था[3] । मुद्रणालयों के प्रसार में राजाराम मोहन राय जैसे भारतीय नेताओं ने भी सहयोग दिया[4] ।

पत्र - पत्रिकाएं

भारत में पत्र-पत्रिकाओं का आरंभ भी प्रथमत: अंग्रेज़ों ने ही किया[5] । यहाँ का प्रथम समाचार पत्र है, "दि बंगाल गज़ट" । इसका प्रकाशन सन् 1780 में जेम्स आगस्टस हिकी नामक अंग्रेज़ी महोदय ने किया[6] । वही इसका संपादक थे और लेखक भी । इसमें राजनीतिक विषयों पर टिप्पणियां प्रकाशित होती थी । इसलिए यह पत्र बहुत समय तक प्रकाशित नहीं हो सका[7] । फिर भी प्रथम प्रयोग के रूप में इसका महत्व नगण्य नहीं है ।

---

1. हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम - सं॰वेदप्रताप वैदिक - प्र॰सं॰ पृ॰29
2.
3. कृष्णाचार्य - हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ
4. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.334
5. Sarada Devi Vedalankar - The Development of Prose literature in the 19th Century p.167
6. Ibid p.168
7. हिन्दी पत्रकारिता - विविध आयाम सं॰डॉ॰वेदप्रताप वैदिक - पृ॰29

प्रारम्भिक पत्रों में उल्लेख योग्य हैं "मद्रास कूरियर" [1780 में मद्रास से प्रकाशित] और "बंबई कूरियर" [1789 में बंबई से प्रकाशित]। 1780 में सरकार के संरक्षण में कलकत्ते से "इण्डियन गज़ट" का प्रकाशन शुरू हुआ । सन् 1791 और 1857 के बीच कलकत्ते से निम्नलिखित अंग्रेज़ी पत्र प्रकाशित हुए ।

1. दि ओरियन्टल स्टार
2. दि हरकारा
3. दि टेलिग्राफ
4. दि कलकत्ता कूरियर
5. दि एशियाटिक मिरर
6. दि कलकत्ता इंग्लिश मैन

इनके अनुकरण पर भारतीय भाषाओं में भी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं ।

सन्. 1818 में श्रीरामपुर के मिशनरियों ने बंगला का प्रथम समाचार पत्र "समाचार दर्पण" प्रकाशित किया[1] । तीन वर्षों के बाद [1821 में] बंगला की प्रथम साप्ताहिक पत्रिका "संवाद कौमुदी" अस्तित्व में आयी[2] । इसके संपादक - प्रकाशक थे राजा राममोहन राय । उन्होंने सन् 1881 में ईसाइयों की साम्प्रदायिकता के वैचारिक प्रतिकार का संकल्प लेकर "ब्रह्मोनिकल मेगज़ीन" का प्रकाशन भी आरंभ किया[3] ।

---

1. हिन्दी पत्रकारिता - विविध आयाम - सं. डॉ. वेदप्रताप वैदिक-पृ. 29
2. Dr. Ram Ratna Bhatnagar - The Rise and Growth of Hindi Journalism p. 22
3. कृष्ण बिहारी मिश्र - हिन्दी पत्रकारिता - पृष्ठ सं. पृ. 20

हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र "उदन्त मार्तण्ड" सन् 1826 में प्रकाशित हुआ[1]। इसके संपादक थे पं॰ जुगल किशोर शुक्ल। यह साप्ताहिक पत्र ग्राहकों की कमी के कारण शीघ्र ही बन्द हो गया। राजा राममोहन राय ने "बंगदूत" नामक एक दैनिक भी निकाला था (1829)[2]। इसके अलावा "प्रजा मित्र" (1834) "बनारस अखबार" (1845), "मार्तण्ड" (1846) "सुधाकर" (1850) जैसे पत्र भी प्रकाशित हुए।

सन् 1854 में कलकत्ते से हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक "समाचार सुधावर्षण" निकला। इसके संपादक थे श्याम सुन्दर सेन[3]।

भारत में पत्रकारिता का इतिहास ब्रिटीश शासन का इतिहास है[4]। पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया। इसके माध्यम से नये विचारों और भावों का बड़ी द्रुतगति से प्रचार हुआ। भारतीय जनता को नये मूल्यों की अवधारणा का अवसर प्राप्त हुआ।

इससे स्पष्ट होता है कि उन्नीसवीं शती का मध्य, भारतीय समाज में धार्मिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे जन जीवन में मौलिक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। मुद्रणालयों की स्थापना के परिणाम स्वरूप समाज की विभिन्न श्रेणियों के लोग एक दूसरे के अधिक निकट आने लगे। शिक्षा का सर्वत्र प्रचार होने लगा।

---

1. Sarada Devi Vedalankar - The Development of Prose literatur in the early 19th Century p.178
2. कृष्ण बिहारी मिश्र - हिन्दी पत्रकारिता - पृ.46
3. वही पृ.34
4. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.77

भारतीय साहित्य पर अंग्रेज़ी प्रभाव

भारत की आधुनिक भाषाओं और उनके साहित्यों पर पश्चिम का प्रभाव, प्रगाढ और गहरा है।[1] सांस्कृतिक तथा सामाजिक अवरोध से भारतीय साहित्य को नवीन स्फूर्ति और प्राणवत्ता पश्चिम संपर्क के कारण ही प्राप्त हुई। नवीन विचार धाराओं ने उसके सामने विकास के नये क्षेत्र खोल दिये। फिर पुरातन साहित्यिक परिपाटी उन्हें अरोचक प्रतीत हुई।

पद्य, साहित्य का समानार्थक माना जाने लगा था। नवीन शिक्षा तथा संस्कृति के व्यापक प्रचार ने इस प्रवृत्ति को रोका। साहित्य केलिए जीवन की विविधताओं से सामग्री ग्रहण करना आवश्यक माना गया। जीवन की जटिलता तथा विविधता को अभिव्यक्ति देने की क्षमता पद्य में नहीं है। उस केलिए विचार संवहन में समर्थ, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति केलिए उपयोगी गद्य की आवश्यकता है। ऐसे गद्य को जन्म दिया आधुनिक युग ने। इसी कारण कविता के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना आदि साहित्यिक विधाओं ने उन्नति पायी।[2]

शुरू शुरू में अंग्रेज़ी गद्य के अनुवाद के द्वारा ही हमारी भाषाओं के गद्य का विकास होता है। मिल्टन, बर्क, स्पेंसर, रूसो जैसे पश्चिमी लेखकों की रचनाओं का अनुवाद किया गया। इससे एक ओर गद्य का परिमार्जन संभव हुआ और दूसरी ओर नवीन विचार धाराओं का प्रवेश। इस प्रकार साहित्य तथा संस्कृति दोनों के क्षेत्रों में आधुनिक भारतीय-हृदय पूर्ण रूप से पश्चिम का अनुसरण करने लगा।

1. D.P. Singhal - India and World Civilization Vol.II p.301
2. R.C. Majumdar - History of Freedom Movement in India Vol.I p.308

अंग्रेज़ों का प्रथम केन्द्र कलकत्ता था[1] । इसलिए स्वाभाविक है कि कलकत्ता नगरी ही पश्चिमी सभ्यता का प्रथम केन्द्र रही । साहित्यिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया भी यहीं शुरू हुई । यहीं सन् 1800 में लार्ड वेलेज़्ली ने फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की[2] । इसी कालेज में आधुनिक भारतीय भाषाओं के विभाग प्रथमतः खुले । इस कालेज के तत्वावधान में हिन्दी, बंगला, उर्दू जैसी भारतीय भाषाओं में गद्य-ग्रंथों का प्रणयन हुआ । इस युग के हिन्दी लेखकों में लल्लूलाल, सदासुख लाल, सदल मिश्र आदि प्रमुख हैं[3] । यहीं से बंगला व्याकरण, अंग्रेज़ी बंगला शब्द कोश जैसे श्रेष्ठ ग्रंथ प्रकाशित हुए । बंगला विभाग के अध्यक्ष विलियम केरे ने बाइबिल का हिन्दी अनुवाद भी निकाला[4] । इस कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे विलियम प्राइस[5] ।

गद्य का प्रसार

भारतीय साहित्य की परम्परा में यद्यपि गद्य भी वर्तमान था तथापि पद्य साहित्य का साम्राज्य अपेक्षाकृत अधिक था । पुराना गद्य अशक्त पड़ा हुआ था । उसमें प्राणशक्ति का सर्वथा अभाव था । पश्चिमी साहित्य के संबन्ध से उसमें नवीन गतिशीलता आयी । प्रौढ विचारों और सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति की समर्थता उसे प्राप्त हो गई ।

---

1. Jawaharlal Nehru - Discovery of India p.338
2. डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-प्र॰सं॰पृ॰8
3. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका-पृ॰343
4. पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰402
5. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका-पृ॰321

अन्य साहित्यिक प्रकार

नवीन लेखकों की एक मण्डली अस्तित्व में आयी । इनमें प्रमुख है ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिम चन्द्र चेटर्जी, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि । इन्हीं के प्रयत्न से जनता ने साहित्य की नई विधाओं से परिचय पाया ।[1] रवीन्द्रनाथ के गीतों में पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद का भारतीय स्फुरण हुआ ।[2] बंकिम चन्द्र के उपन्यासों में स्काट की कला की झलक मिली । मधुसूदन दत्त की कविता में शक्ति और सौन्दर्य का अपूर्व सामंजस्य पाया गया । इन्हीं महापुरुषों ने बंगला साहित्य को उत्कर्ष की चरम सीमा तक पहुँचाया ।

प्रान्तीय भाषाएं और साहित्य

बंगला साहित्य की प्रगति अन्य भारतीय भाषाओं की प्रगति का भी कारण बनी । केवल कविता का क्षेत्र ही नहीं, कहानी, उपन्यास, नाटक जैसे अन्य साहित्यिक प्रकारों में भी नवीनता के लक्षण दिखाई पड़ने लगे । हिन्दी के समान मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम आदि भाषाओं का साहित्य प्रतिपद विकास पाने लगा । उच्च कोटि के निबन्ध प्रचुर मात्रा में लिखे और नवीन आलोचना - पद्धति का भी आविर्भाव हुआ ।

पश्चिमी प्रभाव का मुख्य माध्यम यद्यपि अंग्रेजी साहित्य ही था तथापि रूसर, जर्मन, फ्रैंच जैसे समृद्ध साहित्यों से भी प्रेरणा ग्रहण की गई ।

---

1. पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास -
2. डॉ॰ श्रीकृष्णलाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - पृ॰25

हिन्दी साहित्य का नवयुग

सांस्कृतिक संक्रमण के इस युग के पूर्व, जहाँ तक हिन्दी की बात है, साहित्यिक क्षेत्र में ब्रज-भाषा का प्रभुत्व था । ब्रज भाषा ही काव्योचित मानी जाती थी । लेकिन नवयुग ने इस धारणा को गलत साबित किया । इसमें संदेह नहीं कि ब्रज भाषा अत्यंत मधुर भाषा है । पर यह मधुरिमा जीवन की समग्रता में नहीं आ पाई है । असली जीवन में कोरे यथार्थ की कड़ुवाहट है । इसलिए ब्रजभाषा के स्थान पर एक ऐसी भाषा की आवश्यकता महसूस हुई जो जीवन के समस्त व्यापारों को अपनी बहुलता और व्यापकता के साथ प्रस्तुत कर सके । अंग्रेज़ी साहित्य तथा संस्कृति के प्रभाव ने जीवन के सहज तथा जटिल स्वरूप को हमारे सामने पेश किया । उसकी अभिव्यक्ति केलिए उचित माध्यम की आवश्यकता थी । इस आवश्यकता की पूर्ति खड़ी बोली ने की । इसमें जीवन के सरल तथा जटिल अनुभवों की आसानी से अभिव्यक्ति हो सकी ।

मिशनरी लोग भी अपने धर्म प्रचार केलिए उपयुक्त माध्यम की खोज में थे । खड़ी बोली, शताब्दियों के पहले ही साहित्यिक क्षेत्र में प्रयुक्त थी । पर ब्रज भाषा के माधुर्य ने उसके विकास में रोड़े अटकाये थे । आधुनिक युग ने ब्रज-भाषा को छोड़ा और खड़ीबोली को स्वीकार किया । इस प्रकार उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हिन्दी के गद्य-साहित्य का उन्नयन संभव हुआ ।

भारतेन्दु की क्रान्तदर्शिता

खड़ीबोली की महिमा और उपादेयता को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने समझ ली । वे बहुमुखी प्रतिभा - सम्पन्न व्यक्ति थे । उनका अध्ययन व्यापक था और असाधारण गहरी । उन्होंने अंग्रेज़ी के अतिरिक्त बंगला, संस्कृत जैसे भारतीय साहित्य का भी अध्ययन किया था । उनकी कारयत्री प्रतिभा तीव्र थी । उनकी साहित्यिक चेतना रूढ़ि-मुक्त तथा आधुनिकता-बोध से संपुष्ट थी । उनका व्यक्तित्व सुगठित और संयत था । उन्होंने बड़ी निर्भीकता के साथ हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का उद्घाटन किया ।

हिन्दी गद्य का प्रसार

भारतेन्दु यद्यपि काव्य क्षेत्र में ब्रज भाषा के पक्षधर थे । पर उन्होंने गद्य केलिए खड़ीबोली को ही उपयुक्त माना । यह उनकी दूर दर्शिता का परिचायक है । उन्होंने गद्य-साहित्य को अभिवृद्ध किया । उनके मित्र भी साहित्य के विकास में सतत जागरूक थे । इस प्रकार हिन्दी साहित्य की प्रगति तीव्रतर हो गई ।

संस्थाओं का योगदान

गद्य के विकास में व्यक्तियों के अतिरिक्त संस्थाओं का योगदान भी महत्व रखता है । कई संस्थाओं ने अपने सिद्धान्त प्रतिपादन के माध्यम के रूप में हिन्दी गद्य को ग्रहण किया । इसके कारण गद्य का स्वरूप बहुत ही निखर उठा और वह जीवनोपयोगी हो सका ।

---

1. डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - दूसरा सं० पृ०11

फोर्ट विलियम कालेज

फोर्ट विलियम कालेज का उल्लेख ऊपर हो चुका है । आधुनिक विचार धारा के प्रचार में इसका योगदान अनुपम है । इसके भाषा-विभागों मे गद्य के विकास केलिए जो कार्य किया उसका भी उल्लेख ऊपर हो चुका है । इस कालेज ने अनेक हिन्दी पुस्तकों की रचना कराई और सरकारी कामकाज में हिन्दी को भी स्थान दिलाया ।

हिन्दी के विकास में सांस्कृतिक संस्थाओं का योगदान

ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने भी देशी भाषाओं के विकास में योगदान दिया । ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय बंगाली थे । फिर भी वे थे हिन्दी के प्रबल समर्थक[1] । उन्होंने 1815 में वेदान्त सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया[2] । स्वामी दयानन्द सरस्वती की मातृ भाषा गुजराती थी[3] । उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में ग्राह्य घोषित किया । हिन्दी गद्य के निर्माताओं में उनका स्थान बहुत ऊंचा है । स्वामी जी की प्रसिद्ध रचनाएं हैं - "सत्यार्थ प्रकाश", "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका", "पंचमहायज्ञ विधि", "वेदान्तिध्वान्त निवारण"[4], "संस्कृत वाक्य प्रबोध", "संस्कार विधि", "गोकरुणा निधि" आदि । इन ग्रंथों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि हिन्दी अब सूक्ष्मतर भावों की अभिव्यक्ति केलिए सक्षम हो चुकी है । धार्मिक आन्दोलनों में आर्य समाज द्वारा हिन्दी का प्रयोग एक शस्त्र के रूप में किया गया[5] ।

1. डॉ॰ गणपति चन्द्रगुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-पृ॰83।
2. वही
3. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.356
4. लक्ष्मी नारायण गुप्त - हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन प्रथम सं॰पृ॰72

शिक्षा संस्थाएं

इनके अतिरिक्त बहुत सी शिक्षा संस्थाओं ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया । अनेक गद्य पुस्तकें प्रकाशित की गईं । उनके द्वारा जनता, यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान से परिचित हो गई । ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कार्य भी यहाँ उल्लेख योग्य है । कम्पनी के अधीन निम्नलिखित संस्थाएं कार्य करती थीं - कलकत्ता बुक सोसाइटी, आगरा बुक सोसाइटी, कमेटी ओफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स, आगरा कालेज, दिल्ली कालेज, आगरा नार्मल स्कूल आदि । इन संस्थाओं ने अनेक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित कीं ।

मिशनरियों का हिन्दी गद्य

गद्य साहित्य के विकास में मिशनरियों की देन विशेष उल्लेखनीय है । उनका लक्ष्य यद्यपि धर्म-प्रचार[1] था तथापि माध्यम के विकास की तरफ भी उन्होंने पर्याप्त ध्यान दिया । फलतः हिन्दी गद्य काफी लाभान्वित हुआ । धर्म-संबन्धी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं । पश्चिमी भाषाओं से हिन्दी में धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद किया गया । आधुनिक विज्ञान, इतिहास समाज शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति, भूगोल, खगोल आदि विषयों पर भी मिशनरियों ने पुस्तकें प्रकाशित कीं[2] ।

मिशनरियों की पुस्तकों की उल्लेखनीय विशेषता है प्रतिपादन की सरलता, भाषा की प्रांजलता और शैली की अकृत्रिमता । इनकी भाषा उर्दूपन से दूर है, अस्वाभाविक संस्कृत मोह से भी मुक्त है । इनकी भाषा में खड़ी बोली का विशुद्ध रूप पाया जाता है[3] ।

---

1. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास -पृ.830
2. पं. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.403
3. वही

मिशनरियों की हिन्दी बाइबिल का मिश्रित, अमिश्रित दोनों समाजों पर समान प्रभाव पड़ा । पुस्तकों के प्रकाशन केलिए मिशनरियों ने देश के अनेक संस्थाओं में मुद्रणालयों की स्थापना की [इनका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है] । उनके कुछ प्रकाशनों की सूचि यहाँ दी जाती है -

1. दाऊद के गीत [1836 ने. जी.टी.टामसन]
2. ईश्वरोक्ति शास्त्र धारा [1846 ने. जोन म्योर]
3. सत्यमत निरूपण [1848 हिन्दुस्तानी से ट्रान्सलेटेड]
4. दि प्रोफेट टेक्स्ट इन दि ओल्ड एण्ड न्यु टेस्टमेंट रैंडर्ड इन टु उर्दू एण्ड हिन्दी [1850 ने. जे.ए.शरमेन]
5. फूलों का हार [1850]
6. राबि का चरित्र [1852]
7. वेदान्त मत विचार [1853]

समाचार-पत्र और हिन्दी-गद्य

आधुनिक युग का सबसे सशक्त प्रचारकी माध्यम है समाचार पत्र । सचमुच समाचार पत्रों ने ही गद्य को इतना सहज, सुबोध, सरस तथा अनिवार्य बनाया । यह केवल हिन्दी के सन्दर्भ में ही नहीं, सभी भाषाओं के संबन्ध में कहा जा सकता है ।

समाचार पत्रों के प्रकाशन ने हिन्दी गद्य को अत्यधिक तथा शक्तिशाली बनाया । हिन्दी में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही पत्र प्रकाशित होने लगे थे । जैसे कि पहले ही सूचित किया गया, 'उदन्त मार्तण्ड' [1826-कलकत्ते से प्रकाशित] हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र है । इस पत्र ने व्यावहारिक हिन्दी गद्य का रूप परिनिष्ठित बनाया । इसके बाद आनेवाले प्रायः सभी पत्रों केलिए इसने आदर्श का काम किया ।

---
1. डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका -पृ.476

अन्य उल्लेख योग्य पत्र हैं - "कौतुक", "प्रजामित्र", "बनारस अखबार", "सुधाकर", "प्रजा हितैषी" आदि । इन पत्रों ने गद्य को सर्वजन सुलभ बनाया । इनके अलावा साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुई । प्रमुख मिशनरी पत्रिकाएं हैं - "दूत पत्रिका", "सहायक पत्रिका", "इवांजेलिक मसीह महिला", "ज्योतिकिरण" और "भानुदय" ।

धीरे-धीरे हिन्दी गद्य का रूप परिमार्जित होता गया और वह उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध, आलोचना आदि सभी साहित्यिक विधाओं केलिए उत्तम माध्यम के रूप में स्वीकृत हुआ ।

<u>प्रत्यवलोकन</u>

उपर्युक्त विवेचन से यही सिद्ध होता है कि भारतीय जन जीवन में आधुनिक युग का अरुणोदय ब्रिटीश - शासन के साथ होता है । परम्परावादी जनता ने इसके द्वारा वैज्ञानिक तथा भौतिकवादी संस्कृति के साथ संपर्क में आने का अवसर पाया । इसका सुफल यह हुआ कि हमें धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो गया । आदर्शवाद के झूलझूले से जनता क्रमशः सच्चाई के प्रकाश में आने लगी । अधःपतन के गर्त से समाज और राष्ट्र के उद्धार करने की आवश्यकता उसने समझ ली ।

---

1. Sharada Devi Vedalankar - The Development of Hindi prose and literature in the early 19th Century

निष्कर्ष

1. भारतीय राजनीति, समाज तथा साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकता का प्रवेश 1857 की प्रथम स्वतंत्रता - क्रान्ति से होता है। क्रान्ति ही जनता के जीवन तथा कला-साहित्य को उन्मुक्त बना सकती है।

2. आधुनिक युग, नवजागृति का युग है। पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार इसके आविर्भाव का प्रमुख कारण है।

3. आलोच्यकाल का भारतीय धर्म और समाज अन्धविश्वासों अनाचारों तथा जन्माधिष्ठित जाति-संप्रदायों के कारण विशृंखल था।

4. मध्यवर्ग का उत्थान आधुनिक युग की एक विशेष प्रवृत्ति है।

5. अंग्रेजी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य देश को हमेशा ब्रिटीश शासन के अधीन रखना था। अंग्रेजी के माध्यम से पश्चिमी संस्कृति के साथ हमारा सुदृढ संबन्ध स्थापित हो गया।

6. ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज आदि धार्मिक सांस्कृतिक संस्थाएं नवोत्थान के अग्रदूत हैं।

7. पश्चिमी संपर्क के प्रभाव से सारी भारतीय भाषाएं सामाजिक हुईं। उनका गद्य-साहित्य आधुनिकता की देन है।

8. शिक्षा और समाज-कल्याण के क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

9. समाचार-पत्र, मासिक पत्र, साप्ताहिक आदि आधुनिकता की उपज है।

****

अध्याय - 2

आधुनिक साहित्य का सामाजिक परिवेश

द्वितीय अध्याय

आधुनिक साहित्य का सामाजिक परिवेश

यद्यपि रचनाकार के माध्यम से ही साहित्य आविर्भूत होता है तथापि उसका असली निर्माता है समाज । समाज ही साहित्यकार और उसकी कृति का सर्जक है । इसलिए साहित्य के सही मूल्यांकन केलिए उसमें प्रतिबिंबित सामाजिकता का अध्ययन अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

साहित्य और साहित्यकार

साहित्यकार, सामाजिक प्राणी है । उसकी रचना सामूहिक जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है । साहित्य में ही सामाजिक चेतना का सच्चा प्रतिफलन विद्यमान है । प्रत्येक साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि है । वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करके कालानुरूप साहित्य का सृजन करता है । इसीलिए उसको[1] अपने समकालीन जीवन और परिस्थितियों का सफल निरीक्षण रखना चाहिए ।

---

1. [illegible] - [illegible] - [illegible] - [illegible]
   आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - पृष्ठ सं. [illegible]

लेखक मूलतः जीवन से ही जुड़ा रहता है । प्रकृति से, परिवेश से, सामाजिक संबंधों से, दायित्वों से, संस्कारों और मान्यताओं से लेखक, जुड़ा रहता है[1]। जीवन के साथ यह अटूट संबंध ही उसकी साहित्य-सृष्टि की आधार शिला है । साहित्य या कला का उद्भव ही आर्थिक - सामाजिक जीवन से ही हुआ है[2]। सामाजिक आधार से विच्छिन्न साहित्य या कला के अस्तित्व की कल्पना करना ही असंभव है[3]। इसलिए निस्संदेह यह तथ्य स्वीकार किया जा सकता है कि साहित्यकार और उसके साहित्य-प्रणयन का मूल आधार ही समाज है । समाज का जीवन्त चित्रण लेखक करता रहता है । समाज से साहित्य स्वयं प्रभावित होता है, अपनी साहित्य-सृष्टि से समाज को प्रभावित करता है, उसे एक नूतन रूप भी प्रदान करता है ।

साहित्य-रचना प्रथमतः और अंततः एक सामाजिक क्रिया ही है[4]। साहित्यकार पर समाज का जो प्रभाव पड़ता है उसका शाब्दिक प्रतिफलन है साहित्य । वह केवल वर्तमान जीवन पर ही आश्रित नहीं है । वह प्राचीन इतिहास का स्मृति पाठक है और भविष्य की ओर संकेत करनेवाला भी । समाज के द्वन्द्वात्मक विकास से साहित्य का अटूट संबंध है[5]। संक्रान्ति के इस युग में समाज, राज-व्यवस्था, रीति और आचार, वस्तु और शैली, तुक और छन्द सब कहीं और परिवर्तन होता रहता है[6]। इन सब परिवर्तनों का सफल दृष्टान्त है आधुनिक हिन्दी साहित्य ।

---

1. भीष्म साहनी - संचेतना - सितंबर दिसंबर - 1977, सं॰डा॰महीप पृ॰40
2. Karl Marx - Literature and art - P. 1.
3. शिवकुमार मिश्र - साहित्य और सामाजिक संदर्भ,प्रथम सं॰ पृ॰ 9
4. धर्मयुग - 2 अक्तूबर 1976, सं॰डॉ॰ धर्मवीर भारती, पृ॰ 23
5. नाटककार अश्क - कौशल्या अश्क द्वारा संकलित प्रथम सं॰ पृ॰163
6. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" - त्रिशंकु-1973, पृ॰53

समाज के प्रति साहित्यकार का दायित्व

साहित्यकार, सृष्टि का सर्वाधिक चेतन संवेदनशील व्यक्ति होता है। उसके व्यक्तित्व का विकास समाज में ही होता है। सामाजिक जीवन से वह इतना अधिक जुड़ा रहता है कि उसी को वह आंकता है, उसी में वह सत्य को ढूंढता है उसी की तह में पैठकर वह जीवन मूल्य भी खोजता है[1]। उसीकी विसंगतियों और अन्तर्विरोधों से उसकी अनुभूति उद्वेलित होती है। समसामयिक व्यक्ति समाज तथा अभिरुचियों को साहित्यकार जब तक आत्मसात नहीं कर लेता तब तक उसकी कृतियों में मौलिकता नहीं आती[2]। अत: सामयिक जीवन की जानकारी साहित्यकार के परम आवश्यक है। ऐसी स्थिति में ही वह विराट, सार्वकालिक जीवन यथार्थ के अंकन में सहायक बन सकता है[3]।

समाज के प्रति साहित्यकार का बड़ा भारी दायित्व है। वह समाज के रहन-सहन, आचार-विचार और जीवन से अनुभव प्राप्त करता है और उस अनुभव को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देता है। इसी में साहित्यकार का सामाजिक दायित्व निहित है[4]।

अपनी परंपरा से भलीभांति परिचित होकर उससे उपादेय वस्तु ग्रहण करके अनुभूतियों को सरलता पूर्वक समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना कलाकार का कर्तव्य है[5]। अपने समाज के लिए ही लेखक लिखता है। अत: लेखन कला को व्यवसाय न बनाकर एक धर्म या संकल्प बनाना भी कलाकार का कर्तव्य है[6]।

1• भीष्मसाहनी सचेतना - सितंबर-दिसंबर 1977, सं•महीपसिंह-पृ•40
2• बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक - दूसरा सं• पृ•32
3• नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - प्रथम सं• पृ•403
4• विष्णु प्रभाकर - सचेतना - सितंबर-दिसंबर 1977, सं•डा•महीपसिंह-पृ•1
5• रामचन्द्र शुक्ल - कला और आधुनिक प्रवृत्तियां - द्वितीय सं•पृ•41
6• सं• धर्मवीर भारती - धर्मयुग - 4, अक्तूबर 1976, पृ•23

क्रान्तिदर्शी ही साहित्यकार है

इस बात में कोई संदेह नहीं कि साहित्यकार समाजद्रष्टा है[1]। वह सामयिक मूल्यों का साक्षात्कार करता है। वे ही मूल्य समाज में व्याप्त होते हैं। उन्हीं पर समाज टिका हुआ है।

सामाजिक परिवर्तन में साहित्यकार का योगदान महत्वपूर्ण है। विकास के लिए अनिवार्य सामाजिक संघर्ष में साहित्यकार गौरवपूर्ण भूमिका निभाता है[2]। वह समाज - व्यवस्था के विकृत चेहरे को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करता है और उसके प्रति जन-मानस में एक सात्विक रोष सुलगाने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में सफल होने में ही साहित्यकार की असली विजय निहित है। आदि कवि वाल्मीकि ने अपने "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम शाश्वतीसमा:" वाले श्लोक में समाज के विरोधी तत्वों का संहार कर देने का आदर्श रखा है। "रामचरित मानस" में तुलसीदास ने सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह का स्वर उठाया है[3]।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक व्यवस्था के प्रति साहित्यकार की असन्तुष्टि, विद्रोह का रूप धारण करती है। इसकी अभिव्यंजना साहित्य में ही होती है। यही सामाजिक-परिवर्तन का पथप्रदर्शक बन जाता है।

साहित्य और सामाजिकता

साहित्य में सामाजिक चित्रण का सर्वमान्य स्थान है। आधुनिक साहित्य में सामाजिकता के आकलन की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि समाजके

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - अशोक के फूल मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है सप्तम सं. पृ. 166
2. सं. धर्मवीर भारती धर्मयुग 4, जनवरी 1976, पृ. 18
3. गोस्वामी तुलसीदास - रामचरित मानस - बालकाण्ड, उत्तरकांड

नव निर्माण में सहयोग देना ही साहित्य रचना का मुख्य उद्देश्य माना जाने लगा है।[1] सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों (सामाजिक व्यवस्था, वातावरण, धर्म-कर्म, रीतिरिवाज, शिष्टाचार, लोक व्यवहार आदि) से ही साहित्य की सामग्री संग्रहीत की जाती है। सामाजिक विषमताएं ही साहित्य को महत्ता देती हैं। इसलिए सामाजिकता, साहित्य का प्रमुख अंग होती है।

यह कहा जा चुका है कि साहित्य रचना की प्रक्रिया मौलिक रूप से सामाजिक है। प्रत्येक युग की अपनी विशेषताएं होती हैं। ये विशेषताएं तद्युगीन साहित्य में सजीव रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। साहित्य की सामाजिकता का रहस्य यही है।

सामाजिक-चित्रण की प्रवृत्ति नूतन उदय नहीं है। साहित्य के उद्भव काल से लेकर सामाजिकता के आकलन की परंपरा चलती आ रही है। समाज के बिना साहित्य का कोई अस्तित्व नहीं है। इससे स्पष्ट है कि साहित्य में सामाजिक चित्रण का इतिहास अति प्राचीन है।

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में युगीन सत्य का अनावरण किया है। सभी साहित्यिक विधाओं में युग का सामाजिक जीवन ही अंकित होता है। काल परिवर्तन के अनुसार इसके रूप और अभिव्यंजना प्रणाली में भी परिवर्तन होता है। परिवर्तन और उसके हेतुओं की मीमांसा यहाँ अभीप्सित नहीं है।

भारतेन्दु युग से लेकर नेहरू युग (1965) तक के हिन्दी साहित्य में प्रतिबिंबित सामाजिकता की सामान्य चर्चा प्रमुख रचनाओं के आधार पर यहाँ की जा रही है। नाटक के अतिरिक्त कविता आदि अन्य प्रभेदों पर ही विचार किया जाएगा। नाटक का विशद विवेचन आगे अध्यायों में प्रस्तुत है।

---

1. नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - पृ.

हिन्दी उपन्यासों में सामाजिकता

उपन्यास सर्वाधिक जनप्रिय साहित्यिक विधा है । अतः उसीसे आरंभ करना अनुचित न होगा । भारतेन्दु युग के उपन्यास मुख्यतया सुधारवादी हैं । उनमें विविध प्रकार की विकृतियों से समाज को बचाने का आह्वान गूँज उठता है ।

भारतेन्दु की रचना "पूर्ण प्रकाश चन्द्र प्रभा में वृद्ध विवाह का विरोध और स्त्री शिक्षा का समर्थन है । राधाकृष्ण दास ने निस्सहाय हिन्दू में गोरक्षा आन्दोलन का चित्रण किया । लज्जाराम मेहता के विधवाश्रम में वृद्ध विवाह, विधवा की दीन दशा आदि सामाजिक समस्याओं का प्रतिपादन है । आदर्श हिन्दू [ले॰ लज्जाराम मेहता] में सती-प्रथा, विधवा विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा का विरोध, राज भक्ति का प्रदर्शन जैसी सामयिक प्रवृत्तियों का समर्थन है । सती-प्रथा और स्त्रीशिक्षा विरोध ने क्रमशः राजकुमारी और माधवी माधव [ले॰किशोरी गोस्वामी] में स्थान प्राप्त किया है । अनमेल विवाह की विकृतियों का प्रतिपादन ब्रजनन्दन सहाय के "सौन्दर्योपासक" किशोरी लाल गोस्वामी की "कुसुम कुमारी जैसे उपन्यासों में प्राप्त है । पुलिस विभाग की घूसखोरी का चित्रण गोस्वामी के चन्द्रावली में किया गया है । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का अधखिला फूल ब्रजनन्दन सहाय की "आरण्य-बाला" आदि रचनाएं नारी शिक्षा का समर्थन करती हैं । "अबला बीवी" [ले॰ गोपाल राय गहमरी] "पुनर्जन्म" [किशोरी लाल गोस्वामी] आदि में बहुविवाह के दोषों का चित्रण है ।

भारतेन्दु युग के पश्चात् प्रेमचन्द ने उपन्यास को नया उन्मेष और नई गति प्रदान की । ग्रामीण एवं नागरिक समाज की कुरीतियां, धार्मिक पाखण्ड, राजनीतिक आन्दोलन, क्रान्ति, अछूत समस्या, वेश्या-समस्या आदि प्रेमचन्द के औपन्यासिक विषय हैं । उनके "सेवा सदन" में दहेज-प्रथा,

1• प्रेमचन्द - सेवासदन - पृ•5

वेश्या समस्या[1] और धार्मिक अत्याचार आदि की आलोचना की गई है। "कर्मभूमि" में जमीन्दारी शोषण,[2] धार्मिक अत्याचार, दहेज[3] जाति-पाति विधवा समस्या[4] मजदूरों किसानों जैसी समस्याएं उठाई जाती हैं। "गोदान" किसानों के लूट-खसोट का विस्तृत वर्णन करता है।[5] साथ ही, इसमें अवैध-संबंध, अनमेल-विवाह, पुलीस का अत्याचार जैसी समकालीन समस्याएं भी चर्चित हैं। गबन एक ओर स्त्रियों की आभूषणप्रियता का दुष्परिणाम दिखाता है और दूसरी ओर अनमेल विवाह की विफलता का। "कायाकल्प" में दहेज प्रथा[6] बहु विवाह और अवैध प्रेम की आलोचना है। अनमेल-विवाह से उत्पन्न पारिवारिक विशृंखलता "निर्मला" उपन्यास में चित्रित होती है।[7] "रंगभूमि" नारी जागरण, संयुक्त-परिवार प्रथा, अन्तर्जातीय विवाह, ब्रिटीश शासन-नीति आदि का वर्णन करती है। "प्रेमाश्रम" के प्रतिपाद्य हैं - किसान आन्दोलन, गरीबों पर पुलिस का अत्याचार जमीन्दारी शोषण, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य, संयुक्त परिवार की समस्या आदि। "वरदान" विधवा समस्या पर आधारित है। प्रेमचन्द के समसामयिक उपन्यासकार भी सामाजिक समस्याओं के प्रस्तुतीकरण में विचक्षण हैं। वृन्दावनलाल वर्मा का कुंडली चक्र विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक का भिखारणी जैसे उपन्यास बहु विवाह के दोषों पर प्रकाश डालते हैं।

भगवती प्रसाद वाजपेयी की पतित की साधना विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की माँ[8] भगवती चरण वर्मा का "तीन वर्ष"[9] चतुरसेन शास्त्री का

1.	प्रेमचन्द -	सेवासदन	-	पृ.87
2.	वही	कर्मभूमि	-	पृ.28
3.	वही	वही	-	पृ.21
4.	वही	वही	-	पृ.22
5.	वही	गोदान	-	पृ.247
6.	वही	कायाकल्प	-	पृ.20-21
7.	वही	निर्मला	-	पृ.189
8.	कौशिक -	माँ	-	पृ.313
9.	भगवती चरण वर्मा -	तीन वर्ष	-	पृ.255

"आत्मदाह", यशपाल का "मनुष्य के रूप" राधिका रमण प्रसाद सिंह का "संस्कार", मन्मथनाथ गुप्त का "अवसान" आदि कृतियों में वेश्या समस्या पर प्रकाश डाला गया है ।

जमीन्दारों द्वारा किसानों की गाढ़ी कमाई का शोषण कैसे किया जाता है । इसका प्रतिपादन प्रतापनारायण श्रीवास्तव अपने "विजय" उपन्यास में करता है[1] । यशपाल का "मनुष्य का रूप" मजदूरों का रक्त चूसनेवाले पूंजीपतियों का परिचय देता है[2] । जबकि उन्हीं का "देशद्रोही" पूंजीपतियों के आडंबर पूर्ण जीवन का पर्दाफाश करता है । चढ़ती धूप का लेखक अंचल पूंजीपति शोषण को समाप्त करने की आवश्यकता पर बल देता है[3] । रांगेय राघव के घरोंदे [1946] में सामन्तीय शोषण के विरुद्ध विद्रोह करने केलिए कृषकों के संगठित होने की अनिवार्य आवश्यकता स्थापित की जाती है[4] ।

भारतीय स्वातंत्र्य - संग्राम का प्रतिफलन भी तत्कालीन उपन्यासों में पाया जाता है । भगवती चरण वर्मा के टेढ़े मेढ़े रास्ते की पृष्ठ भूमि सन् 1930 के राजनीतिक आन्दोलनों की घटनाएं हैं । सन् 1942 के आन्दोलनों का सशक्त चित्र यशपालकृत "मनुष्य का रूप" प्रस्तुत करता है । अंचल की नई इमारत में क्रान्तिकारी की असफल क्रान्ति के सन्दर्भ में हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रतिपादन है । साम्राज्यवाद को नष्ट करने तथा राष्ट्र को आजाद कराने का आह्वान "घरोंदे" [ले•रांगेय राघव] में किया गया है । उदयशंकर भट्ट का नया मोड़, हजारी प्रसाद द्विवेदी की बाण भट्ट की आत्मकथा देवेन्द्र सत्यार्थी की कठपुतली आदि रचनाएं सांप्रदायिकता का विरोध करती हैं ।

1• प्रताप नारायण श्रीवास्तव - विजय - दूसरा भाग - पृ•613-614
2• यशपाल - मनुष्य के रूप - पृ•162
3• अंचल - चढ़ती धूप - पृ•182-183
4• रांगेय राघव - घरोंदे - पृ•263

पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण ने आधुनिक भारतीय समाज को कहाँ पहुँचा दिया, इस पर रांगेय राघव "घरौंदे" में और यशपाल मनुष्य के रूप में विचार करते हैं। अचल मेरा कोई में वृन्दावनलाल वर्मा स्त्री-पुरुष संबंधों की समस्याओं का चित्रण करते हैं। विष्णु प्रभाकर का तट के बन्धन और यशपाल का "मनुष्य के रूप" दहेज की चर्चा करते हैं। अंचल की मरुका में अनमेल विवाह के विरुद्ध विद्रोह है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक गतिविधियों ने उपन्यास साहित्य में पर्याप्त स्थान पाया है।

देश-विभाजन को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गये। "झूठा सच" वह फिर नहीं आयी, बूँद और समुद्र आदि उनमें उल्लेखनीय हैं। यशपाल का झूठा सच दो भागों में विभक्त है। इसके प्रथम खंड में भारत विभाजन का चित्रण है। द्वितीय खंड में पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के पुनर्निवास से संबद्ध समस्यायें, प्रथम आम चुनाव, गिरी हुई राजनीतिक मान्यताएं आदि बातें प्रतिपादित हैं। वह फिर नहीं आई भगवतीचरण वर्मा की रचना है। यह देश विभाजन से उत्पन्न विषमता और कुंठा की कहानी कहती है। अमृतलाल नागर के बूँद और समुद्र में स्वतंत्र भारत की राजनीतिक स्थिति, देश विभाजन, शरणार्थी समस्या, विकास योजनाएं, चुनाव, साम्प्रदायिकता आदि बातें चित्रित हैं

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक वातावरण को प्रस्तुत करता है, अनन्तगोपाल शेवड़े का भग्न मंदिर। अमृत राय का हाथी के दाँत कांग्रेसी प्रशासन की व्यंग्यात्मक कथा है। हिमांशु श्रीवास्तव की नदी फिर बह चली चुनाव और उससे संबद्ध भ्रष्टाचार का वर्णन करती है। अन्तिम चरण में स्वतंत्र भारत की विभिन्न राजनीतिक दलों की स्वार्थपरता पर व्यंग्य किया गया है। रांगेय राघव का "बौना और घायल फूल" स्वतंत्र भारत के देशी रियासतों की समस्याओं पर प्रकाश डालता है। डॉ॰ देवराज ने "अजय की डायरी" में विश्व विद्यालय के कलुषित वातावरण के चित्रण के द्वारा यह सिद्ध किया है कि राजनीति की अनैतिकता ने अपना प्रभाव विश्व विद्यालय पर डाला है।

चीनी आक्रमण और राष्ट्रीय संकट के सन्दर्भ में विरचित उपन्यास है, प्रतापनारायण श्रीवास्तव का विनाश का बादल और उमाशंकर का देश नहीं झुकेगा" । मन्मथनाथ गुप्त के बहता पानी" में स्वतंत्रता-प्राप्ति के उत्तरकाल में किए गए क्रान्तिकारी आंदोलनों का लेखा-जोखा है ।

आचार्य चतुरसेनशास्त्री ने उदयास्त में सामन्तवाद का विघटन, अछूत समस्या, मजदूर मिल मालिक संघर्ष ऊंच-नीच भावना, शरणार्थियों और किसानों की समस्याएं आदि पर विचार किया है । उनका "अमरबेल" सहकारिता, ग्राम शिक्षा, प्राचीन नवीन का संगम, जमीन्दार, की समाप्ति, हरिजनोद्धार आदि का सफल प्रदर्शक है । राहुल सांकृत्यायन का मधुर स्वप्न सामन्ती व्यवस्था के वैभव विलास के साथ साथ उसके अत्याचारों का भी अनावरण करता है ।

लक्ष्मी नारायण लाल का उपन्यास बया का घोंसला और सांप भारतीय गांवों के सामाजिक जीवन की झांकी देता है । रांगेय राघव ने ग्रामीण जीवन की पृष्ठ भूमि पर "पथ का पाप लिखा । गंगा मैया [भैरव प्रसाद गुप्त] में कृषकों का आक्रोश सुनाई पड़ता है । नागार्जुन के बलचनमा, रतिनाथ की चाची आदि कृतियों में शोषण के प्रति किसानों की उग्र प्रतिक्रिया दिखाई गई है । अमृतराय के बीज उपन्यास का आधार देहाती जीवन है । शिवानी श्रीवास्तव की नदी फिर बह चली, ग्रामीण जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है राग दरबारी [श्रीलाल शुक्ल] अलग अलग वैतरणी [शिव प्रसाद सिंह], टूटता जल" [रामदरश मिश्र] आदि रचनाएं स्वातंत्र्योत्तर भारत के गांवों में लोकतंत्र के नाम पर अभिव्याप्त संकीर्ण जातीय राजनीति, अराजकता, आर्थिक दुरवस्था आदि का उद्घाटन करती है ।

अनमेल विवाह का प्रतिपादन नागार्जुन का "नया पौधा" धर्मवीर भारती का सूरज का सातवां घोड़ा, उषादेवी मित्रा का "पिया" डॉ॰ देवराज का "पथ की खोज" जैसे उपन्यासों में मिलता है ।

नारी मुक्ति आन्दोलनों का समर्थन करनेवाली स्वातंत्र्योत्तर औपन्यासिक रचनाएं हैं - "पुरुष और नारी" (राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह) चढ़ती धूप (अंचल) पिया (उषादेवी मित्रा), निर्मला (भगवती प्रसाद वाजपेयी), दादा कामरेड (यशपाल), निर्वासित (इलाचन्द्र जोशी) दायरे (रांगेय राघव) आदि ।

"प्रेम बोलता है" स्वातंत्र्योत्तर रचना है । इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है । इसके द्वारा समाज की आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है । उपेन्द्रनाथ अश्क घूमता आईना में नागरिक जीवन के वैविध्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं । भगवतीचरण वर्मा के भूले बिसरे चित्र (1959) में चार पीढ़ियों की कथा है । सूदखोरी, जमींदारी, पारिवारिक कलह, सामाजिक रीतिरिवाज, राष्ट्रीय आंदोलन आदि हैं इसके प्रतिपाद "अपने खिलौने" में वर्मा मध्यवर्गीय सामाजिक विकृतियों पर व्यंग्य करते हैं । "आखिरी दांव" में बंबई के फिल्मी जीवन और अवैध व्यापार का यथार्थ चित्रण है । अवैध प्रेम संबंध का चित्रण सबहि नचावत राम गोसाई (भगवतीचरण वर्मा), भीतर का घाव (डॉ॰ देवराज) अमृत और विष (नागर) बूंद और समुद्र आदि में भी पाया जाता है ।

राजेन्द्र यादव के उपन्यास उखड़े हुए लोग में युगीन एकाकीन स्त्रीपुरुष संबंधों का विकृत रूप दृष्टव्य है । उखड़े हुए जमींदारों की विवशता है नागार्जुन कृत वरुण का बेटा में उन्होंने बाबा बटेसरनाथ में कृषकों की जागृति, संघर्ष और विजय के ज्वलंत विशद चित्र हैं । "सबहि नचावत राम गोसाई (भगवतीचरण वर्मा) और गंगा मैया (भैरव प्रसाद गुप्त) में पूंजीपतियों के शोषण के विरुद्ध जन-रोष अभिव्यक्ति पाता है ।

राजनीतिक क्षेत्र के परिवर्तन और पतन सटीक वर्णन है यशपाल के झूठा सच अमृतलाल नागर के "बूंद और समुद्र" में भी राजनैतिक नेताओं के चारित्रिक पतन का अनावरण है ।

अनमेल विवाह की समस्या भी रचनाकारों को उद्वेलित करने लगी है। नागार्जुन का "नयी पौध" धर्मवीर भारती का सूरज का सातवाँ घोड़ा आदि इसके प्रमाण हैं। इस प्रथा का विरोध ही किया गया है। रांगेय राघव के "घरौंदे" और विष्णु प्रभाकर के तट के बन्धन में अन्तर्जातीय विवाह को समर्थन मिला है।

स्वाधीन भारत की जनजागृति को रांगेय राघव ने सीधा सादा रास्ता में अत्यंत उदात्त भूमिका पर प्रस्तुत किया है।

<u>कहानी में सामाजिकता</u>

अधुनातन कहानीकार जीवन के विभिन्न पहलुओं से विषय चयन करते हैं। प्रेमचन्द के आगमन के साथ ही समाज और जीवन की वास्तविक समस्याएँ कहानीक्षेत्र में व्यापक रूप में स्वीकार्य होने लगीं। "मानसरोवर" के आठों भागों में प्रेमचन्द की कहानियाँ संग्रहीत हैं। जीवन के नाना क्षेत्रों से इस में कथापात्र स्वीकृत हैं। ज़मीन्दार, कृषक, महाजन, श्रमिक, विधवा, वृद्ध, बालक, युवती-युवक सबको प्रेमचंद साहित्य में पाते हैं। पर वस्तुतः प्रेमचन्द उपेक्षित निम्न तथा शोषित वर्ग के ही कलाकार हैं।

पूस की रात में प्रेमचन्द महाजनी प्रथा से पीड़ित गरीब किसानों का चित्र खींचते हैं "मुक्ति के रास्ते, बलिदान, विध्वंस आदि कहानियों में वर्ग चेतना मुखरित होती है। "मोद कुम" ठाकुर का कुआँ आदि कहानियों में अस्पृश्यता की भयानकता का चित्रण है। हरिजनोद्धार का सन्देश भी इनमें प्राप्त है। सवा सेर गेहूँ, मंत्र, जैसी कथाओं में जनसाधारण में व्याप्त अन्ध विश्वास और मिथ्याडंबर का चित्रण है। नारी जीवन के आदर्श को लेकर लिखी गई कहानियाँ हैं -"आभूषण, घर जमाई, दो सखियाँ, सौभाग्य के कोड़े, प्रेम का उदय, मर्यादा की वेदी, नरक का मार्ग, स्त्री और पुरुष, बड़ी बहिनें" आदि।

स्वतंत्रता संघर्ष की मर्मस्पर्शी घटनाओं ने अनेक कहानियों में अभिव्यक्ति पाई है । प्रेमचंद कृत "पत्नी से पति" "होली का उपहार" आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं । इनमें पति सुन्दर विदेशी कपड़े उपहार स्वरूप देना चाहते हैं । जबकि उनकी पत्नियां स्वदेशी कपड़े पहनना पसंद करती हैं । "माता जीता" नामक कहानी का नायक असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी का त्याग कर देता है । "मा डांट" में खादी पहनने तथा शराब न पीने, का आह्वान है । "दो बैलों की कथा" नामक कहानी का आधार अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन है । सौत नामक कहानी में बहु विवाह की निंदा की गई है । कफन में सामन्तवादी शोषण का चित्रण है । हिंसा परमोधर्म में हिन्दू मुस्लिम एकता का समर्थन है । "मंत्र" में यह दिखाया गया है कि जाति-प्रथा के परिणामस्वरूप निम्न जातवाले विधर्मी होते जा रहे हैं । "उद्धार" में दहेज के कुपरिणाम चित्रित हैं । "एक आंच की कसर" में सुधारक यशोदानन्दन के चित्रण द्वारा यह दिखाया गया है कि बाहर दहेज का विरोध करनेवाले समाज सुधारक भी अपने लड़के के विवाह के अवसर पर छिपाकर दहेज लेते हैं । समर यात्रा में मृदुला अपनी माँ और पति के साथ जुलूस में भाग लेती है । "शराब की दुकान" में मिसेज सक्सेना शराबबन्दी आंदोलन से प्रभावित होकर शराब की दुकान पर धरना देती है । नैराश्य लीला में विधवा जीवन का संवेदनात्मक चित्रण है । नरक का मार्ग कहानी में यह दिखाया गया है कि अनमेल विवाह से विधवाएं वेश्या बन जाती है ।

सामाजिक जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसका प्रेमचंद की कहानियों में अंकन न हुआ हो ।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियां भी सामाजिक जीवन का प्रतिपादन करनेवाली हैं । "वह प्रतिमा" (ले.विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक) नारीपर किये जानेवाले सामाजिक अत्याचारों का चित्रण है[1]।

---

1. विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक - वह प्रतिमा नामक कहानी मधुकरी कहानी सं ग्रह से

उनकी 'तार्ई' कहानी में सन्तानहीन रामेश्वरी पंडितों और ज्योतिषियों के बताए हुए पूजा - पाठ द्वारा पुत्र लाभ की आशा करती है ।

सुदर्शन रचित "सत्यमार्ग" का देशभक्त सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर कांग्रेस में शामिल होता है । "मुक्ता का उपहार" में भी स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव द्रष्टव्य है ।

भगवती चरण वर्मा कृत "कुंवर साहब मर ए" कहानी में कुंवर कुंजल नारायण सत्याग्रहियों में सम्मिलित होकर स्वयं गिरफ्तारी केलिए प्रस्तुत होता है

कांग्रेस के उत्थान का प्रतिपादन आचार्य चतुरसेन शास्त्री के लोह पुरुष" कहानी में है । कीर्ति के लिए सत्याग्रह में भाग लेनेवाले स्वार्थी कांग्रेसी कार्यकर्ताओं पर वारंट कहानी में व्यंग्य किया गया है ।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की कहानी प्रस्तावना पुलिस के अत्याचारों का परिचय देती है ।

रामेश्वर शुक्ल अंचल का हत्यारा देश की निर्धनता की कहानी है । राहुल सांकृत्यायन की सब्दर कहानी 1920-21 के असहयोग आन्दोलन से पूर्ण प्रभावित है । सुवर्ण यौधेय में जाति-पांति का विरोध है ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" ने शान्ति हंसी थीं कहानी में उच्च शिक्षित युवकों की बेकारी-समस्या को प्रतिपाद्य विषय बनाया है ।

श्रीनाथ सिंह की गरीबों का स्वर्ग" कहानी में जमीन्दारों के अत्याचार का चित्रण है । जातिगत असमानता का उदाहरण उनके "धर्म परिवर्तन" में प्राप्त है । "तिरस्कृता" में विधवा की जीवन दशा का करुण चित्रण है । चांदरानी में बहुविवाह के दोषों की ओर संकेत है । "सन्तोष" में जनता का शोषण करने वाले ठगी साधु-सन्यासियों के कापट्य का अनावरण है ।

सोमा वीरा ने "संघर्ष", "बिंदिया", सीमा जैसी कहानियों में उनमेल विवाह के विरुद्ध आवाज उठायी है । राम की पत्निया में दहेज प्रथा के

दुष्परिणाम दिखाये गए हैं । 'दृष्टि का दान', रेत के टीले आदि में मध्यवर्गीय नारी का दुःखद इतिहास है ।

विष्णु प्रभाकर की 'मुक्ता' में मुक्ता और उसके पति स्वाधीनता संग्राम में प्राणोत्सर्ग कर देते हैं । 'बेटे की मौत' में, राष्ट्रीयता के प्रतीक गांधी टोपी के सम्मान की रक्षा में मोहन प्राण त्याग करता है । गर्वित की राधा अपने देश-भक्त पति को फांसी का दंड मिलने पर गौरव का अनुभव करती है । 'भाई साहब', 'हरीश पाण्डेय', 'दीप जले ये घर घर', 'क्रान्तिकारी' आदि कहानियाँ 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन से प्रभावित हैं ।

'पहाड़ी' कृत 'युग-युग द्वारा शक्ति की पूजा' में पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई है । 'पतझड़' में बंगाल के भीषण अकाल का चित्र है[1] ।

क्रांतिकारी यशपाल की कहानियाँ तत्कालीन सामाजिक उथलपुथल के सच्चे दर्पण हैं । खुदा की मदद में यशपाल पुलिस के अत्याचारों का चित्रण करते हैं[2] । मुस्लिम लीग के संकुचित सांप्रदायिक व्यवहारों का परिचय फूलों का कुर्ता में प्राप्त है[3] । 'दुःख का अधिकार' और 'भवानी माता की जय' देश की गरीबी की कहानियाँ हैं ।

'नई दुनिया'[4] में पूंजीपति वर्ग का डटकर विरोध किया गया है । 'मछली या मकड़ी' में जमाखोरी के प्रति लेखक का विरोध व्यक्त किया गया है । उपेंद्रनाथ अश्क सामाजिक जीवन के सफल चित्रकार हैं और साथ ही प्रगतिशील दृष्टि रखनेवाले थी । उनका कथासाहित्य इसका निदर्शन है ।

---

1. पहाड़ी - पतझड़ शीर्षक कहानी नया का घोंसला कहानी संग्रह से
2. यशपाल – फूलों का कुर्ता – P 42
3. वही P. 21
4. वही नई दुनिया P ९६

"आंधी" में "अश्क" कृषकों पर जमीन्दारों के अत्याचार का चित्रण करते हैं। मन्मथनाथ गुप्त के "विजय" में सन् 1942 के भारत छोडो आन्दोलन के चित्र अंकित हैं।

निर्धन भारतीयों की दुर्दशा का चित्रण करनेवाली कहानियों में जैनेन्द्र की "अपना-अपना भाग्य देवेन्द्र सत्यार्थी की "फत्तु बुआ है" और सत्यवती मालिक की "उलझन" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

मार्कण्डेय की "हंसा जाई अकेला, शिव प्रसाद सिंह की कर्मनाशा की हार शेखर जोशी की कांसी की "बदवार", रेणु की "तीसरी कसम और रांगेय राघव की "गदल" आदि कहानियाँ ग्राम्य जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करती हैं। भैरव प्रसाद गुप्त की सती मैया का चौरा" किसान वर्ग के जीवन - संघर्ष की कहानी है।

अमृत राय की "एक सांवली लड़की", "भोर से पहले", जीवन के पहले" और विष्णु प्रभाकर की धरती अब भी घूम रही है, इन्द्र एक और दुराचारि जैसी कहानियाँ मध्यवर्गीय समाज की व्यक्तिवादी चेतना को अभिव्यक्त करती हैं।

नारी वर्ग की सामाजिक वस्तु-स्थिति की अभिव्यक्ति मार्कण्डेय ने "वासंवी की माँ" शीर्षक कहानी में की। यद्यपि व्यावहारिक रूप से नारी समाज की स्थिति में सुधार हुआ है तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्णतः रूढिमुक्त है। इतथ्य की ओर लेखिकाओं ने विशेष ध्यान दिया है।

विमला रैना की बुझे दीप, सोमा वीरा की रेत के टीले, होमवती देवी की कहानी का अन्त और अन्तिम सहारा आदि कहानियों में विधवा

---

1. अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ - आंधी शीर्षक कहानी पृ १

समस्या के विस्तृत परिप्रेक्ष्य लिखी जायी हैं। व्यथित हृदय ने वेश्या पुत्री नामक कहानी में वेश्या समस्या पर विचार किया है। जीवन का एक दिन में निर्धनता को ही वेश्यावृत्ति का कारण माना गया है।

जाति-प्रथा के विरोध में भी कहानिकारों ने विचार प्रकट किए हैं। राहुल सांकृत्यायन की जय यौधेय कहानी जाति भेद को समाज केलिए हानिकारक मानती है।[1] सोमा वीरा की मिट्टी के खिलौने" ममता, चाची, सुगन्धि धरती की बेटी आदि कहानियों में जाति पाति के प्रति विरोध और अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की [illegible] गयी है।[2]

यशपाल ने "अभिशप्त" की दुनिया; और [illegible] चिनगारी" में, अश्क ने "निशानियाँ", "पिंजरा", "दो धारा" और "छींटे" में, रांगेय राघव ने अधूरी मूरत और जीवन का दाने में भगवती चरण वर्मा ने दो बांके राख और चिनगारी और इन्स्टालमेंट में विष्णु प्रभाकर ने धरती अब भी घूम रही है, जिन्दगी के थपेड़े और संघर्ष के बाद में अमृत राय ने कस्बे का एक दिन और कठघरे में [illegible] मार्कण्डेय ने हंसा जाई अकेला में [illegible] [illegible] सामाजिक व्/ वैषम्य का यथार्थ चित्र खींच लिया है।

हिमांशु जोशी की "अग्निदीक्षा" मनहर चौहान की छोटी सी तानाशाही, पालू छोलिया की तर्पण, प्रकाश प्रियदर्शी की उसका मोर्चा आदि कहानियाँ भारत पर चीनी आक्रमण के संदर्भ में प्रणीत है। विष्णु प्रभाकर की रक्त स्रोत कमलेश्वर की युद्ध आदि कहानियाँ भारत पर पाकिस्तानी आक्रमण का सच्चा प्रतिफलन हैं।

---

1. राहुल सांकृत्यायन - जय यौधेय - पृ.206
2. सोमा वीरा - धरती की बेटी (कथा संग्रह में संकलित

आधुनिक समाज में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच जो संघर्ष चलता रहता है उसका प्रतिपादन यशपाल की धर्म युद्ध, उषा प्रियंवदा की वापसी, जैसी कहानियों में किया गया है ।

स्वतंत्र भारत कई बार अकाल का शिकार पड़ा है । राजमोहन झा की अलग अलग और अमरकान्त की निर्वासित आदि कहानियाँ अकाल ग्रस्त स्वतंत्र भारत का चित्र खींचता है ।

स्वाधीन भारत के राजनैतिक नेताओं की स्वार्थ मनोवृत्ति और दुर्बल लोकतान्त्रिक राजनीति आदि पर विष्णु प्रभाकर (धरती अब भी घूम रही है), हरिशंकर परसाई (विधायकों की चोटी), सुरेश सिन्हा (हालत) गिरिराज किशोर (नया कदम) आदि प्रकाश डाला है । कांग्रेसी शासन की चर्चा यशपाल की जनसेवक और मार्क्सीट कम्युनिस्ट में पायी जाती है ।

काव्य में सामाजिकता

सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब ही काव्य में प्राप्त होता है । हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की भांति आधुनिक काव्य का प्रादुर्भाव भी भारतेन्दु युग से होता है । देश की दुरवस्था और तज्जन्य पीड़ा ही भारतेन्दु युगीन काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य है । अतीत की गौरवगाथा भी इस युग की कविता में मुखरित होती है ।

अपने देश की विपन्नता का चित्रण करते हुए देशवासियों को उद्बुद्ध करना, सामाजिक विकृतियों के निवारण के लिए उन्हें प्रेरित करना कवि कर्म का ध्येय माना था । भारतेन्दु ने "भारत दुर्दशा" का दर्दनाक वर्णन किया[1] ।

---

1. सं॰ ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु ग्रंथावली - पृ॰736

"प्रेमघन" ने पराधीनता को सबसे बड़ा दुःख माना[1]। राजकर्मचारियों के अत्याचारों से त्रस्त जनता का असन्तोष भी उन दोनों की कविताओं में स्थान पाता है। प्रताप नारायण मिश्र लोकोक्ति में इन अत्याचारों का विरोध करते हैं। बालमुकुन्द गुप्त की आवह भारत कविता तत्कालीन भारत की दुरवस्था की अभिव्यक्ति करती है। "प्रेमघन" के "जातीय गीत" में देश की दुर्दशा का चित्रण है। भारतीयों की आपसी फूट पर भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र की रचनाएं प्रकाश डालती हैं।

विदेशियों के अन्धानुकरण का विरोध भी उस युग के कवियों ने किया[2]। अनमेल विवाह, बाल-विवाह आदि का विरोध करते हुए विधवा विवाह का समर्थन भी उस युगीन कवियों ने किया।

भारतेन्दु[3] और प्रेमघन[4] आदि ने पुरोहितों के मिथ्याचार और मूर्खता का उपहास किया। प्रचलित और परम्परागत मान्यता का खण्डन करके उन्होंने धार्मिक क्रान्ति को त्वरा दी।

सामाजिक दृष्टि से द्विवेदी युग की कविता सुधारवादी कही जा सकती है। इस युग में देश भक्ति की भावना तीव्रतर हो उठी। यह हमारे स्वाधीनता संग्राम का युग है। अतः देश भक्ति का प्रसार स्वाभाविक ही है। मातृभूमि की महिमा का वर्णन महावीर प्रसाद द्विवेदी मैथिली शरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माधव शुक्ल, गोपाल शरण सिंह, सियाराम शरण गुप्त आदि की कविताओं में उपलब्ध है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" के संपादक की हैसियत से स्वतंत्रता समर को प्रोत्साहित किया।

---

1. सं॰ रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी दूसरा सं॰पृ॰38
2. प्रेम घन सर्वस्व - होरी गोरिया शीर्षक कविता
3. सं॰ ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु ग्रंथावली - प्रथम भाग - पृ॰333
4. प्रेमघन सर्वस्व - प्रथम भाग - पृ॰252

उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का आह्वान दिया[1]। मैथिली शरण गुप्त की भारत भारती देश भक्तों का कंठहार थी। उसमें स्वदेशी वस्तुओं की उपेक्षा से उत्पन्न आर्थिक हानी की ओर संकेत है[2]। माधव शुक्ल ने सर्वस्व न्योछावर करके होमरूल लेने का दृढ संकल्प प्रकट किया है[3]।

द्विवेदी युगीन कविताओं में स्वदेश प्रेम का स्वर ही सर्वाधिक सशक्त है[4]। रामनरेश त्रिपाठी का "मिलन", लाला भगवान दीन का वीर पंचरत्न रामचरित उपाध्याय का राष्ट्र भारती[5] आदि का प्रेरक तत्व देश प्रेम ही है।

स्वतंत्रता संग्राम ने राष्ट्रीय एकता की अनिवार्यता प्रमाणित की। धार्मिक विभेदों का विस्मरण करके ऐक्य सूत्र में बंध जाने का सन्देश कवियों ने जनता को दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी[6], मैथिली शरण गुप्त[7] और रामनरेश त्रिपाठी[8] की रचनाएं जातीय एकता पर बल देती हैं।

देश की मुक्ति का जो संघर्ष उन दिनों जोर पकड़ता था उसमें कवियों ने पर्याप्त सहयोग दिया। उनकी कविताएं देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत तो है ही, पर सामाजिक समस्याओं की तरफ भी उन्होंने पर्याप्त ध्यान दिया। स्वातंत्र्योपलब्धि केलिए हिन्दू मुस्लिम एकता परम आवश्यक मानी गई। दलितों का उद्धार, स्त्री शिक्षा स्त्री-स्वातंत्र्य आदि की भी महिमा गायी गई। महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने धार्मिक समन्वय, स्वदेशी व्रत आदि का जो सन्देश दिया था उसका भी इस युग के कवियों ने समर्थन किया।

---

1. स्वदेशी वस्त्र की स्वीकार कीजे। विनय इतना हमारा मान लीजे।
   शपद करके विदेशी वस्त्र त्यागो। न जाओ पास, उससे दूर भागो" ।।
2. मैथिलीशरण गुप्त - भारत भारती
3. माधव मिश्र - लो होमरूल अपना शीर्षक गज़ल
4. द्विवेदी काव्य माला - वन्देमातरम - पृ.383
5. रामचरित उपाध्याय - राष्ट्र भारती प्रथम सं. पृ.2
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी - द्विवेदी काव्य माला - पृ.453-454
7. मैथिलीशरण गुप्त - गुरुकुल - उपोद्घात - पृ.3।

कवियों की संख्या बहुत विपुल है । प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं पर भी यहाँ प्रकाश डाला जायगा ।

रामानुजदास की कविताओं में जातिगत भेद का विरोध स्पष्ट है[1]। देवी प्रसाद पूर्ण अपनी कविता स्वदेशी कुंडल में हिन्दू मुस्लिम संघर्ष को देश केलिए अभिशाप मानते हैं । माधव शुक्ल, नाथूराम जैसे कवियों ने जात-पाति का विरोध करते हुए अछूतों के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों की निन्दा की है । मैथिली शरण गुप्त भी जात-पाँती के विरोध करने में किसी के पीछे नहीं । उनकी भारत भारती और हिन्दू इसका उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं[2]। बदरी नाथ भट्ट, गोपाल शरण सिंह, गिरिधर शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" आदि की रचनाएं भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ।

नारी-सुधार के संबंध में आधुनिक कवियों ने जो उत्साह प्रकट किया, उसका उल्लेख हो चुका । इस युग को अगर नारी जागरण का युग कहा जाय तो अनुचित न होगा । देश के कोने कोने में स्वतंत्रता संग्राम की जो लहर पहुँची उसने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों से नारी मुक्ति आन्दोलन को प्रेरित किया । हिन्दी के आधुनिक कवियों ने इस आन्दोलन में सहर्ष भाग लिया उनमें से प्रत्येक का इस दिशा में योगदान है । महिला परिषद् के गीत शीर्षक कविता (ले• महावीर प्रसाद द्विवेदी) स्त्री शिक्षा का समर्थन करती है । द्विवेदी से प्रेरणा पानेवाले प्रायः सभी कवियों ने उनकी सरणी का अनुसरण किया । मैथिली शरण गुप्त ने भारत भारती और साकेत[3] में और नाथूराम शर्मा ने भारत भक्ति[4] में नारी की महिमा की मुक्तकंठ से स्वीकृति की है ।

1• रामानुजदास - राष्ट्रीय सिंहनाद कविता संग्रह - पृ•277
2• मैथिलीशरण गुप्त - भारत भारती पृ•168-169
3• वही हिन्दू - चतुर्थ सं• पृ•114
4• नाथूराम शर्मा - शंकर सर्वस्व

भारतीय विधवा की करुण कहानी आधुनिक काव्य में बड़ी मर्मस्पर्शी रीति से मुखरित हुई है। अन्य विषयों के साथ मैथिली शरण गुप्त विधवा की समस्या भी उठाते हैं और उनकी ओर असीम अनुकम्पा प्रकट करते हैं[1]। पं० रामचरित उपाध्याय की रचना में बाल विवाह व वृद्ध विवाह का विरोध किया गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी का बाल - विधवा विलाप विधवाओं की आर्त ध्वनि सुनाता है[2]। श्रीधर पाठक की "बाल विधवा" आंसू में भीगी हुई रचना है। गुप्त जी की हिन्दू, शंकर सर्वस्व में संकलित विधवा विलाप आदि कविताएं विधवा विवाह की समर्थक हैं।

द्विवेदी युग के कवियों का ध्यान देश की आर्थिक परिस्थिति की तरफ भी गया। जनता प्रतिदिन गरीब बनती जा रही थी। दुर्भिक्ष तथा अकाल साधारण कार्य हो गए थे[3]। मैथिली शरण गुप्त, पं०रामनरेश त्रिपाठी[4] रामचरित उपाध्याय, राय देवी प्रसाद पूर्ण जैसे कवियों ने देश देश व्यापी दुर्भिक्ष के कराल ताण्डव का बड़ा भयंकर चित्र उपस्थित किया। आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक संकटग्रस्त कृषक समाज की दीन दशा का चित्र मैथिली शरण गुप्त[5]लोचन प्रसाद मिश्र[6] गिरिधर शर्मा आदि कवियों की रचनाओं में प्राप्त है। श्रमिक वर्ग का दुःखमय जीवन भी इस युग के काव्य में अभिव्यक्ति पाता है। गिरिधर शर्मा का उद्बोधन, त्रिशूल का साम्यवाद, माधव शुक्ल का "सबेरे कब जीवी" आदि भड़ेरा (मैथिलीशरण गुप्त) भारत विनय आदि कविताओं में धार्मिक अत्याचारों और विकृतियों पर व्यंग्य किया गया है।

द्विवेदी युग की कविता में सामाजिक जीवन की ओर यथार्थवादी दृष्टि पायी जाती है। यह यथार्थवाद उच्च आदर्श को सामने रखकर

---

1. मैथिली शरण गुप्त - भारत भारती
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी-द्विवेदी काव्य माला-प्रथम सं०पृ०113-114
3. मैथिली शरण गुप्त - भारत भारती - वर्तमान खण्ड - पृ०102
4. रामनरेश त्रिपाठी - मिलन - पंचम - सं० पृ०30
5. मैथिलीशरण गुप्त - कृषक कथा शीर्षक कविता

स्थापित किया गया था । इसलिए उसे आदर्शोन्मुखी सामाजिक यथार्थवाद कहा जा सकता है । द्विवेदी युग के पश्चात् हिन्दी काव्य क्षेत्र में जो भावुकता और स्वच्छन्दता दृष्टिगत होने लगी उसका सामाजिक महत्व निश्चित रूप से संदिग्ध है । कवियों की व्यक्तिगत आशा - आकांक्षा की अभिव्यक्ति ही छायावादी युग की कविता की सबसे बड़ी उपलब्धी है । पर द्विवेदी युग के कवि ने कभी सामाजिक परिस्थिति से मुख नहीं मोड़ा । इस प्रकार इस युग के काव्य की महिमा स्वयं प्रमाणित हो जाती है । इसीलिए में द्विवेदीयु

सन् 1918 के साथ हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग समाप्त हुआ । छायावाद का आरंभ सन् 1914 से माना जाता है[1] । इस युग में सामाजिक जीवन में नई नई समस्याएं उठ खड़ी हुई । परिवेश बदल गया । फिर भी पुरानी समस्याएं बनी रहीं । कविगण नूतन परिवेश से प्रभावित हुए और यह प्रभाव उनकी तूलिकाओं से कविताओं के रूप में निसृत हुआ ।

सामन्तवादी शोषण छायावादी युग में भी जारी रहा । सबसे अधिक शोषण किसान-मजदूर वर्ग का होता था । कवि इससे विक्षुब्ध थे । इस विक्षोभ की अभिव्यक्ति प्रायः सब कवियों की कविताओं में हुई जिनमें विशेष उल्लेखनीय है रामनरेश त्रिपाठी के मिलन स्वप्न आदि कृतियां । इसमें भारतीय किसानों की दीनता का मार्मिक अंकन है । बलदेव प्रसाद मिश्र[2] और भगवतीचरण वर्मा[3] ने भी शोषण नीति का घोर विरोध किया है ।

यद्यपि छायावादी कविता का प्रमुख स्वर समरोचित नहीं है तथापि यह कहना गलत है कि छायावादी कवियों ने राजनीतिक आन्दोलनों की तरफ से मुख मोड़ा । प्रायः सबों ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया, उसके लिए कष्ट झेले और अपनी कविताओं में व्यक्ति तथा राष्ट्र की वेदना को वाणी दी ।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.129
2. बलदेव प्रसाद मिश्र - साकेत संत - दूसरा सर्ग - पृ.34
3. सं. प्रताप नारायण मिश्र - कविता कौमुदी - दूसरा भाग, भैंसा गाड़ी शीर्षक कविता - पृ.702

हाँ, यहाँ यही ठीक है कि उनका दृष्टिकोण, अभिव्यंजना शैली और वक्तव्य एकदम निराला है ।

छायावादी कवियों में ऐसे बहुत से हैं जिन्होंने द्विवेदी युग में ही काव्य प्रणयन शुरू किया था । पर उनकी दिशा भिन्न थी । कुछ कवि ऐसे भी है जो छायावादी युग में भी द्विवेदी युग के सुधारात्मक आन्दोलनों से प्रेरणा ग्रहण करते थे । रामनरेश त्रिपाठी ऐसे कवियों में अग्रणी है । आपके ग्रंथ काव्य पथिक में नवयुग महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलन का चित्रण है । इस दृष्टि से हरिवंश राय बच्चन की रचना भी उल्लेखनीय है[1] । हिमकिरीटिनी में माखनलाल चतुर्वेदी असहयोग आन्दोलन को स्वतंत्रता प्राप्ति का एक मात्र उपाय स्थापित करता है[2] । रामनरेश त्रिपाठी ने स्वप्न में शत्रुओं से लड़कर स्वतंत्रता पाने का आह्वान किया है[3] । मैथिलीशरण गुप्त की "अंध संहार", वन वैभव, जयशंकर प्रसाद की लहर शेर सिंह का शस्त्र समर्पण, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की "जागो फिर एक बार"[4] जैसी रचनाएं देश भक्ति को जाग्रत करनेवाली युगान्तरकारी कृतियाँ हैं । दिनकर ने "हिमालय" के माध्यम से क्रान्ति भावना को उत्तेजित किया[5] । हुंकार {दिनकर} राष्ट्रीय मंत्र {सियाराम} मरण ज्वार[6] {माखनलाल चतुर्वेदी} स्वाधीनता पर {निराला} जाग्रत भारत {माधव शुक्ल} जैसी कविताओं में अहिंसात्मक क्रान्ति का शक्तिशाली स्वर मुखरित होता है ।

छायावादी कवि सामान्य रूप से नारी के उदार चरित्र के चितेरे है । परन्तु उसका उग्र रूप उन्होंने अछूता छोड़ा हो, यह बात नहीं । नारी जीवन की समस्याओं की भी उन्होंने उपेक्षा नहीं की । उनके प्रति सहानुभूति

---

1. हरिवंश राय बच्चन - खादी के फूल - प्रथम सं. पृ.14
2. झूलता चरखा लिये गिरि पर चढ़ो ।
   ले अहिंसा शस्त्र ही आगे बढ़ो ।
3. रामनरेश त्रिपाठी - स्वप्न - पाँचवाँ सर्ग
4. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल - पृ.174
5. दिनकर - रेणुका - चतुर्थ सं. पृ.5
6. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटिनी - पृ.135

दिखाने के साथ साथ उसकी शोचनीय स्थिति पर उन्होंने रोष भी प्रकट किया है । निराला की "विधवा" नाम की कविता इसका उदाहरण है[1] । इसमें कवि ने विधवा की स्थिति पर विधवा से समवेदना तो प्रकट की है । पर भारतीय समाज की क्रूरता पर उग्र रोष भी प्रकट किया है । गुप्त जी के "साकेत" में स्त्री और पुरुष का समानसत्व स्वीकार किया गया है[2] । सुमित्रानन्दन पन्त की "ग्राम्य" में नारी को अपने ही चरणों पर खड़े होने का सन्देश दिया गया है[3] । पन्त की यह धारणा है कि नारी जाति की मुक्ति में ही सामाजिक उत्थान निहित है ।

इस युग के कवि जात-पात के विरोध में किसी के पीछे नहीं है । हरिऔध की रचना अछूत के समान अनूप शर्मा की अछूत रचना अछूत के समान अनूपशर्मा की अछूत भी जाति-पाति को अमानवीय स्थापित करती है । पन्त जी भावोन्मेष नामक कविता में जात-पाति के बन्धनों को तोड़ने का आह्वान देते हैं । गोपाल शरण सिंह की माधवी अस्पृश्यता की निर्थकहीनता की घोषणा करती है ।

पन्त की रचना "आवाहन" में क्रान्तिकारी विचारों का अभिनन्दन है । उनके मानवपन[4] में धार्मिक संकीर्णता का विरोध तथा मानव धर्म का समर्थन है ।

इस युग के कवियों ने आर्थिक समस्या पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है । उन दिनों खादी और चर्खा हमारी आर्थिक सुरक्षा के प्रतीक थे । कवियों ने खादी और ग्रामोद्योग का समर्थन किया[5] ।

---

1. निराला - परिमल - पृ॰110
2. मैथिली शरण गुप्त - साकेत - द्वादश सर्ग - पृ॰451
3. सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्य
4. वही युगवाणी - पृ॰35
5. चर्खागीत [सुमित्रानन्दन पन्त] चरखा [रूपनारायण पाण्डेय - बैठा पा [राम चरित उपाध्याय] चर्खा [दीनदत्त] आदि ।

प्रगतिवाद का युग सामाजिक जागृति का युग है । कोरे आदर्शवादों और स्वप्निल संकल्पों से जनता का हित संभव नहीं हो रहा, प्रगतिवादियों ने इस तथ्य को समझ लिया था । उनके अनुसार जीवन की प्रगति का अर्थ है, संघर्ष और साहित्य का परम प्रयोजन है, संघर्ष को प्रेरित करना । यह संघर्ष राजनैतिक हो सकता है और सामाजिक भी । दोनों का लक्ष्य एक ही है - मनुष्य की भलाई ।

प्रगतिवादी कवियों ने आदर्शात्मक दृष्टिकोण का विरोध किया और मनुष्य जीवन को असलियत के साथ प्रस्तुत किया । उपेक्षित तथा उत्पीड़ित मनुष्य का उद्धार उनके काव्य का प्रख्यापित लक्ष्य है । उनकी धारणा है कि सिर्फ राजनैतिक मुक्ति से कोई काम नहीं चलेगा । आर्थिक तथा सामाजिक शोषणों से मुक्ति पाने में ही सच्ची स्वतंत्रता निहित है ।

जो प्रमुख छायावादी थे उन्होंने धीरे-धीरे परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस किया । उनमें प्रमुख है सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तथा सुमित्रा-नन्दन पन्त । इनके अतिरिक्त प्रगतिवाद के प्रमुख समर्थक है रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, नरेन्द्र शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द आदि ।

पन्त की "युगान्तर" और "युगवाणी" दोनों में इस परिवर्तन के स्पष्ट चिन्ह लक्षित होते हैं । निराला की कविता भिक्षुक, वह तोड़ती पत्थर[1] आदि अत्युच्च कोटि की प्रगतिवादी रचनाएं हैं । कुरुक्षेत्र में दिनकर क्रान्ति को शान्ति की भूमिका मानते है । नवीन की कविताएं दलित वर्ग के करुणापूर्ण चित्र अंकित करने में अतुलन सफलता पाती है । नरेन्द्र शर्मा की हंस माला उदयशंकर भट्ट का यथार्थ और कल्पना और सोहनलाल द्विवेदी की प्रभाती आदि यह उद्घोषित करती है कि कष्ट झेलनेवाले मानव मूलतः एक है ।

---

1. निराला - अपरा

प्रगतिवाद, वस्तुतः मार्क्सवाद का साहित्यिक रूपान्तर है । अनिवार्यतया इसलिए प्रगतिवादी कवि मार्क्सवाद के समर्थक होते हैं । पर ऐसे भी कवि इस आन्दोलन में आ गए हैं जो सिद्धान्तः मार्क्सवादी न होते हुए भी दलितों के उद्धार कार्य में रुचि लेते हैं । हिन्दी के अधिकांश प्रगतिवादी कवि इस दूसरी कोटि में आते है[1] । प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक वैषम्य को मिटाकर ऐक्य स्थापना का क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किए । सुमित्रानन्दन पन्त ने "ग्राम्य"[2] में, शिवमंगल सिंह सुमन ने "प्रलय सृजन" में अज्ञेय ने इत्यलम[3] में और अंचल ने किरण वेला[4] में छुआछूत और नारी पर अत्याचार आदि के प्रति अपनी घृणा प्रकट की है ।

धार्मिक अत्याचारों की ओर भी प्रगतिवादी कवियों का ध्यान गया है[5] ।

सन् 1930 तक आते आते पूँजीवादी व्यवस्था का स्पष्ट विरोध साहित्य में प्रकट होने लगा । पूँजीपतियों के शोषण के विरुद्ध आक्रोश और शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई । वह बूढा में वृद्ध भिखारी के मार्मिक चित्रण के माध्यम से सुमित्रानन्दन पन्त ने पूँजीवाद की विभीषिका के प्रति क्षोभ प्रकट किया है[6] । गांवों की दयनीय स्थिति की अभिव्यक्ति उनके "ग्राम चित्र" में प्राप्त है[7] । निराला,[8] भगवती चरण वर्मा,[9] अंचल[10]

---

1. सुमित्रानन्दन पन्त (साम्यवाद के प्रति) दिनकर (कलमें री डालों में तलवार, दिल्ली और मास्को) सोहनलाल द्विवेदी (उगता राष्ट्र) महेन्द्र (गीत)
2. सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्य - पृ.85
3. अज्ञेय - इत्यलम
4. अंचल - किरण वेला
5. सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्य - पृ.22
6. वही 5वां सं. पृ.30
7. वही पृ.16
8. निराला - नये पत्ते पृ.86
9. भगवती चरण वर्मा - मानव

आदि की रचनाओं में सामन्तवादी शोषण का विरोध और अत्याचारों से त्रस्त कृषक जीवन के प्रति करुणा आदि द्रष्टव्य है । प्रगतिवादी काव्य किसानों और मजदूरों को जागृत रखना चाहता है । इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएं हैं - श्रमजीवी[1] [सुमित्रानन्दन पन्त], "हलधर से"[2] [सोहनलाल द्विवेदी] आज क्रान्ति का शंख बज रहा" [बाल कृष्ण शर्मा नवीन] आदि ।

प्रगतिवादी आन्दोलन ने हमारे साहित्यकारों को साफ दिशा दृष्टि प्रदान की और उन्हें यह स्वीकार करने केलिए विवश किया कि मनुष्य के सारे सांस्कृतिक व्यापारों का श्रेष्ठतम लक्ष्य सामाजिक कल्याण है ।

स्वतंत्रता - प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जीवन के सारे क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ । फिर भी सामाजिक समस्याएं पूर्ववत् बनी रहीं । देश विभाजन से संजात रक्तपात, उत्पीड़न, अत्याचार, अमानवीय व्यवहार आदि ने जनता की संवेदना को कुंठित और जड बना दिया । स्वतंत्र भारत में विसंगतियों से भरी स्थिति उत्पन्न हुई । देश के भविष्य निर्माण का सारा उत्तरदायित्व नागरिकों पर पड़ा । यह उत्तरदायित्व भावना स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में प्रतिबिंबित हुई है ।[3] कवियों ने अपनी रचनाओं में स्वाधीनता की प्रशस्ति न गाकर समाज को नए दायित्वों से अवगत कराने का प्रयत्न किया[4]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नयी कविता का प्रादुर्भाव हुआ । नई कविता वह है जो पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्तियों से किसी के अन्तर्गत पूरी तरह नहीं आ पाती थी, यद्यपि उन प्रवृत्तियों के अवशिष्ट चिन्ह उसमें वर्तमान है ।[5]

---

1. सुमित्रानन्दन पन्त
2. सोहनलाल द्विवेदी
3. सं.डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शती - प्रथम सं. 1972, पृ. 1
4. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ. 56
5. सं. डा. नगेन्द्र - हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शती - पृ. 135

नयी कविता में स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक, राजनीति आर्थिक व धार्मिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार करने का प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। नयी कविता के उद्घोषक पिछले कवियों की अपेक्षा सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति अधिक सजग रहे।[1] पूर्ववर्ती कवियों (अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, हरिवंश राय बच्चन, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, दिनकर भारत भूषण अग्रवाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन आदि) के साथ नई पीढ़ी के कवि भी (धर्मवीर भारती, शैलेन्द्र, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लक्ष्मीकान्त वर्मा, रामदरश मिश्र आदि) नई कविता के प्रणयन में योग देते रहे। अज्ञेय के हरि घास पर क्षण भर (1949 में प्रकाशित) को नयी कविता का प्रथम काव्य संकलन माना जाता है।[2] पूर्ववर्ती काव्य की भांति स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में भी सामाजिक दृष्टि भंगिमा का अत्यंत अभाव नहीं है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय ने हमारा देश नामक कविता में भारतीय गावों की दुर्दशा का चित्रण किया है।[3] आपकी शोषक भैय्या[4] देश के शोषकों को संबोधित करके लिखी गई है। "हवाई यात्रा" स्वतंत्र भारत के शहरी जीवन की विसंगति और विडम्बनाओं पर प्रकाश डालती है।[5] नागरिक सभ्यता की विषाक्तता को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करनेवाली रचना है, सांप[6]। महानगर रात शीर्षक कविता में कवि ने महानगर के रातकालीन असली चित्र प्रस्तुत किया है।[7] आधुनिक जीवन के विकृत और

---

1. विश्वंभर मानव - नयी कविता : नये कवि - दूसरा सं. 1968, पृ.16
2. सं. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शती - पृ.136
3. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ.41
4. वही - बावरा अहेरी - प्रथम सं. - पृ.42
5. वही - वही पृ.40
6. वही - इन्द्र धनु रौंदे हुए ये - प्रथम सं. पृ.29
7. वही वही पृ.59

कुरूप चित्र 'औद्योगिक बस्ती में प्राप्त है[1]। विकाऊ में स्वतंत्र भारत की अर्थ नीति पर व्यंग्य किया गया है[2]। स्वतंत्र भारत के गावों में व्याप्त विषमता बाजार और चादर में दर्शाई गयी है[3]।

गजानन माधव मुक्तिबोध पुरानी समाज व्यवस्था के विरोधी है। भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन शीर्षक कविता में सामंती परिवार के आन्तरिक उत्पीडन हत्या, बलात्कार आदि का करुण व्यंग्य से परिपूर्ण चित्रण करते हुए मुक्तिबोध ने आजादी के पूर्व और बाद की स्थिति को प्रस्तुत किया[4]। पूंजीवादी व्यवस्था की पोषक नीतियाँ, कारवाईयाँ और संस्कृतियाँ पर तीखा व्यंग्य करनेवाली रचना है, 'चांद का मुंह टेढा है'[5]। लकडी का बना रावण में आपने पूंजीवादी वर्ग चेतना पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है[6]। पूंजीवादी और सामन्तवादी शोषण का विरोध तथा जन जागृति का आह्वान भी उनकी रचना में प्राप्त है[7]।

प्रभाकर माचवे ने काव्य सृजन में व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया। आधुनिक समाजों में चलनेवाले साडियों, जूतों, जूडों और शरीर के प्रदर्शनों की उन्होंने खूब हंसी उडाई है[8]। अब तो नहीं रहे हम कच्चे नामक कविता स्वतंत्र भारतीय समाज की मानवीय परिपक्वता की विडम्बना पर प्रकाश डालती है[9]। आपकी समस्या पूर्ति आज के समाज की कथनी और

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - प्रथम सं. - पृ.45
2. वही - वही पृ.46
3. वही - वही पृ.43
4. गजानन माधव मुक्ति बोध - चांद का मुंह टेढा है प्रथम सं.पृ.60
5. वही पृ.26
6. वही पृ.20
7. सं. अज्ञेय - तार सप्तक पृ.61
8. प्रभाकर माचवे - मार्डन आर्ट - शीर्षक रचना
9. वही स्वप्न भंग - पृ.81

करती, आचार और व्यवहार के अन्तर को स्पष्ट करती है । बीसवीं सदी में सामान्य वर्ग की दीनता को अभिव्यक्ति मिली है[1] ।

गिरिजा कुमार माथुर ने स्वातंत्र्योत्तरकाल के बाद अन्न वस्त्र के ही नहीं, बल्कि हर वस्तु के अभाव से पीड़ित भारत का सच्चा अंकन धूप के धान काव्य संग्रह की कविताओं में किया है । "एक अधनंगा आदमी" नामक रचना स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, अनुशासनहीनता आदि की परिचायक है[2] । स्वतंत्र भारत की निर्धनता, बेकारी, नैतिक पतन आदि बातों का भी प्रतिपादन आपकी कविताओं में हुआ है ।

रोटी और स्वाधीनता शीर्ष कविता में रामधारी सिंह दिनकर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जब तक देश में भूख और गरीबी का अन्त नहीं होता तब तक आजादी का कोई अर्थ नहीं है । "नेता नामक कविता में नेताओं की काली करतूतों, जनता को मूर्ख बनानेवाले कारनामों पर आपने पूरा व्यंग्य किया है । "रश्मिरथी" में दिनकर ने अभिजात वर्ग की शोषक और कलुषित प्रवृत्ति का परिचय दिया है । हिन्दू - मुस्लिम सांप्रदायिक संघर्ष की निन्दा करते हुए सांप्रदायिक एकता का जयघोष उन्होंने नीलकुसुम में किया है[3] । भूदान आन्दोलन का प्रभाव आपकी अहिंसा और शान्ति शीर्षक कविता में प्राप्त है[4] ।

हरिवंश राय बच्चन की कविता बुद्ध और नाच घर आज की विडम्बनाओं को उभारकर दिखाने का एक प्रयास है[5] । बाढ में बाढ के प्रतीक के माध्यम से स्वतंत्र भारत में व्याप्त अनैतिक अवमूल्यन और भ्रष्टाचार का अंकन किया गया है । जाति-प्रथा के प्रति कड़ा विरोध उनके काव्य में प्राप्त है ।

---

1. सं० अज्ञेय - तार सप्तक - पृ०214-215
2. सं० धर्मवीर भारती - धर्म युग - 11 जनवरी, 1970, पृ०15
3. रामधारी सिंह दिनकर - नील कुसुम - पृ०83
4. वही चक्रवाल 1959, पृ०195
5. हरिवंश राय बच्चन - बुद्ध और नाचघर पृ०167

"धार के इधर - उधर में समस्त भारत पर फैली साम्प्रदायिकता की पैशाची प्रवृत्ति का प्रतिपादन करते हुए साम्प्रदायिक एकता का सन्देश दिया गया है।[1] देश विभाजन,[2] स्वतंत्रता दिवस,[3] गणतंत्र दिवस[4] आदि को भी बच्चन ने अपना काव्य विषय बनाया है।

भवानी प्रसाद मिश्र "दूसरा सप्तक" का प्रथम कवि है। आपकी कविताओं में स्वतंत्र भारत का पूरा चित्र प्राप्त है।[5] निरापद कोई नहीं है" शीर्षक कविता भारतीय समाज में व्याप्त स्वार्थपरता का सटीक चित्रण प्रस्तुत करती है। भारतीय गांवों की विसंगति का पीड़ादायक चित्रण "गांव" में प्राप्त है।[6] एकदम दरबारी में मिश्र ने आभिजात्य ओढ़नेवाले, औपचारिकता निबाहनेवाले, सफेद पोश नौकरशाहों पर प्रहार किया है।[7] राजनीतिक दाव पेंचों और राजनीतिक विषय में कवि के विचार "राजनयिक"[8] कविता में प्रस्फुटित हुए हैं। मिश्र जी अनुत्तरदायी में वर्तमान राजनीतिक ढांचे पर व्यंग्य करते हैं तो संसद भवन में आपकी व्यंग्यपूर्ण दृष्टि स्वतंत्र भारत के संसद पर पड़ती है।

नागार्जुन की स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में भारत की समसामयिक राजनीति, सामाजिक मान्यताओं और आर्थिक विषमताओं पर गहरा व्यंग्य किया है। स्वदेशी शासक कविता में कवि स्वदेशी शासकों की हठधर्मिता, कथनी - करनी का अन्तर आदि पर विचार किया है। पंचवर्षीय योजनाओं के

---

1. हरिवंश राय बच्चन - धार के इधर - पृ.67
2. बच्चन - धार के इधर उधर - पृ.73,80,85
3. वही - वही पृ.49
4. वही - वही पृ.97
5. भवानी प्रसाद मिश्र - चकित है दुःख - पृ.112
6. वही गांधी पंचशती पृ.224
7. वही वही पृ.265
8. वही वही पृ.277

असंगतियों पर सबसे गहरा व्यंग्य किया गया है नागार्जुन की कविता में। विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन पर भी आपने संत विनोबा कविता में तीखा व्यंग्य किया है। "आओ रानी हम ढोएंगे पालकी, टके की मुस्कान करोड़ों का खर्च" आदि कविताएं देश की वर्तमान परिस्थिति के जिम्मेदार कर्णधारों पर कटाक्ष करती है। आपकी देखना ओ गंगा मइया" शीर्षक कविता पूंजीपतियों की वृद्धि की आलोचना करती है। "तो फिर क्या हुआ मैं" अफसरों की स्वार्थपरता पर व्यंग्य है। तुम रह जाते दस साल और" कविता नेहरू - शासन की कटु आलोचना करतीहै। "एटमबम्" कविता में नागार्जुन की युद्ध विरोधी विचार धारा प्रकट होती है।

केदार नाथ अग्रवाल ने "फूल नहीं रंग बोलते हैं" में भारतीय गणराज्य की दुर्दशा पर दुख प्रकट किया है। स्वतंत्रता के बाद आर्थिक दृष्टि से ही नहीं नैतिक दृष्टि से भी विपन्न भारत का चित्रण उन्होंने किया है।[1] युग की गंगा नामक कविता में आपने सामाजिक वैषम्य के चित्र प्रस्तुत करते हुए श्रमिकों और कृषकों को संघर्ष की प्रेरणा दी है।

शमशेर बहादुर सिंह ने अन्तराष्ट्रीय दलबन्दी से अपने को पृथक रखकर विश्व में शान्ति, स्थापित करने के भारत की चाह को अमन का राग नामक कविता में व्यक्त किया है।[2] सामन्तवादी - पूंजीवादी शोषण का विरोध और जनजागृति की अभिलाषा आपकी भारत की आरती शीर्षक कविता में प्रकट है।[3]

भारत भूषण अग्रवाल ने आनेवालों से एक सवाल[4] शीर्षक कविता में वर्गीय विषमता का तुलनात्मक चित्र अंकित किया है। पूंजीवादी सामन्तवादी शोषण का कड़ा विरोध और जन-जागृति लाने का प्रयत्न मसूरी के प्रति" में

---

1. केदार नाथ अग्रवाल - फूल नहीं रंग बोलते हैं
2. शमशेर सिंह बहादुर - कुछ और कविताएं
3. सं• अज्ञेय-दूसरा सप्तक - पृ•109
4. वही - तार सप्तक - पृ•113-115

उपलब्ध है[1]।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने स्वतंत्र भारत के नेताओं द्वारा बेचारी जनता को दिये जानेवाले समाश्वासन वचनों का पर्दाफाश किया है[2]। स्वाधीन भारत में राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति उपेक्षा और अंग्रेज़ी की ओर आकर्षण देखकर आपका कवि हृदय क्षुब्ध हो उठता है[3]।

रांगेय राघव अपनी रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थक दिखाई पड़ते हैं[4]।

गांधीजी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी, स्वतंत्र भारत में उसकी विफलता देखकर शैलेन्द्र का हृदय व्यथित हो उठता है[5]। स्वार्थ-साधन में लिप्त नेता वर्ग का चित्रण भी उनकी कविताओं में प्राप्त है।

विदेशी आक्रमणों की अभिव्यक्ति भी स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्राप्त है। 'सीमा संग्राम (जगमोहन अवस्थी), चीन का चेतावनी (रामकुमार चतुर्वेदी) गोरा रे बादल रे (बाल कवि बैरागी) चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा (गोपाल सिंह नेपाली) आदि कविताएं चीनी आक्रमण का प्रतिपादन करती हैं। दिनकर, रामकुमार वर्मा, भारत भूषण अग्रवाल, रामावतार त्यागी, शिवमंगल सिंह सुमन आदि की रचनाओं में पाकिस्तान - आक्रमण की चर्चा की गई है।

---

1. अज्ञेय - तार सप्तक - पृ.98
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - गर्म हवाएं
3. वही
4. रांगेय राघव - पिघलते पत्थर - पृ.3
5. शैलेन्द्र - रामराज्य

निबन्ध साहित्य का सामाजिक परिदृश्य

सामाजिकता की दृष्टि से निबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है । निबन्धकार, समाज का भाष्यकार और आलोचक है । समसामयिक सामाजिक गतिविधियों का परिचय प्राप्त करने में निबन्ध साहित्य सहायक होता है ।

भारतेन्दु युग से लेकर हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में निबन्ध का क्रमिक विकास लक्षित होता है । स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसका श्री गणेश किया । उनके निबन्ध समकालीन सामाजिक राजनीतिक धार्मिक और आर्थिक गतिविधियों के सफल साक्षी हैं । इंग्लैंड और भारत वर्ष"[1] अंग्रेज स्तोत्र[2] लेवी प्राण लेवी" अंग्रेजों से हिन्दुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता"[3] । दिल्ली दरबार दर्पण" आदि राजनीतिक निबन्धों में क्रमशः विदेशी शासन पर तीखा व्यंग्य, अंग्रेजी की शासन नीति देशी नरेशों की आलोचना, अंग्रेजों की मनोदशा राजाओं की लाचार वृत्ति आदि का प्रतिपादन है । स्वर्ग में विचार सभा, सबै जाति गोपाल की,[4] बसन्त की पूजा, कंकड़ स्तोत्र, पांचवें पैगंबर[5] "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न आदि निबन्ध भारतेन्दु के सामाजिक विचारों के प्रतिबिंब विधायक है । देश की गरीबी,[6] भारी-कर नीति[7] आदि बातें भारतेन्दु के आर्थिक निबन्धों में प्राप्त है । ईश्वर का वर्तमान होना,[9] हम मूर्ति पूजक हैं, ईसु ख्रीष्ट और ईश कृष्ण, तदीय सर्वस्व, आदि निबन्धों में भारतेन्दु ने तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए वैष्णव धर्म के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । अन्य साहित्यिक विधाओं की तरह निबन्ध के क्षेत्र में भी भारतेन्दु अपने सहयोगी कलाकारों केलिए मार्गदर्शी रहे ।

---

1. सं० ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु ग्रंथावली
2. वही
3. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका - खंड - 2-3, दिसंबर, सन् 1847
4. सं० ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु ग्रंथावली - तीसरा भाग - पृ०819-820
5. सं० ब्रजरत्नदास - वही पृ०871
6. भारतेन्दु ग्रंथावली - भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है शीर्षक निबन्ध

भारतेन्दु युग के अन्य निबन्धकारों में पं॰ बालकृष्ण भट्ट ने जीवन की विविध परिवेशों से अपनी सामग्री जुटा ली[1]। व्यवस्था का कानून, प्रतिनिधि शासन, इंग्लैंड की जर्जर दशा, हमारे सब गुण क्यों फीके हो रहे हैं, रूस की तैयारी, नायमात्मा न बलहीनेन लभ्य: "अखण्ड कीर्ति और अचल यश बड़े भाग से मिलता है" जैसे निबन्ध भट्ट जी के राजनीतिक विचारधारा को प्रस्तुत करनेवाले हैं। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, स्त्री - शिक्षा, अनमेल विवाह जाति-पाति आदि सामाजिक विषयों को लेकर भी उन्होंने निबन्ध रचना की। ऐसे निबन्धों में ढोल के भीतर पोल, परदा, हमारी भारतीय ललनाओं की शोचनीय दशा[2] "बात चीत"[3] बाल्य विवाह" स्त्रियों और उनकी शिक्षा" "महिला स्वातंत्र्य", "अंग्रेज़ी सभ्यता और अंग्रेज़ी शिक्षा", हाकिम और उनकी हिकमत[4] आदि कुछ निबन्ध भट्ट जी के सामाजिक विचारों के प्रदर्शक हैं। "दुर्भिक्ष दलित भारत, कृषि की कर्षित दशा" "कृषकों का अश्रुपात" आदि में देश के किसानों की गरीबी चित्रित करते हुए उन्होंने अंग्रेज़ों की आर्थिक - शोषण नीति का कड़ा विरोध किया है। सरकारी दफ्तरों में नौकरी" शीर्षक लेख में भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का पर्दाफाश किया गया है।

पं॰ प्रताप नारायण मिश्र के निबन्ध सामाजिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। "कचहरी में शालिग्राम जी", मतवालों की समझ"[5] सोने का डंडा और पौंडा, बलि पर विश्वास[6], नास्तिक मतवादी अवश्य नरक में जायेंगे[7],

---

1. डॉ॰ रत्नाकर पाण्डेय - हिन्दी साहित्य=सामाजिक चेतना, प्रथम सं॰पृ॰1
2. सं॰ धनंजय भट्ट सरल - भट्ट निबन्ध माला - दूसरा भाग - पृ॰135
3. वही पृ॰ 44
4. सं॰ धनंजय भट्ट सरल - भट्ट निबन्धमाला - पहला भाग - पृ॰135
5. सं॰विजयशंकर मल्ल - प्रताप नारायण ग्रंथावली - प्रथम खंड - पृ॰ 61
6. वही प्रथम सं॰ - पृ॰171
7. वही - पृ॰279

ईश्वर का वचन, धर्म और मत,[1] देवमन्दिरों के प्रति हमारा कर्तव्य, गोरक्षा[2] होली है[3] आदि निबन्धों में मिश्र जी ने तत्कालीन धार्मिक परिवेश का सफल चित्रण किया है । आर्थिक [illegible] दशा का चित्र खींचनेवाले निबन्ध हैं - "बे आर" जरा अब तो आँखें खोलिए", धरती माता,[4] इनकम टैक्स[5] देशी कपड़ा आदि । मिश्र जी की सामाजिक विचार धाराएं भी कुछ कुछ निबन्धों में समाहित हैं । ऐसे निबन्धों में मार मार करे जाओ; फूटी सहे आंजी न सहे[6] बाल्य विवाह विषयक एक चोज़, मिडिल क्लास नारी, स्त्री,[7] जुआ, बाल्य विवाह,[8] रिश्वत आदि प्रमुख हैं । देशोन्नति, भारत का सर्वोत्तम गुण, रूस और मुस, भारत पर भगवान की अच्छी ममता है[9] "हम राज भक्त हैं", कांग्रेस की जय;[10] सोशल कांग्रेस, पंचायत, उन्नति की धुन, आदि निबन्धों में लेखक के राजनीतिक व देशभक्तिपरक विचार प्रस्तुत किये गए हैं ।

पं॰ बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन भी इस क्षेत्र में उल्लेख योग्य हैं । युग की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं और आन्दोलनों का चित्रण इनके निबन्धों में प्राप्त है । "नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा में कांग्रेस की आपसी फूटों पर लेखक का क्षोभ व्यंजित है ।[11] हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का विरोध भारतीय प्रजा के दो दल" शीर्षक निबन्ध में उपलब्ध है । बंग-भंग आन्दोलन के प्रति लेखक का विचार भी एक निबन्ध में व्यक्त होता है । समाज-सुधार की ओर भी इनके ध्यान गये

1.	सं॰विजयशंकर मल्ल - प्रतापनारायण ग्रंथावली - प्रथम सं॰	- पृ॰310
2.	प्रताप नारायण मिश्र - निबन्ध नवनीत	- पृ॰122
3.	वही	- पृ॰ 92
4.	वही	- पृ॰124
5.	वही	- पृ॰ 77
6.	सं॰विजयशंकर मल्ल - [illegible] प्रतापनाराण ग्रंथावली-प्र॰सं॰	- पृ॰[illegible]
7.	वही	- पृ॰[illegible]
8.	वही	- पृ॰[illegible]
9.	वही	- पृ॰164
10.	वही	- पृ॰242
11.	वही	- पृ॰319

विधवा विपत्य वर्षा विधवाओं की करुण दशा का अंकन है । "हमारे धार्मिक सामाजिक तथा व्यावहारिक संशोधन द्वारा प्रेमघन ने सामाजिक अनाचारों की चर्चा की है । भारत वर्ष की दरिद्रता, भारत वर्ष के लुटेरे, दीनदशा, जीर्ण जनपद जैसे निबन्ध ब्रिटीश सरकार के आर्थिक शोषण और ग्रामीण जीवन की दुरवस्था की कटु आलोचना करते हैं । रंग की पिचकारी, बनारस का बुढ़वा मंगल त्रिभंगी तरंग, आदि में धार्मिक त्योहारों पर प्रकाश डाला गया है ।

पं॰ बालमुकुन्द गुप्त के निबन्ध भी सामाजिक परिस्थितियों के परिचायक हैं । विधवा कन्या, विधवा की बारात आदि में विधवा विवाह के अनौचित्य पर प्रकाश डाला गया है । मारवाडी समाज की धन लोलुपता, विलास प्रियता और स्वार्थ को "मेले का ऊंट" और "एसोसियशन" में व्यक्त किया गया है । शिव शंभु के चिट्ठे, चिट्टे और खत, वैसराय के कर्तव्य आदि राजनीतिक निबन्धों में भारतीयों की दुर्दशा, अंग्रेज़ों की भेद नीति, दमनवृत्ति आदि का परिचय दिया गया है । "हमारे धर्म" हिन्दू कौन, आनंद में निरानंद, आदि निबन्ध गुप्त जी के धार्मिक विचारों के प्रतिपादक है । शासन सुधार, इतना भय क्यों, सोनार बंगाला, पुरानी कहानी, आदि में तत्कालीन आर्थिक स्थिति का चित्रण हू ।

भारतेन्दु युग के अन्य निबन्धकारों में राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, श्रीनिवास दास, ज्वाला प्रसाद आदि ने भी तत्कालीन सामाजिक दुराचार, अंग्रेज़ों की स्वार्थपूर्ण शासन नीति, आर्थिक शोषण, देशी राज्यों की दुर्दशा, पुरोहितों का पाखंड, आर्थिक दुरवस्था आदि बातों पर अनेक्या निबंध रचे.[1] भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों का प्रमुख लक्ष्य समाजोद्धार था । हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, भारत मित्र, हिन्दी प्रदीप ब्राह्मण जैसी पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग से उन्होंने अपने लक्ष्य का प्रचार किया ।

---

1. परिश्रमोत्तर महाकाव्य [राधाकृष्णदास] यमलोक की यात्रा [राधाचरण गोस्वामी] भारत खण्ड की समृद्धि [श्रीनिवास दास] कालिदास की सभा" [ज्वाला प्रसाद] आदि लेख

भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युग में निबन्ध-साहित्य का यथेष्ठ विकास होता रहा । पं॰ महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं॰माधव प्रसाद मिश्र, सरदार पूर्ण सिंह, पं॰चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि द्विवेदी युग के शीर्षस्थ निबन्धकार हैं ।

पं॰ महावीर प्रसाद द्विवेदी सामाजिक आर्थिक और धार्मिक निबन्धों के प्रणेता थे । स्वदेशी वस्त्र के व्यापार में उन्नति, नामक निबन्ध में आपने भारतीय उद्योग-धन्धों के पुनरुत्थान की आवश्यकता पर बल दिया है[1] । द्विवेदी ने किसानों की दीन दशा के चित्रण द्वारा देश की शोचनीय आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला[2] । आपने सुधारवादी निबन्ध भी बहुत लिखे । समाज में फैली निरक्षरता का दूरीकरण लक्ष्य करके भारत में शिक्षा की समस्या शीर्षक निबन्ध लिखा गया । माननीय मेम्बरों की बात का प्रमेय भी प्राय: वही है । विवाह विषयक विचार व्यभिचार लेख में द्विवेदी ने गोत्र और जन्म नक्षत्र की कुप्रथाओं पर आघात किया है ।

पं॰ माधव प्रसाद मिश्र के निबन्धों में समकालीन भारतीय समाज का प्रस्तुतीकरण हु । "राजा की उत्तमता, बुराई में भलाई, स्वदेशी आन्दोलन विद्यार्थी और राजनीति, कुली चिट्ठी आदि मिश्र जी के राजनीतिक विचारों के प्रतिपादक हैं । उनके सामाजिक निबन्धों में हिन्दू विवाह सहायक फन्ड शीर्षक निबन्ध उल्लेखनीय है जिसकी रचना विधवाओं के उद्धार को लक्ष्य करके की गई । खेती करना बुरा नहीं है" में कृषि का समर्थन है । "शिल्प वाणिज्य" शीर्षक निबन्ध में भारतीय आर्थिक दुरवस्था का मार्मिक प्रतिपादन है[3] ।

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी - विचार विमर्श में संगृहीत - पृ॰244
2. दे॰ खेती की बुरी दशा, भारत में औद्योगिक शिक्षा, कृषि विद्या के अद्भुत आविष्कार आदि निबन्ध ।
3. माधव मिश्र निबन्ध माला

"श्री भारत धर्म महामण्डल", "हिन्दुओं की महासभा", "वेद और नागरी प्रचारक, ब्राह्मणों पर वृथा आक्रमण, दाम की दुर्दशा आदि निबन्ध धार्मिक हैं ।

सरदार पूर्ण सिंह और पं०चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्विवेदी युग के अत्यंत प्रतिष्ठित निबन्धकार हैं । मजदूरी और प्रेम शीर्षक लेख में सरदार पूर्ण सिंह ने यह मत निकाला है कि मशीनों के कारण गरीब अधिक गरीब बनते हैं और अमीर अधिक धन संपन्न । आचरण की सभ्यता प्रस्तुत निबन्धकार के धार्मिक विचारों को व्यक्त करती है । उनके अन्य उल्लेखनीय निबन्ध सच्ची वीरता, कन्यादान आदि हैं । समुद्र यात्रा निषेध पर व्यंग्य करते हुए चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने "कछुआ धरम" शीर्षक निबन्ध लिखा । उनके धार्मिक निबन्ध भी व्यंग्य प्रधान है । गुलेरी जी के साहित्यिक निबन्ध अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । अपभ्रंश भाषा पर इन्होंने जो निबंध लिखे हैं उनसे भावी अनुसन्धान का मार्ग प्रशस्त हो गया ।

उपर्युक्त निबन्धकारों के अतिरिक्त द्विवेदी युग में अन्य अनेक निबन्धकार भी साहित्य सेवा करते रहे । सामाजिकता की दृष्टि से उनके निबंध भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विस्तार की आशंका से उनकी चर्चा छोड़ दी जाती है ।

द्विवेदी युग के बाद शुक्ल युग का आरंभ होता है जिसमें हिन्दी निबन्ध ने प्रौढ़ता प्राप्त की । इस युग के प्रमुख निबन्धकार थे - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियाराम शरण गुप्त आदि ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में सामयिक राजनीतिक वातावरण की चर्चा अपर्याप्त है । अपने निबन्धों द्वारा शुक्ल जी ने सामाजिक विषमताओं के मूल भूत कारणों को परखा है । उनकी मान्यता है कि अर्थ ही इस युग का धर्म

बन गया है । उनकी दृष्टि में सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा[1] और 'क्रोध'[2] अत्यंत आवश्यक है । श्रद्धा भक्ति शीर्षक निबन्ध के द्वारा आपने प्रस्तुत भाव का सामाजिक महत्व स्थापित किया है[3] । अपने निबन्धों में शुक्ल जी ने जाति-भेद, पाखण्ड, कर्मकाण्ड और कपटी धर्म-गुरुओं का डटकर विरोध किया । आर्थिक समस्याओं को वे वर्ग भेद का मूल कारण स्वीकार करते हैं ।

बाबू गुलाब राय ने राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विषयों पर निबन्ध रचना की । ब्रिटीश शासन के वे दिन[4] वार्षिक लेख में अंग्रेज़ों की रीति-नीति, भारतवासियों से उनका व्यवहार, भेद भाव आदि पर प्रकाश डाला गया है । साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता, भारत का समन्वयवादी सन्देश, वर्तमान असंतोष के कारण, राष्ट्रीयता और उसके बाधक आदि रचनाएं भी गुलाब राय के राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्त करनेवाली हैं । घरेलु लड़ाई - झगड़े, उच्च जीवन स्तर, पारिवारिक जीवन और निजी संबंध, सह-शिक्षा, हिन्दी समाजों में स्त्रियों का स्थान आदि निबन्ध सामाजिक स्थितियों पर प्रकाश डालते हैं । लेखक के अर्थ विषयक दृष्टिकोण को व्यक्त करनेवाले निबन्ध हैं - "व्यापारे बसति लक्ष्मी, कुशल व्यापारी के गुण, मिल मज़दूर, चोर बाज़ार, मनुस्मृति में कर्ज का कानून आदि ।

माखनलाल चतुर्वेदी के अधिकतर निबन्ध राजनैतिक है । "समय के पांव" निबन्ध संग्रह में तिलक, गांधीजी, सुभाषचन्द्र बसु, गणेश शंकर विद्यार्थी विट्ठल भाई पटेल, पं० रविशंकर शुक्ल जैसे राजनीतिक महारथियों के संस्मरणात्मक लेख है । दूसरे संग्रह अमीर इरादे गरीब इरादे के निबन्धों में राजनीतिक स्थिति पर विचार किया गया है । उक्त निबन्ध संग्रह के बन्धुत्व,

---

1. रामचन्द्रशुक्ल - चिन्तामणी - पहला भाग-करुणा शीर्षक लेख - पृ.35
2. वही क्रोध पृ.105
3. वही श्रद्धा भक्ति पृ.16

कीमती वस्तु, बच्चे भगवान की मूर्तियाँ, अधिकार पाकर, मजदूरी की कीमत, ग्रामीणों को खेलते कूदते देखकर आदि निबन्धों में चतुर्वेदी की सामाजिक विचार धाराएं प्रस्फुटित हो उठी हैं । "प्रभा", कर्मवीर जैसे पत्रों में प्रकाशित अपने लेखों द्वारा चतुर्वेदी ने सामाजिक विचारों का यथार्थ लेखा जोखा प्रस्तुत किया है ।

शुक्ल-युग का जागरूक निबन्धकार है पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी । उनके सामाजिक और राजनीतिक विचार गांधीवाद से प्रभावित हैं । "समाज समस्या" शीर्षक निबन्ध में राष्ट्रीयता का सर्वोच्च लक्ष्य, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का विरोध, मानवतावाद का समर्थन आदि बातें पायी जाती हैं । स्त्री स्वातंत्र्य का समर्थन और पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण छोड़कर आचार की पवित्रता की रक्षा करने का उपदेश आदि व्यक्ति समस्या नामक लेख में प्राप्त है । चर्चा में स्वतंत्रता आन्दोलन के लक्ष्य का प्रतिपादन किया गया है । नवयुग और नव आदर्श में बख्शी वृद्ध विवाह का विरोध करते हुए विधवा विवाह का समर्थन करते हैं कुछ निबन्धों में इनके आर्थिक विचार भी प्रकट किये गए हैं । मोटर स्टैंड पर में तत्कालीन दुर्भिक्ष, जनता की अर्थ लोलुपता, स्वार्थ संघर्ष आदि की चर्चा है । आधुनिक जीवन में श्रम की महिमा गुड़िया" में देखी जाती है । समाज समस्या, कथा रहस्य चर्चा आदि निबन्धों में बख्शी के धार्मिक विचार भी अभिव्यक्त हुए हैं । सियाराम शरण गुप्त के अधिकतर निबन्ध सामाजिक हैं । "घूंघट" आधुनिक समाज में व्याप्त आत्म दुराव पर विचार है । बहस की बात में विश्वविद्यालयों की शिक्षा-दीक्षा तथा न्यायालयों के न्यायपालन का लेखा - जोखा है । भाषा का मोह" अंग्रेजों के अन्धानुकरण का घोर विरोध करता है । हिमालय की झलक" में दलित वर्ग के प्रति निबन्धकार की सहानुभूति प्रदर्शित की गई है ।

शुक्ल-युग के निबन्धों में सामयिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति दुर्बल है । इसका कारण है कि इस समय के निबन्धकार पूर्ववर्ती निबन्धकारों की अपेक्षा साहित्याभिमुख अधिक थे और समाजाभिमुख कम ।

निबन्ध साहित्य का अगला युग, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का आलोच्य युग [1948-'65] है । सन् 1947 के उपरान्त हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में नया मोड आ जाता है । स्वाधीन भारत की यथार्थ स्थिति को प्रकट करने में इस युग की हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध शैली अत्यंत सहायक हुई है । आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र, शान्तिप्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा, विद्यानिवास मिश्र आदि इस युग के शीर्षस्थ निबन्धकार हैं ।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की गतिविधियों का अपने निबन्धों में चित्रण किया । वे समाजवाद पर विश्वास रखते हैं । साम्राज्यवाद के वे घोर विरोधी हैं । भारत पर चीन के आक्रमण को उन्होंने मानवीय मूल्यों पर आक्रमण माना है ।[1] द्विवेदी जी के निबन्धों में तत्कालीन सामाजिक स्थितियाँ स्पष्ट चित्रित की गई हैं । स्वतंत्र भारत के पतित भारत का चित्रण जब कि दिमाग़ खाली है" नामक निबन्ध में किया गया है ।[2] समाज संस्कार में हिन्दू समाज की समस्याओं को उपस्थित करते हुए ऐतिहासिक प्रमाणों पर परिहार ढूंढा गया है ।[3] 'प्रायश्चित्त की घडी' में भी वही बात है ।[4] साहित्य की नई मान्यताएं में सारे सामाजिक भेद-भावों के उत्तम समाधान के रूप में सामाजिक मानवतावाद को स्वीकार किया गया है ।[5] आधुनिक जीवन के भ्रष्टाचारों की चर्चा जीवेम शरदः शतम्" निबन्ध में प्राप्त है ।[6] "राष्ट्रीय संकट और हमारा दायित्व" में वर्तमान शिक्षा पद्धति के प्रति विरोध प्रकट किया गया है ।[7] प्रान्तीयता, भाषा-समस्या,

---

1.	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	- कुटज - 1970	- पृ. 11
2.	वही	विचार और वितर्क	-पृ. 184
3.	वही	अशोक के फूल	पृ. 19
4.	वही.	विचार और वितर्क	-पृ. 88
5.	वही	कुटज	पृ. 31
6.	वही		पृ. 14
7.			

पारस्परिक फूट, अशिक्षा, कुरीतियाँ जैसी स्वतंत्र भारत को घेरनेवाली सभी आपत्तियों की विवेचना द्विवेदी ने अभी थकने का समय नहीं आया, लेख में की है[1]। भारत वर्ष की सांस्कृतिक समस्या में हिन्दू मुस्लिम समस्याओं पर विचार किया गया है[2]। ठाकुर जी की बटोर, भगवान महाकाल का कुन्त नृत्य जैसे निबन्ध साम्प्रदायिक विद्वेष और अस्पृश्यता का विरोध करते हैं। समाज संस्कार पर विचार में जाति-प्रथा को राष्ट्रीय जीवन मरण का प्रश्न माना है। धार्मिक रूढ़ियों और आचार परम्पराओं पर दृष्टि डालनेवाला लेख है, फिर सोचने की आवश्यकता है[2]। "मानव धर्म" समस्त ऊपरी विभेदों के अन्दर मनुष्य को अखण्ड स्वीकार करता है[3]। धार्मिक विप्लव और शास्त्र निबन्ध में लेखक ने भारत की वर्तमान विशृंखल धार्मिक स्थिति को धार्मिक विप्लव कहा है[4]। भारतीय संस्कृति की देन" नामक लेख में भारत की धर्म साधना का विवेचन है[5]।

जैनेन्द्र कुमार के निबन्धों में आलोच्य युगीन भारत का परिचय प्राप्त होता है। उनके निबन्ध राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक विषयों से संबद्ध हैं। वे व्यक्ति की आत्मा और समाज के व्यक्तित्व को अभिन्न मानते हैं[6]। उनकी दृष्टि में स्वनिष्ट रहना धर्म है[7]। उनकी मान्यता है कि धर्म उतनी आवश्यक वस्तु है जितनी मकान केलिए नींव। उनकी राय में शस्त्रबल पर नहीं, प्रबलतर श्रद्धा पर चलनेवाली राजनीति के बल पर हम एकता स्थापित कर सकें[8]। स्वतंत्र भारत की आर्थिक दशा पर भी जैनेन्द्र के निबन्ध प्रकाश डालते हैं[9]।

1.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	- विचार प्रवाह	- प्रथम संस्करण	- पृ.270
2.	वही	अशोक के फूल	सातवाँ सं.	पृ. 65
3.	वही	कुटज		पृ. 89
4.	वही			पृ.107
5.	वही	अशोक के फूल		पृ. 75
6.	प्रस्तुत प्रश्न जैनेन्द्र	- व्यक्ति और समाज शीर्षक लेख		
7.	वही	तीसरा सं.1961, धर्म और अधर्म शीर्षक लेख-पृ.2		
8.	जैनेन्द्र	- सोच विचार दूसरा सं. पृ.209		
9.	वही	सोच विचार और प्रस्तुत प्रश्न में संकलित निबन्ध		

शान्ति प्रिय द्विवेदी के निबन्ध सामाजिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। संस्कृतियों का आधार नामक निबन्ध में वर्तमान जीवन की अव्यवस्था, विशृंखलता, लोलुपता, अनुशासन हीनता, हड़ताल, चोरी, डाका आदि बातों की चर्चा है। पर्यवेक्षण" में जनता को बहकानेवाले विभिन्न राजनीतिक दलों के शिकंजे में पड़नेवाली विवेकहीनता पर विचार किया गया है[1]। धुरीहीनता - एक नैतिक समस्या" यह बताती है कि आज की राजनीति अवसरवादिता पर अधिष्ठित है। भारत पर चीनी आक्रमण की चर्चा व्यक्ति और युग में की गई है। रोटी और सेक्स गरीबी, सामाजिक असन्तुलन, मनुष्य की स्वार्थ वृत्ति आदि पर प्रकाश डालता है। किसान और मजदूर में निबन्धकार औद्योगिक स्वावलंबन पर जोर देते हैं। नैतिक शिक्षा में चोर व्यापारियों, साम्प्रदायिक नेताओं, अवसरवादी देश भक्तों और स्वार्थी पदाधिकारियों से ग्रस्त वर्तमान समाज को श्मशान के रूप में देखा गाया है। "नयी पीढी नया साहित्य" में वे कहते हैं कि आजकल धर्म, बिल्कुल व्यवसाय बन चुका है। द्विवेदी जी ने अपने निबन्धों में आर्थिक समस्याओं पर भी विचार किया है। "प्राक्कथन" शीर्षक निबन्ध कृषि की महत्ता को स्वीकार करता है। संवेदना की शिलाएं" में मुद्रा-मुक्त अर्थ शास्त्र की स्थापना आवश्यक दिखाई जाती है।

आलोच्य युग की महान कवयित्री महादेवी वर्मा निबन्ध क्षेत्र में भी अपना स्थान अनुपम रखती हैं। श्रीमती वर्मा ने सामाजिक विकृतियों और विषमताओं को अपने निबन्धों में पूर्ण अभिव्यक्ति की। समाज और व्यक्ति में आप अर्थ और स्त्री-पुरुष संबंध को समाज की दो मुख्य आधार शिलाएं मानती हैं[2]। पितृगृह और पतिगृह में बन्द नारी जीवन का परिचय

---

1. शान्तिप्रिय द्विवेदी - पथ चिन्ह - तीसरा सं. पृ.81
2. महादेवी वर्मा - शृंखला की कड़ियाँ - षष्ठ सं. - पृ.133

नारीत्व का अभिशाप शीर्षक लेख में प्राप्त है[1]। स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न में महादेवी वर्मा का विचार है कि नारी की आर्थिक दासता ही उसे पतित बना देती है[2]। महादेवी ने दहेज प्रथा पर भी अपने विचारों को व्यक्त किया है। आधुनिक शिक्षा की समस्याओं पर भी उन्होंने विचार किया है। उनके काव्य कला[3] नामक निबन्ध में धर्म और ईश्वर के प्रति जनता की विरक्ति, नास्तिकता, धार्मिक विकृतियां आदि की चर्चा है। महादेवी ने आर्थिक विषयों पर भी विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं। उनकी दृष्टि में धन, व्यक्ति तथा समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। काव्य कला, समाज और व्यक्ति, जैसे निबन्धों में निबन्ध लेखिका सामाजिक विकास के लिए धन का समान-वितरण आवश्यक मानती है।

विद्यानिवास मिश्र के निबन्ध भी सामाजिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। आदर्शों के द्वन्द्व में चीन के झूठे आदर्श और गलत नेतृत्व आदि की आलोचना है। "दीपोयत्नेन वार्यताम्" निरपेक्षता किससे आदि निबन्ध पाकिस्तानी आक्रमण के सिलसिले में लिखे गए हैं। "राज चोरी" में निबन्धकार कहते हैं कि चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण ने भारत की निरपेक्षता को जबर्दस्त धक्का दिया है। स्वतंत्र भारत की सामाजिक स्थिति का भी संकेत विद्या निवास मिश्र के निबन्धों में प्राप्त है। सामाजिक अस्तव्यस्तता[4], प्रान्तीयता[5], भाषा-संघर्ष[6], व्यर्थ और व्यवस्थाहीन शिक्षा पद्धति[7], छात्रों की अनुशासनहीनता,

---

1. महादेवी वर्मा - शृंखला की कड़ियां - षष्ठ सं. पृ. 33
2. वही पृ.103
3. वही साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध - प्रथम गंगा प्रसाद पाण्डेय - पृ.46
4.
5.
6.
7. सं. विद्यानिवास मिश्र - आधुनिक निबन्धावली - इन टूटे हुए दियों से काम चलाओ" शीर्षक लेख।

अनैतिकता जैसी बातों पर मिश्र जी ने सूक्ष्म और मार्मिक विचार प्रस्तुत किए हैं। वर्तमान धार्मिक स्थितियों की स्पष्ट और पूर्ण व्याख्या "चिंतन की छाँह, आँगन का पंछी और बनजारा मन", "तुम चन्दन हम पानी", मैं ने सिल पहुँचाई" आदि संग्रहों के निबन्धों में अभिव्यक्ति पायी है। मिश्र जी ने विभिन्न विषयों के विवरण - प्रसंग में देश के आर्थिक वैषम्य पर भी दृष्टि डाली है। इस कोटि के निबन्ध चिंतन की छाँह, साहित्य की चेतना, आँगन की पंछी और बन जारा मन" में संगृहीत है। उनमें आर्थिक असमानता और बढ़ती हुई अर्थलोलुपता पर निबन्धकार का असन्तोष व्यक्त होता है।

उपर्युक्त निबन्धकारों के अतिरिक्त अन्य अनेक साहित्यकारों ने भी इस क्षेत्र में अपना यो दान दिया है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों में राजनीति, धर्म, समाज और आर्थिक क्षेत्र की चर्चा प्राप्त होती है। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनका सामान्य अवलोकन भी यहाँ असंभव है।

प्रत्यवलोकन

मानव सभ्यता का विकास विभिन्न परिस्थितियों से हुआ करता है। परिस्थितियों और उनके प्रभावों का अंकन केवल साहित्य द्वारा ही संभव होता है। यही साहित्य की सामाजिकता का रहस्य है।

देश में नई आशाएं, महात्वाकांक्षाएं, संभावनाएं और नई मूल्य मान्य एवं अंकुरित होती रही है। वे सब समकालीन साहित्यिक विधाओं द्वारा ही चमत्कृत होती हैं। भारत विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न धार्मिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनैतिक तथा आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण पूर्वकालीन साहित्य की अपेक्षा स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में पाया जाता है। आधुनिक साहित्य की विभिन्न विधाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक दुर्बलताओं, सामाजिक कुरीतियों और परंपरा गत अन्धविश्वासों के

विरुद्ध भारतीय जनता की चिन्तन धारा को सजग कर देने में हमारे साहित्यकार कितने जागरूक रहे हैं ।

निष्कर्ष

1. मानव के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की विकास यात्रा का मार्मिक चित्रण केवल साहित्य में ही पाया जाता है । अन्यान्य कलाओं साहित्य की वरेण्यता इसी तथ्य पर अधिष्ठित है । साहित्यकार इस समाज का सबसे बड़ा हित और व्याख्याता है ।

2. समाज की प्रगति "जीर्ण" पुरातन की उपेक्षा और अभिनव की स्वीकृति के द्वारा ही संभव है । अतएव सच्चा साहित्यकार देश की राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रांति का समर्थन करता है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का शंखनाद मुखरित होता है ।

3. सामाजिक समस्याओं की ओर सजग और यथार्थोन्मुख दृष्टि स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की कोई निजी विशेषता नहीं है । भारतेंदु युग से लेकर हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में सामाजिक शक्तियों का अत्यंत ईमानदार चित्रण उपलब्ध है । संपूर्ण साहित्य का लक्ष्य समाजकल्याण ही प्रतीत होता है ।

4. समय के प्रवाहानुसार साहित्य की सामाज तत्परता अधिक गहरी और व्यापक दिखाई देती है । स्वाधीनता के बाद यह और भी स्पष्ट हो जाती है ।

5. स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य विशेषतः आदर्शवाद से मुक्त दिखाई देता सामाजिक समस्याओं के हल में वैज्ञानिक दृष्टि स्वीकृत होने लगी है ।

6. पत्र-पत्रिकाओं के अभूतपूर्व प्रचार के परिणामस्वरूप साहित्य जनजीवन के बहुत निकट आ चुका है । साहित्य की सामयिक उपयोगिता इससे बहुत दृढ़ चुकी है ।

ՃՃՃՃՃՃՃՃՃՃՃ

अध्याय - ३

नाटक और उनकी सामाजिक समीक्षा

तृतीय अध्याय

नाटक और उसकी सामाजिक समीक्षा

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । अपने चारों ओर की घटनाओं से वह निरन्तर प्रभावित होता रहता है । इस सामाजिक प्रभाव की अभिव्यंजना कला में प्राप्त होती है । अतएव कला का मूल आधार ही मानव की भावाभिव्यक्ति-प्रकाशता है । कला मानव जीवन की अभिव्यक्ति है[1] । मानवीय संवेदनाओं का उद्घाटन कला में होता है । अमूर्त भावनाओं और अभिलाषाओं को मूर्तिमान करके वह जीवन की समस्त दिशाओं में अभिव्याप्त रहती है । कला समाज को विश्वबन्धुत्व की भावना से अनुप्राणित करती है[2] ।

काव्य कला का विभाजन सामान्यतया दो श्रेणियों में किया जा सकता है - श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य । इनमें दृश्य काव्य को सर्वोत्कृष्ट माना गया है । वह सर्वजन प्रिय भी है[3] ।

---

1. रघुवंश - नाट्यकला - प्रथम सं॰ 1961
2. Leo Tolstoy — What is art and essays on art — 1964 - P. 26
3. नाट्यशास्त्र - अध्याय - 1 |रघुवंश द्वारा संपादित|

कला और सामाजिक जीवन

कला सामाजिक जीवन की दिव्य अनुकृति है[1]। सामाजिक मान्यताओं आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों, धार्मिक विचारों और प्रचलित रीति रिवाजों के अनुसार उसका विकास होता रहता है। कला पूर्णतया समाज सापेक्ष रहती है। अतः समाज के प्रति कला का महान उत्तरदायित्व है। व्यक्ति और समाज में एकता स्थापित करना उनको एक दूसरे के समीप लाना कला का कार्य माना गया है[2]। गाल्सवर्दी ने "सम् फोर्टिट्यूड्स ऑफ ड्रामा" नामक ग्रंथ में मानव जीवन के आवश्यक अंगों को चित्रित कर उसे सचेत कर देना कला का कर्तव्य माना है[3]।

कला का मूल आधार सामाजिक रुचि है। अतः व्यक्ति की कलात्मक रुचि सामाजिक रुचि से नियन्त्रित रहती है। "जिस प्रकार साहित्य धर्म और विज्ञान का लोक के व्यापक जीवन में प्रवेश आवश्यक है उसी प्रकार जीवन के संस्कार और समाज की स्थिति केलिए कला की अनिवार्य आवश्यकता है[4]। मानव का आध्यात्मिक विकास और सामाजिक कल्याण कला के बिना असंभव है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि क्रान्ति के प्रेरणादायक विचारों का कला के माध्यम से प्रचार किया जाता है। फ्रांस और रूस की क्रान्ति के पीछे वाल्टेर, रूसो तथा मार्क्स और लेनिन के सिद्धांत कार्य करते रहे। इनके आदर्श और विचारों ने कला के माध्यम से तत्कालीन जनता पर गहरा एवं व्यापक प्रभाव डाला। जनता में नूतन विचारों का प्रचार करके समाज को प्रगति प्रदान करने में कला का महत्वपूर्ण योगदान है।

---

1. William Henry Hudson — An introduction to the Study of Literature Second Edn. P. 252
2. रामचन्द्र शुक्ल - कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ - दूसरा संस्करण
3. कमलिनी मेहता- नाटक के तत्व - प्रथम संस्करण - पृ.4 से उद्धृत
4. वासुदेव शरण अग्रवाल - कला और संस्कृति - पृ.248

कुछ कलाकार अपनी कला को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति मानते हैं। लेकिन व्यक्ति से निःसृत होती हुई भी कला तत्वतः सामाजिक ही है। कलाकार अपनी कला का बीज अपने समाज से प्राप्त करता है। उसे अपना वैयक्तिक रंग प्रदान करके उसे समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। अतः कला की समाज सापेक्षता असंदिग्ध है। कला के बिना समाज प्राणविहीन हो जाता है और समाज के बिना कला पनप ही नहीं सकती[1]।

समाज को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली साहित्यिक विधाएं हैं उपन्यास और नाटक। इनमें भी सामाजिक प्रभाव की दृष्टि से नाटक का स्थान सर्वप्रथम है। उपन्यास का समाज पर प्रभाव केवल मानसिक है जब कि नाटक का प्रत्यक्ष। जीवन के यथार्थ चित्र नाटक में ही खींचे जा सकते हैं।

<u>नाटक : एक सामाजिक कला</u>

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक जीवन-अभिव्यक्ति का सबसे सुन्दर सरस और सशक्त माध्यम है। उत्तम नाट्य कृति वही है जिससे मनोरंजन के साथ साथ विचार सामग्री भी प्राप्त हो[2]। अर्थात् नाटक में सामाजिक अंश ही प्रमुख है। केवल मनोरंजन ही उसका लक्ष्य नहीं। हृदयाह्लाद के साथ सामाजिक हित भी उसके द्वारा संपन्न होता है। वह समाज को प्रगति की ओर प्रेरित करता है। अंग्रेज़ी कवि शेली का विचार है कि सामाजिक कल्याण के साथ काव्य का जो संबन्ध है वह सबसे अधिक नाटक में परिलक्षित होता है[3]।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ - पृ॰45
2. ए॰ निकोल - वेस्ट ड्रामा
3. श्रीराम मेहरोत्रा- साहित्य का समाज शास्त्र मान्यता और स्थापना
   प्रथम संस्करण, 1970

नाटक समाज को सहजतया प्रभावित करता रहता है । यह जनता को शिक्षित, सजग और प्राणवन्त कर देता है । यह ज्ञान और कर्म दोनों का प्रतीक है[1] । नाटक की अन्य विशेषता यह है कि इसमें प्रचलित सामाजिक बुराइयों का विरोध किया जाता है । इनसे अवगत होने पर समाज उन्हें छोड देने को तैयार हो जाता है । राजनीतिक परिवर्तन में नाटकों का जितना योगदान है उतना और किसी कला का नहीं । रूस, चीन, अमेरिका जैसे राष्ट्र नाटकों द्वारा अपने राजनीतिक विचारों और सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं[2] । नाटक के साथ धर्म का भी अटूट संबंध है[2] । धार्मिक नवोत्थान के प्रसार में नाटकों ने जो स्वरा पहुँचाई वह आश्चर्यजनक है ।

नाटक ही जन साधारण की अपनी कला है । इसमें जीवन की घटनाएँ वास्तविकता के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत की जाती हैं । इस दृष्टि से देखने पर नाटक को जीवन की आलोचना या दर्पण कहा जा सकता है[3] । समाज की आशा - निराशा, सुख-दुःख, रीति-रिवाज तथा विभिन्न समस्याओं को प्रतिबिंबित करनेवाला नाटक अपनी प्रभावोत्पादकता के बल पर अन्य कलाओं का अग्रणी बन गया है ।

सारी कलाएँ सामाजिक है । पर नाटक की सामाजिकता का दृश्यफलक बहुत ही विस्तृत है । युग परिवर्तन के साथ परिवर्तित होनेवाले सामाजिक मूल्यों की सच्ची अभिव्यक्ति नाटक में ही होती है । नाटक में समाज के सभी वर्ग के व्यक्तियों के रंजन करने की शक्ति है[4] । यह जन समूह का ही क्रिया व्यापार है । किसी भी युग के नाटक का स्वरूप वही होता है जो वहाँ की जनता को स्वीकार्य है[5] । सचमुच नाटक का सामूहिक आस्वादन[6] ही सामाजिक कला के रूप में उसका स्थान श्रेष्ठ रखता है ।

---

1. डॉ० - किसान - प्रेमचंद सं० - विचार और दृष्टिकोण
2. Ronald peacock - The Art of Drama - Second Edn. - p 159
3. William Henry Hudson - An introduction to the study of Literature p. 252
4. Ronald peacock - The Art of Drama - p 189
5. श्रीराम मेहरोत्रा - साहित्य की समाज शास्त्रीय मान्यता और स्थापना-पृ० 15
6. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - दूसरा संस्करण, कुछ और बातें ।

मनुष्य की सामाजिकता की रक्षा और विकास नाटक के द्वारा होता है । सामाजिक संगठन, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक कार्यक्रम, धार्मिक दृष्टिकोण आदि का प्रस्तुतीकरण नाटक के माध्यम से सफलतापूर्वक होता है । इसी के अनुसार रंगमंच का निर्माण किया जाता है । रूस, अमेरिका, इंग्लैंड जापान जैसे विकास प्राय देशों की नवीन रंगशालाएं इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

युगीन वातावरण नाट्य को निरंतर प्रभावित करता है । जीवन के सामान्य तथ्यों के आधार पर उसके हेतु तक जाने का प्रयास उसमें किया जाता है । वह सर्वसाधारण की वस्तु है । नगरों में तथा गावों में जन जागृति नाटक के द्वारा लाई जा सकती है । यह पुराने और आगामी मानव समाज का मान चित्र प्रस्तुत करता है । नाटक हर स्तर पर समाज के साथ जुड़ा रहता है । अतः उसमें सामाजिक पक्ष का वस्तुगत चित्रण रहता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नाटक का सामाजिक परिवेश अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक व्यापक और विपुल है ।

नाटक के प्रकार

विभिन्न प्रकार के नाटकों की रचना होती रहती है । स्थूल रूप से उनका वर्गीकरण यों किया जा सकता है - ऐतिहासिक नाटक, सांस्कृतिक नाटक, पौराणिक नाटक राजनीतिक नाटक, समस्या प्रधान नाटक और सामाजिक नाटक । विषय वस्तु के वैविध्य की दृष्टि से ही इस प्रकार का वर्गीकरण किया जाता है । लेकिन सबमें किसी न किसी सामाजिक समस्या का समावेश अवश्य रहता है ।

अधिकतर ऐतिहासिक नाटकों में अतीत के वैभव के चित्रण का प्रयास है । फिर भी वह अपने काल की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक ~~सांस्कृतिक~~

---

1. गोविन्द वल्लभ पन्त - सुजाता - तीसरा संस्करण, प्राक्कथन

एवं धार्मिक घटनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं[1]। सांस्कृतिक नाटकों में भी तत्वतः सामाजिक जीवन की झांकी मिलती है। धर्म का गुण कीर्तन, भक्ति प्रवाह, दिव्य पुरुषों के जीवन की झांकी आदि का प्रस्तुतीकरण पौराणिक नाटकों में है। पर सामाजिक स्थिति का परिचय उनके द्वारा भी इसमें प्राप्त होता है। राजनीतिक नाटक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण करता है। समस्या प्रधान नाटकों में नारी की स्थिति, प्रेम, विवाह, तलाक, गरीबी, अनीति, नई और पुरानी पीढ़ी तथा मालिक मज़दूर आदि के बीच का संघर्ष जैसी बातों की विभिन्न समस्याओं पर प्रमुखतः प्रकाश डाला जाता है[2]।

युग चेतना का सर्वाधिक प्रभाव सामाजिक नाटकों पर पड़ता है। सामाजिक नाटक वे हैं जो प्रमुख रूप से व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं की अपेक्षा समाज के परिस्थितिजन्य और सांस्कृतिक तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं[3]। सामाजिक नाटकों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण, उनके कारणों और उपचारों का प्रतिपादन ही नहीं, बल्कि समाज की पिछली परंपराओं और संस्कारों की पृष्ठभूमि पर उनका विश्लेषण भी किया जाता है। तत्कालीन जीवन की विसंगतियों के प्रति समाज को सावधान करना इस प्रकार के नाटकों का मुख्य लक्ष्य है। सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांप्रदायिक बातें भी इन में स्थान पाते हैं। मंगलमय समाज की स्थापना की प्रेरणा भी ये देते हैं। इनमें प्रायः सभी पात्र क्रान्तिकारी होते हैं। वही क्रान्तिकारी हो सकता है जो रूढ़ या जीर्ण सामाजिक रीतियों का पूरा विरोध करके नई व्यवस्था की अभिलाषा करें[4]। क्रान्तिकारी पात्र समाज को अपने प्रतिकूल पाने पर उसके विरुद्ध विद्रोह करने लगता है।

---

1. H.K DAVIS — Realism in Drama — 1934 p. 37
2. R.C Gupta — The Problem play — P 87
3. 'social play is a narrative or dramatic work that deals primarily with social questions and problems that focus on enviornmental and cultural factors more than on personal and psychological characterestics'
Dictionary of Literary Terms — P. 349
4. The Complete prefaces of Bernard S[illegible]

ग. नाटककार का सामाजिक दायित्व

नाटककार समाज की उपज है । समाज अपने समग्र रूप से नाटककार की चेतना में संविदित होता है । इसके बल पर नाटककार निजी देश के सामाजिक राजनीतिक आर्थिक एवं धार्मिक धरातल के आधार पर सोचता है और लिखता है[1]। रचना प्रक्रिया के अवसर पर समाज रचनाकार की अंतर्दृष्टि के सामने जाग उठता है अभिनेताओं के माध्यम से समकालीन समाज का वह साक्षात्कार करता है । अपने समाज का जीता जागता चित्रण करना नाटककार का कर्तव्य है । जो नाटककार जीवन के क्षेत्र से नाटकीय वस्तु का चुनाव नहीं कर पाते उनके नाटकों के नींव ही कमज़ोर हो जाती है[2]।

साहित्यकार का कर्तव्य ऐसे साहित्य की सृष्टि करना है जो देश के शौर्य को उद्दीप्त करके सैनिक के आत्मबल को प्रबुद्ध करे, समाज में बलिदान और स्वतंत्र्य की भावना जगाये, राष्ट्रीय शक्ति तथा साधना का सामंजस्य करे और इन सबके द्वारा स्थायी विजय का मार्ग प्रशस्त करे[3]। नाटककार का कर्तव्य भी यही है । एतदर्थ उसको अपने चतुर्दिक घटनेवाली घटनाओं को मांस और मज्जा प्रदान करके रक्त के प्रवाह से उष्ण करके उनमें प्राण फूंककर शब्द के रूप में उनमें तेज भरना पड़ेगा[4]। विश्व विख्यात साहित्यकार बर्नार्डशा नाटककार को जीवन का व्याख्याकार मानते है[5]। उनकी मान्यता है कि नाटक के पात्र और घटनाएं हमारे दैनंदिन जीवन से संबद्ध हो[6]।

---

1. श्रीराम मेहरोत्रा - साहित्य के समाजशास्त्र मान्यता और स्थापना-पृ.1
2. ले.गोपाल कृष्ण कौल - सं. श्रीमती कौशल्या अश्क - नाटककार अश्क-पृ.
3. ले.डा.नगेन्द्र सं.डा. रणवीर रांग्रा - साहित्य साधना और संघर्ष प्रथम सं.1965 - पृ.29
4. भगवत शरण उपाध्याय - साहित्य और कला - प्रथम सं 1960 - पृ.19
5. The Complete prefaces of Bernard Shaw — P 204
6. Ibid — Ibid

नाटक अवश्य मनोरंजन का साधन है, पर है वह जीवन विकास का अमोघ अस्त्र भी । नाटककार को इस बात पर खूब ध्यान रखना चाहिए कि हमारा समाज अपनी गोदी में पले हुए सड़े की कीड़ों की ओर भी देखें अपनी सहानुभूति उन्हें प्रदान करे और जीवन की वास्तविकता से भी परिचित हो जाय[1]। सामाजिक दायित्व से बचकर नाटककार कभी नाटककार नहीं बन सकता ।

सामाजिक यथार्थ का चित्रण : पश्चिमी नाटकों में

आधुनिक युग के पूर्व पश्चिमी नाटकों का मुख्य विषय समाज के उच्चशिष्ट वर्ग से संबन्धित था । ऐलिजबेथ युग का शान्तिपूर्ण वातावरण शेक्सपीयर के नाटकों में प्रतिबिंबित है[2]। उस युग के नाटकों का मुख्य लक्ष्य उच्च वर्ग का दिल बहलाव था । इसी कारण शेक्सपीयर ने अभिजातों को अपने नाटक का पात्र बनाया । चरित्र और कथावस्तु को शेक्सपीयर नाटकों में सर्वाधिक महत्व प्राप्त है[3]। इसका यह अर्थ नहीं कि साधारण जनजीवन का प्रतिबिंब उनमें नहीं प्राप्त होता । इससे सिद्ध यह होता है हर युग में नाट्य का संबन्ध समाज से रहा करता है ।

शेक्सपीयर युग के लगभग 250 वर्षों के बाद फ्रांस की राज्यक्रान्ति हुई । यह क्रान्ति तत्कालीनी सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन लाई । इसके फलस्वरूप जीवन और जगत के संबन्धों में नई मान्यताएं स्वीकृत हुई[4]। व्यक्तिगत अधिकारों की मांग, भावों की स्वच्छ अभिव्यक्ति, मानव कल्याण की भावना - सब साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हो गई । इस युग ने जिन नव मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा की उनकी अभिव्यक्ति स्वच्छन्दतावादी साहित्य में लक्षित होती है । स्वच्छन्दतावाद ने परंपरागत सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह किया । उसने साहित्य में मानव जीवन के यथार्थ प्रस्तुतीकरण का समर्थन किया ।

---

1. एस. पी. खत्री - नाटक की परख - पृ.93
2. रामकुमार वर्मा - पृथ्वी का स्वर्ग - भूमिका - प्रथम सं - पृ 7
3. दशरथ ओझा - समीक्षा शास्त्र - तृतीय सं. - पृ.21
4. Louis Cazamian — Social Novel in England (1830-1850) — P 14

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध यूरोप में सांस्कृतिक नवजागरण का समय था । सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएं उद्भूत हुईं । व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में अनेकों बन्धनों में जकड़ा हुआ है । इसकी प्रतिक्रिया थी परंपराओं के प्रति अदम्य विद्रोह की भावना । इस स्थिति के फलस्वरूप व्यक्तिवाद का प्रचार साहित्य में होने लगा । रोमांटिसिज़्म को व्यक्तिवाद का विस्फोट माना जाना चाहिए ।

नाट्यसाहित्य भी व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित हुई । सामाजिक जीवन से उसे ओतप्रोत करने की महती आवश्यकता महसूस हुई । समाज का यह परिवर्तन विक्टोरिया युग के नाटकों में धीरे धीरे अनुभूत होने लगा । इसी अवसर पर समस्या नाटक लिखे जाने लगे । विक्टोरियन समाज के जीर्ण क्षीण रीति रिवाज़ों से निरन्तर संघर्ष करनेवाले स्त्री-पुरुषों का यथार्थ चित्र इन नाटकों में मिलता है । अंग्रेज़ जनता के सामाजिक दृष्टिकोण को एक हद तक परिवर्तित करने में ये नाटक सफल हुए हैं[1] ।

समस्या नाटकों का यद्यपि व्यक्तिगत समस्याओं से सुदृढ संबंध है तथापि उनका सामाजिक पक्ष ही अधिक प्रबल लक्षित होता है । कारण, व्यक्ति की समस्याओं का सामाजिक समस्याओं से अंग-अंगी संबन्ध है । अतः समस्या नाटकों को सामाजिक नाटक कहना अधिक उचित प्रतीत होता है ।

आर्थिक और भौतिक विकास के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य जनजीवन में जो उलझनें हुईं उनका यथार्थ चित्रण इब्सन [1828-1906] बर्नार्ड शा [1856-1950] जान गाल्सवर्दी [1867 - 1913]

---

1. R.C Gupta – The problem play – A Study in theory and practice – P. 106

जैसे नाटककारों ने किया । इनकी दृष्टि प्रमुखतः बौद्धिक थी । राजनीतिक, सामाजिक, वैयक्तिक और पारिवारिक समस्याओं का इन्होंने बौद्धिक विवेचन अपने नाटकों में किया ।

इब्सन की प्रत्येक रचना किसी न किसी मौलिक समस्या को सामने रखती है । 'दि पिलर्स आफ सोसायटी' - (1877), 'ए डॉल्स हाउस,' (1879), गोस्ट्स'(1881), 'दि वाइल्ड डक'(1884) जैसे सफल नाटकों में उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह उनकी निजी अनुभूति पर आधारित है[1] । मध्यवर्गी के व्यक्ति उनके नाटकों के पात्र हैं । ये व्यक्ति परिस्थितियों से लड़ते हुए बनते और बिगड़ते हैं । व्यक्ति समस्या, स्त्री स्वातंत्र्य, स्त्री पुरुष संबन्ध वैवाहिक समस्याएं जैसी सामाजिक बातों पर उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला है ।

जार्ज बर्नार्डशा ने नाट्यक्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की[2] । उन्होंने यूरोपीय समाज के झूठे आदर्शों पर उग्र प्रहार किया । अंग्रेजी समाज की असभ्यता, बनावटी शिष्टता, मक्कारी और ऐयारी, नीच स्वार्थपरता आदि का पर्दाफाश करना इनका उद्देश्य था । अपने, दि विडोवर्स हाउस मिसिस वारन्स प्रोफेशन जैसे नाटकों में उन्होंने युद्ध, प्रेम, नारी जीवन, विवाह, धर्म, राजनीति आदि सामाजिक तथ्यों के यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन किया ।

जान गाल्सवर्दी जो उपन्यासकार के रूप में विख्यात है नाट्यक्षेत्र में शा के प्रतिद्वंदी माने जाते हैं । उन्होंने दि सिल्वर बोक्स {1906} स्ट्रिफ {1909} जैसे नाटकों में व्यक्ति और समाज के बीच के संघर्ष को वाणी दी । न्याय की समस्या, अमीर गरीब का भेद-भाव मिल मालिक मजदूर संघर्ष जैसी चिरन्तन सामाजिक समस्याएं गाल्सवर्दी के नाटकों का प्रतिपाद्य विषयें रहीं ।

---

1. H.R. DAVIS — Realism in Drama — P. 143
2. George Sampson — The Concise Cambridge History of English Liter 3rd Edn. — P 902
3. दशरथ ओझा - समीक्षा शास्त्र - पृ.23

ये नाटककार साधारण जनता की समस्याओं से भली भांति परिचित थे। अत: उनकी रचनाओं में जनजीवन समस्याओं को प्रमुखता दी गई। रूढ विश्वासों और कुरीतियों के विरुद्ध मनुष्य का संघर्ष इनके नाटकों में अभिव्यक्त हो उठा।

आधुनिक हिन्दी नाटकों में सामाजिकता

सन् 1857 की राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप भारतीय जनजीवन में क्रान्तिकारी विचार प्रबल हो गए। देश भक्ति, राष्ट्रीयता, जातीय चेतना, भाषा प्रेम, समाज सुधार आदि इस क्रान्ति की सामाजिक उपलब्धियां हैं। फ्रांस और इंग्लैंड की राज्यक्रान्ति की तरह 1857 की राज्य क्रान्ति ने भारतीय सामाजिक चेतना को उद्दीप्त किया।

इब्सन, शा, गार्ल्सवर्थी जैसे पश्चिमी नाटककारों के दृष्टिकोण से तत्कालीन हिन्दी नाट्यकार भी प्रेरणा ग्रहण करने लगे। हिन्दी नाटकों में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति इस परिस्थिति की उपज है।

यह ठीक है यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युग से लेकर निरन्तर जारी रहती है। भारतेन्दु ने अपनी रचनाओं द्वारा सुषुप्त राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया, सामाजिक और धार्मिकव्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया। उनसे प्रभावित उनके सहधर्मी नाटककारों ने समाज सुधार और जनकल्याण को अपना मुख्य उद्देश्य माना। इसलिए बाल विवाह अनमेल विवाह, दहेज, वेश्यावृत्ति, नारी की दीन दशा, जैसी तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को नाटकों का विषय बनाया गया।[1]

परवर्ती नाटककारों ने भारतेन्दु युगीन प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। सन् 1921 से लेकर 1947 तक का समय भारतीय इतिहास में क्रान्ति युग है।

---

1. पं॰ रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास

इसी समय भारतीय साहित्य विदेशी विचारधाराओं से आमूलाग्र प्रभावित पाया जाता है। दुनिया सांस्कृतिक दृष्टि से एक होती जा रही थी। उच्चवर्ग - निम्न वर्ग, सामन्त-कृषक, पूंजीपती-श्रमिक आदि के बीच जो संघर्ष चल रहा था उसका प्रतिबिंब इस युग के हिन्दी नाटकों में उपलब्ध है। व्यक्तिवाद, साम्यवाद, समाजवाद, गांधीवाद जैसी विचारधाराओं से समाज प्रभावित हो उठा। भारतीय इतिहास में यह समय गांधीयुग कहा जाता है जिसके मानवतावाद ने हमारे साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया। स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद तत्कालीन हिन्दी नाट्यसाहित्य में यह प्रतिफलित है।

राजनीतिक जीवन में व्याप्त स्वार्थ लिप्सा, दलबन्दी शोषण और भ्रष्टाचार हिन्दी नाटकों में बडे मर्मस्पर्शी ढंग से अभिव्यंजित हुए है। देश की अर्थनीति और धार्मिक स्थिति भी अभिव्यक्ति पाती है।

नूतन भारतीय समाज को नई नई परिस्थितियों और समस्याओं का सामना करना पडा है। ये समस्याएं पूर्व की अपेक्षा अधिक जटिल है। सामाजिक नवनिर्माण की प्रक्रिया यद्यपि आरंभ हुई तथापि बीच बीच अवरुद्ध सी दिखाई पडते हैं। जनता ने अपने जीवन में जो स्वप्न देखे थे वे बहुधा व्यर्थ सिद्ध हुए। जीवन मूल्य संबन्धी जो धारणा थी वह अब अर्थहीन प्रतीत होने लगी है। छल कपट धोखा आदि ने जीवन को घेर लिया है। त्याग की महिमा धीरे धीरे गायब हो गई। और धनोपार्जन आधुनिक जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बन गया। इन सारी परिस्थितियों का यथातथ्य चित्रण स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में विशेषकर नाटकों में किया गया है -

नाटक चाहे किसी भी प्रकार का हो उसकी विषयवस्तु का आधार चाहे जो भी हो, उसका प्रमुख तत्व रहता है सामाजिकता का चित्रण। हिन्दी के कुछ नाटककार अति भावुक है। उनकी अतिमात्र काव्योचित थी।

पर तथ्य यह है कि उन्होंने अपने नाटकों में सामाजिक जीवन की उपेक्षा नहीं की स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में सामाजिकता की प्रवृत्ति अधिकाधिक स्पष्ट दिखाई पड़ती है । हमारे नाटककारों ने अपने समाज तथा देश की सबसे सूक्ष्म तथा सबसे जटिल समस्याओं का भी प्रतिपादन अपनी रचनाओं में किया है । पूर्ववर्ती नाटककारों की अपेक्षा स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों की दृष्टि समाज कल्याण पर अधिक आस्था के साथ टिकी रही । उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, पौराणिक और समस्या प्रधान नाटकों में समकालीन समाज का जीता जागता चित्रण किया है[१]।

निष्कर्ष

- (1) श्रव्य और दृश्य कलाओं में नाटक का सामाजिक महत्व सर्वाधिक है ।
- (2) नाटक की उपादेयता उसकी जन सम्प्रति पर अधिष्ठित है ।
- (3) सामाजिक दायित्व को सफलतापूर्वक निभाने में ही नाटककार की सफलता है ।
- (4) समाज चित्रण की प्रवृत्ति के आविर्भाव के लिए आधुनिक हिन्दी नाटक पश्चिम नाट्य साहित्य का ऋणी है । आधुनिक नाटककार बुद्धिवाद का प्रश्रय लेता है ।
- (5) समसामयिक सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की विभिन्न समस्याओं को लेकर नाटकों का सृजन करने में आधुनिक रचनाकार तत्पर है ।
- (6) सब प्रकार के नाटकों को सामाजिक नाटक कहना युक्ति संगत है ।

&&&&&&&&&&&&&&&

अध्याय - 4

भारतेन्दुकालीन नाटकों में सामाजिक चित्रण

चतुर्थ अध्याय

भारतेन्दुकालीन नाटकों में सामाजिक चित्रण

आधुनिक साहित्य का उन्मीलन वस्तुत: भारतेन्दुयुग में ही होता है । यह जागरण और उत्थान का समय है । सन् 1858 की शासकीय घोषणा के साथ साथ भारत में अंग्रेजी राजसत्ता का आधार दृढ हो चुका था । पूर्वी और पश्चिमी विचार धाराओं का यह सन्धि-काल भारतीय इतिहास में महत्व-पूर्ण रहा[1] । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र नवीन शक्तियों को पकड़ने में व्यग्र थे । अंग्रेजों की सत्ता-स्थापना के फलस्वरूप सामाजिक स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन परिलक्षित होने लगे थे ।

भारतेन्दु युग में शिक्षा की वृद्धि के साथ समाचार पत्रों और मुद्रणालयों का प्रचार भी बढा । जनतंत्र शासन के आदर्शों का बीजारोपण, परोक्ष रूप से ही क्यों न हो, हो चुका था । एक नये वर्ग-मध्य वर्ग- का आविर्भाव हुआ[2] । सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन हुए । बुद्धिजीवी वर्ग

---

1. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture - Fifth Edition p.498

2. Hans Nagpaul - The Study of Indian Society - 1972 p.113

स्वाधीनता के नूतन पहलुओं के अन्वेषक बन गए । नव युग की विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं "उन्नीसवीं शताब्दी एक दिलचस्प ज़माना है । लेकिन हमारेलिए उसका अध्ययन कोई आसान काम नहीं है । यह सामने फैला हुआ एक लम्बा चौड़ा दृश्य है, एक बड़ा चित्र है और चूंकि हम उसके इतने नज़दीक हैं, इसलिए वह हमें पहले की सदियों की बनिस्बत ज्यादा बड़ा और ज्यादा घना मालूम होता है । जब हम इस सदी को गूंथनेवाले हज़ारों धागों को सुलझाने की कोशिश करते हैं, तो इसका बड़ापन और इसकी पेचीदगी कभी कभी तो हमको चकरा देती है"[1] ।

भारतेन्दु युग की सामाजिक स्थिति अस्त व्यस्त थी । राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों के अवलोकन से उस युग की वास्तविक स्थिति व्यक्त हो जाती है ।

भारतेन्दु और उनके समकालीन नाटककारों ने अपने युग के सामाजिक जीवन का सजीव चित्रण अपनी रचनाओं में किया है । उनकी कृतियों के सामाजिक निरूपण के पहले तत्कालीन परिस्थितियों का दिग्दर्शन करा देना अतएव आवश्यक है ।

राजनीतिक परिस्थिति

व्यापार को लक्ष्य करके भारत पहुंचे अंग्रेज़ों ने यहां अपनी राजसत्ता कैसे जमायी, इसका उल्लेख प्रथम अध्याय में थोड़े विस्तार से किया जा चुका

---

1. पं०जवाहरलाल नेहरू - विश्वइतिहास की झलक - प्रथम भाग
अनु० चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय - तीसरा सं० पृ०553

सन् 1850 तक आते आते यह विदेशी शक्ति भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में अपना पूरा प्रभाव जमा चुकी थी। देशी राज्यों पर भी अंग्रेज़ों ने अपना अधिकार जमाना शुरू किया। दिल्ली के सम्राट [बहादुर शाह] के प्रति उनका व्यवहार अभद्र और अनुचित था। ईसाई धर्म की ओर जनता को आकृष्ट करने का प्रयत्न भी उन्होंने किया[1]। इन अंग्रेज़ी नीतियों ने भारतवासियों को असंतुष्ट बना दिया।

सिपाही गदर

जनमानस में व्याप्त असन्तोष की भावना "सिपाही गदर" के रूप में सन् 1857 में फूट पड़ी[2]। यह लार्ड केनिंग का समय था। सचमुच विदेशी शासन की ज़्यादतियों से प्रपीड़ित जन-जीवन का आक्रोश ही इस विद्रोह के द्वारा स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा। इस भीषण विद्रोह ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर डाला[3]। ब्रिटीश सरकार को यह बात विदित हुई कि भारतीय जनता की भावनाओं का दमन असंभव है।

ब्रिटीश सम्राज्ञी की घोषणा और प्रतिक्रिया

परिणामस्वरूप भारत का शासन ब्रिटीश सम्राज्ञी के हाथ में आ गया। सन् 1858 में महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा निकाली[4]।

---

1. B.N. Puri - A study of Indian History First Edition p.211
2. R.C. Majumdar - Sepoy Mutiny - Second Editon p. 84
3. R.C. Majumdar - Sepoy Munity - Second Edition p. 87
4- M.M. Ahluwalia - Freedom Struggle in India (1858-1909) First Edition p. 24

इसमें भारतीय जनता को यह समाश्वासन दिया गया -

1. सभी धर्मों के प्रति समान बर्ताव किया जाएगा ।
2. जाति, रंग व धर्म के विचार के बिना सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति की जाएगी[1] ।

इस घोषणा-पत्र का अच्छा प्रभाव भारतीयों पर पड़ा । उनमें नवीन आशा और उत्साह का संचार हुआ । ब्राह्मणों ने यज्ञोपवीत हाथ में लेकर कहा था - महारानी चिरजीवी हों[2] ।

विद्रोह के बाद सन् 1876 तक का समय एक प्रकार से शान्तिपूर्ण रहा । पर यह शान्ति स्थायी नहीं रह सकी । जनता में धीरे-धीरे देश भक्ति का प्रसार होने लगा । स्वाभाविक है, सरकार ने यह पसन्द नहीं किया । सरकार समझती थी कि समाचार पत्रों के प्रभाव से ही देश-प्रेम की भावना बढ़ने लगी है । इसलिए लार्ड लिटन ने सन् 1878 में "वर्नाक्युलर एक्ट" पारित करके समाचार पत्रों की स्वतंत्रता छीन ली[3] । लार्ड रीपन के समय में प्रेस एक्ट रद्द कर दिया गया[4] । शान्ति का वातावरण पुनःस्थापित हुआ । इससे व्यक्त है नव जागरण की जो चेतना भारतीय समाज में उद्बुद्ध होने लगी थी, वह अनायास मन्द पड़नेवाली नहीं थी ।

---

1. K. Nilakantha Sastri & G. Srinivasachari - Life and Culture of Indian people - Second Edition p.[illegible]
2. डा॰लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ॰57
3. डा॰कृष्ण बिहारी मिश्र - हिन्दी पत्रकारिता - पृ॰89
4. हिन्दी पत्रकारिता-विविध आयाम - सं॰डा॰वेदप्रताप वैदिक - पृ॰82

कांग्रेस की स्थापना

नवीन परिस्थिति के फलस्वरूप जो उत्साह देश भर में छा गया उसकी सर्वश्रेष्ठ परिणति इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना में लक्षित होती है । यद्यपि विक्टोरिया महारानी की विज्ञप्ति के कारण थोड़ा बहुत संतोष लोगों को प्राप्त हुआ था तथापि व्यावहारिक क्षेत्र में उस विज्ञप्ति का प्रयोग बहुत कम होता था । उद्योग-धन्धों पर अब भी विदेशियों का प्रभुत्व था । देशी काम-धन्धों की पूरी उपेक्षा हो रही थी । टैक्स के कारण जनता त्रस्त थी[1] । अपने अधिकार - बोध के उन्मेष के फलस्वरूप जनता नये परिहार के अन्वेषण में लग गयी ।

इन सब परिस्थितियों का सम्मिलित परिणाम है - इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना । यह घटना [सन् 1885 में] आधुनिक भारत के इतिहास में एक नये युग का आरंभ सूचित करती है[2] । कांग्रेस के जन्मदाताओं में ए.ओ. ह्यूम का नाम विशेष उल्लेखनीय है[3] । सरकार से संघर्ष करना इस संस्था का लक्ष्य नहीं था । जनता के न्याय संगत अधिकारों की प्रतिष्ठा के लिए सरकार से प्रार्थना करना ही उसका लक्ष्य था[4] ।

---

1. "इस दु:खद टैक्स से गवर्नमेंट को सामान्य ही आमदनी है, परन्तु बेचारी प्रजा को जितना अत्याचार सहने पड़ते हैं हम नहीं लिख सकते" [उचित वक्ता की संपादकीय टिप्पणी से उद्धृत]
डा. कृष्ण बिहारी मिश्र - हिन्दी पत्रकारिता - पृ.187

2. Sitharam Singh - Nationalism and Social Reform in India p.24

3. Pattabhi Sitharamayya - History of Indian National Congres Vol.I Second Ed. p.15

4. Jagadish Sharma - India's Struggle for Freedom Vol.I 1962 p.331

कांग्रेस के प्रारंभिक कार्यकलापों के संबन्ध में पं॰जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं 'वह तो केवल शिक्षित वर्ग का संगठन मात्र था जिसका कार्य ब्रिटीश शासन के प्रति राज भक्ति प्रकट करते हुए नौकरी केलिए माँगें करना तथा वैधानिक ढंग से सरकार की अनीति की आलोचना करने तक सीमित था[1] ।

प्रारंभ में सामाजिक सुधार को ही कांग्रेस ने अपना लक्ष्य बना लिया था । लेकिन धीरे धीरे उसके कार्यक्रमों में राजनीतिक बातों का महत्व बढ़ता गया[2] ।

देशी रियासतें

भारतेन्दु युग में देशी-रियासतों की शक्ति क्षीण होती रही[3] । अधिकांश नरेश अंग्रेज़ों के स्तुति पाठक थे[4] । नैतिक दृष्टि से भी उनका पूरा पतन हो चुका था । स्वेच्छाचार और भ्रष्टाचार बढ़ रहे थे । स्वाभाविक है, इन सबका बुरा प्रभाव साधारण जनता के जीवन पर पड़ा । आर्थिक दृष्टि से भी जनता संकट ग्रस्त थी । अंग्रेज़ों को आर्थिक सहायता देने केलिए, अपने विलासी जीवन की सामग्री जुटाने केलिए राजा लोग जनता का शोषण करते थे ।

---

1. पं॰ जवाहरलाल नेहरू - विश्व इतिहास की झलक - प्रथम भाग
   अनु॰ चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय - पृ॰439
2. Gazetteer of India - Vol.II - Ed.Dr.P.N.Chopra-1973 p.88
3. डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - द्वितीय सं॰पृ॰50
4. कमला कानोडिया - भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - प्रथम सं॰ पृ॰41
5. वही पृ॰38

इस प्रकार देश की राजनीतिक स्थिति पतनोन्मुख थी । अखंड राष्ट्र की चेतना का सर्वथा अभाव था । धर्म, जाति और प्रदेश संबन्धी भावनाओं के परे जनता का एक सामान्य सामाजिक अनुबोध [कॉमन सोशियल कॉन्शसनेस] अभी अभ्युदित नहीं हुआ था । हिन्दू तथा इस्लाम धर्म की सजीवता शताब्दियों के पहले ही मिट चुकी थी । दोनों में जो गतिरोध आ चुका था उसने जीवन के हर क्षेत्र को जड़ बना दिया था । राजनैतिक जड़ता के मूल में भी जहाँ तक भारत की बात है, यह धार्मिक जड़ता कारण रूप वर्तमान थी । ऐसी स्थिति में ब्रिटीश शासन को जनता तथा उनके अग्रगामी साहित्यकारों ने प्रभु के वरदान के रूप में ग्रहण किया[1] ।

सामाजिक परिस्थिति

भारतेन्दु युग की सामाजिक परिस्थितियों का समग्र और सांगोपांग विवेचन यहाँ अभिप्रेत नहीं है । पर समाज की उन प्रवृत्तियों का निरूपण हमारे लिए आवश्यक है जिनका प्रतिबिंब उस समय के साहित्य में उपलब्ध होता है । चूंकि नाटक जीवन का सबसे सशक्त दर्पण है, इसलिए हम उन परिस्थितियों का यहाँ पर विश्लेषण करेंगे जिनका समावेश अपूर्ण रूप से ही क्यों न हो, नाट्य कृतियों में हुआ है ।

जाति-पाँति की भावना

भारतीय सामाजिक जीवन का सबसे सशक्त नियामक तत्व जातिवाद रहा है । जाति-प्रथा हिन्दू धर्म का एक फौलादी ढाँचा है[2] । प्राचीन भारत में सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वर्ण-व्यवस्था का निर्धारण किया गया था । यही कालान्तर में अपरिवर्तनीय जातिवाद के रूप में परिणत हो जाता

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली - द्वितीय भाग - सं॰ब्रजरत्नदास - दूसरा सं॰पृ॰697
2. A.R. Desai - Social Background of Indian Nationalism.p.243

भारतेन्दु काल में भी स्थिति वही रही । जीवन का प्रत्येक चरण अत्याचार से नियन्त्रित था । समाज में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी ब्राह्मण था[1] । निम्नतम स्थान शूद्रों को दिया गया था । संक्षेप में, भारतेन्दु काल की वर्ण व्यवस्था समाज के विभिन्न स्तर के लोगों में एक दूसरे के प्रति घृणा और संकीर्णता उत्पन्न करने में ही सहायक सिद्ध हुई ।

अस्पृश्यता का भीषण रूप

भारतेन्दु युग में छुआछूत की भावना कठोर रूप धारण कर चुकी थी[2] । ब्राह्मण केलिए शेष जाति के लोग अस्पृश्य थे । शूद्रों का दर्शन तक पाप माना जाता था । यह अनाचार यहाँ तक बढ गया कि प्यास से मर जाने पर भी सवर्ण, अवर्ण का छुआ पानी नहीं पीता था । शिक्षा का अधिकार केवल उच्च वर्ग को प्राप्त था । देव मन्दिरों में वे ही प्रवेश पाते थे । नीच जातिवालों को गाँवों और शहरों के बाहर रहना पडता था । इस कुप्रथा ने पतितों को जिस स्थिति में पहुँचा दिया था वह अत्यंत गर्हणीय और मानव स्वाभिमान के विरुद्ध थी[3] ।

यह दशा किसी क्षेत्र विशेष की नहीं, संपूर्ण भारत की है । इसका कठोर प्रभाव पतित लोगों पर पडा । उनकेलिए जीवन अपमान और अवहेलना का प्रतीक था । यह बिलकुल स्वाभाविक ही था कि उनके दिल में अपने धर्म के प्रति अभिमान जैसा भाव भी नहीं रह गया । इस परिस्थिति का विधर्मियों ने खूब लाभ उठाया । इस्लाम का काफी प्रचार पहले ही हो चुका था । अब ईसाई धर्म की बारी थी । ईसाई धर्म प्रचारकों ने विशुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण तथा कार्यक्रमों से असंख्य अवर्ण हिन्दुओं को स्वधर्म छोडने में विवश बनाया ।

---

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पु.सं. पृ.39
2. डा.कमला कानोडिया - भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ.39
3. A.R. Desai - Social Background & Indian Nationalism p.264

संयुक्त - परिवार प्रथा

भारतेन्दु युगीन समाज में संयुक्त-परिवार प्रथा का प्रचलन था। परिवार के सभी सदस्य एक साथ रहते थे। संयुक्त परिवार प्रथा की मुख्यतः चार विशेषताएं मानी गई हैं[1]।

1. पिता के साथ पुत्र पौत्रादि का अपने परिवारों सहित इकट्ठा रहना।

2. एक निवास, पाक तथा संयुक्त रूप से धर्म कर्म का पालन।

3. संपत्ति का संयुक्त स्वामित्व और उपयोग का पालन।

4. परिवार के सदस्यों का मुखिया के अनुशासन में रहना।

संयुक्त परिवार प्रथा में दोष व गुण दोनों वर्तमान थे। गुण यह था कि पारिवारिक इकाई सभी स्थितियों में बनी रही। एक प्रकार का आत्मीय संबंध सभी सदस्यों को परस्पर संबद्ध करता रहा[2]। व्यक्तिगत अभिरुचियों का परिपालन संयुक्त परिवार में असंभव था, यही उसका प्रमुख दोष था।

दहेज प्रथा

भारतेन्दु युग में दहेज-प्रथा अत्यंत सशक्त थी। गरीब माता-पिता अपनी कन्याओं का ब्याह, दहेज देकर कराने में असमर्थ थे। फलस्वरूप अनेक

---

1. हरिदत्त वेदालंकार - हिन्दू परिवार मीमांसा - पृ.24
2. Hans Nagpal - The Study of Indian Society - p.78-79

निराश युवतियाँ मृत्यु की गोद को अपना शान्ति स्थान चुन लेती थीं[1]। कन्यावध के प्रचलन का कारण भी यही कुप्रथा है[2]। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, कुलीन प्रथा और बहु विवाह आदि भी दहेज-प्रथा के ही कुपरिणाम थे।

बाल विवाह

कभी कभी जन्म के पूर्व ही लड़कियों की सगाई निश्चित की जाती थी। परिणामतः कोमल आयु में ही लड़कियों को वयस्कों और वृद्धों के साथ परिणय सूत्र में आबद्ध होना पड़ता था[3]। मधुर अल्प वय में ही विधवा बन जाती थीं। बाल-विवाह प्रथा ने समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ा दी।

अनमेल विवाह

यह भी दहेज-प्रथा का दुष्परिणाम है। छोटी आयु की सुकोमल कन्याओं का विवाह आजीविका विहीन वृद्धों के साथ कराया जाता था। इसका भयंकर परिणाम था असन्तुष्ट दाम्पत्य जीवन।

---

1. डॉ॰ कृष्णबिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - सं॰ पृ॰133
2. मध्य तथा पश्चिमी भारत के राजपूतों, जाटों और मेवातों में कन्या का जन्म होते ही उसे अफीम आदि देकर या अन्य उपायों से मार दिया जाता था, ताकि कन्या के विवाह के समय दहेज आदि के कारण जो अपमान सहना पड़ता था तथा परेशान होना पड़ता था, उससे मुक्ति हो जाय।

   हरिदत्त वेदालंकार - भारत का सांस्कृतिक इतिहास - तीसरा सं॰ पृ॰57
3. कमला कानोडिया - भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ॰57

कुलीन-प्रथा और बहु-विवाह

जिस व्यवस्था के बल पर कुलीन व्यक्ति को अनेक स्त्रियों से ब्याह करने का अधिकार प्राप्त था उसे कुलीन प्रथा कहते है[1]। यह बंगाल के ब्राह्मणों में अधिक प्रचलित थी[2]। अधिक स्त्रियों से विवाह करने पर पुरुष को अधिक धन दहेज के रूप में प्राप्त होता था। इसके कारण समाज में स्त्रियों की इज्जत कम पड जाती थी। स्त्री-समाज पर पुरुषों का अत्याचार बढ जाता था। नारी की स्थिति इतनी निम्न बन गयी कि वह एक सामान्य वस्तु (कमोडिटी) समझी जाने लगी, जिसे कभी भी किसी को भी अधिक संख्या में प्राप्त किया जा सकता था[3]।

विधवाओं की हीन-दशा

विधवाओं के करुण क्रन्दन से तत्कालीन समाज संत्रस्त था। पुनर्विवाह करने का अधिकार भी विधवाओं को प्राप्त नहीं था। शुभ कार्यों में उनकी उपस्थिति अशकुन मानी जाती थी। उनका जीवन अनेक कठोर नियमों से जकडा था। वे दिन में एक बार ही भोजन कर सकती थीं। सेज पर उनकी निद्रा वर्जित थी। अच्छे कपडे पहनने का उन्हें अधिकार नहीं था

---

1. कमला कानोडिया - भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ.57
2. Tharachand - History of Freedom Movement in India Vol.II p.247
3. डा.कृष्णदेव उपाध्याय - हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास प्रथम संस्करण - पृ.239

एक प्रकार से सन्यास का जीवन उन्हें बिताना पड़ता था[1]। भारतेन्दुयुगीन विधवा की दशा तत्कालीन अस्पृश्य जाति की दशा से भी अधिक दयनीय थी। फलत: अनेक हिन्दु विधवाएँ ईसाई अथवा इस्लाम धर्म ग्रहण करके स्वतंत्र जीवन बिताने लगीं[2]।

सती प्रथा

प्राचीन भारत में सती नाम की कोई प्रथा सचमुच वर्तमान नहीं थी। पर मध्यकाल तक आते आते हिन्दु समाज में यह प्रथा बद्धमूल हो गई। इसके अनुसार विधवा को अपने पति की लाश के साथ अग्नि में कूदकर मरना अनिवार्य माना जाता था। स्वेच्छा से सती होनेवाली नारियाँ अवश्य थीं। पर ऐसी स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी जो पति के साथ जलकर मरने से डरती थीं। ऐसी नारी को जबरदस्ती से चिता में ढकेल दिया जाता था[3]।

"सती" सैद्धान्तिक दृष्टि से एक धार्मिक कर्तव्य कभी नहीं थी। पर उसका अनुष्ठान परम उत्कृष्ट आचारण अवश्य माना जाता था जिसका पुरस्कार आगामी जन्म में प्राप्त होता था[4]। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाल, राजपुताना और दक्षिणी भारत में "सती" विशेष रूप से प्रचलित थी। संयुक्त प्रान्त में भी यह व्याप्त थी। सन् 1829 में ब्रिटीश सरकार ने कानून पारित करके सती प्रथा पर प्रतिबंध लगाया। इसके बाद भी तीस वर्ष तक राजपुताने में सती जारी रही[5]।

1. V.D. Mahajan - India since 1526 - 7th Edn. p.600
2. कमला कानोडिया - भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ.57-58
3. भगवतशरण उपाध्याय - भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण-पृ.184-18
4. Dr.A.S.ALTEKAR-The position of women in Hindu civilization 3rd Edn.p.141
5. Rekha Misra - Women in Mughal India 1st Edn. p.128

पर्दे का प्रचलन

यह कहना गलत है कि मुसलमानों के आगमन के पहले भारत वर्ष में पर्दा-प्रथा नहीं थी । पर मुसलमानी शासन-काल से ही यह व्यापक बन गई । कुछ लोग तुर्कों के आक्रमण काल से इसका प्रादुर्भाव मानते हैं[1] । भारतेन्दु काल में यह तो थी ही । इसका प्रभाव नारी के कलेवर तक ही सीमित नहीं रहा, उसका मन भी चहार दीवारियों में बंद था । पर्दा प्रथा नारी के दिल और दिमाग का विकास रोकती ही रही ।

नारी की करुण दशा

भारतेन्दु युग में नारी का जीवन घर के सीमित वातावरण में आबद्ध था । सामाजिक जीवन से उसका कोई संबन्ध नहीं था । पारिवारिक वातावरण के बाहर केवल व्रत, त्योहार आदि धार्मिक अनुष्ठानों तक ही उसकी पहुँच थी । नारी पूर्ण रूप से परतंत्र थी । पिता की संपत्ति पर उसका कोई अधिकार न था । शिक्षा उसकेलिए आवश्यक नहीं मानी जाती थी । लोग यहाँ तक विश्वास करते थे कि पढ़ी लिखी लड़कियाँ जल्दी विधवा बन जायेंगी[2] ।

नारी अनेक बन्धनों से जकड़ी थीं । उसके व्यक्तित्व का विकास असंभव था । उसका आत्मबल और आत्मविश्वास लुप्त हो चुका था । समाज के अतिमात्र दमन के कारण यह भी आशंका थी कि मौका पाने पर नारी स्वेच्छाचारिणी बन जायगी । समाज जब भोग लालसा के पीछे पड़ता है तो स्त्री का उससे अलग रहना कैसे संभव है ?

---

1. Rekha Misra - Women in Mughal India - Ist Edn. p.135
2. The History and Culture of Indian People - Ed.R.C.Majumdar Vol.X pp.[illegible]

भारतेन्दु युग का समाज भोगपरता का समाज था । पुरुषों की भोग लिप्सा के कारण वेश्याओं की संख्या बहुत बढ गई थी । वेश्यावृत्ति निन्दनीय भी नहीं मानी जाती थी । समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति वेश्या संसर्ग केलिए उत्सुक रहते थे[1] ।

अंग्रेज़ी फैशन

आलोच्य काल में हमारे सामाजिक जीवन के दो स्तर लक्षित होते हैं । एक परम्परायुक्त है और दूसरा पाश्चात्य प्रभावापन्न । नवयुवक पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण में पागल थे । उनकी वेष भूषा, रहन-सहन, बोलचाल सबमें अंग्रेज़ियत का बाढ था[2] । अपने धर्म और संस्कृति के प्रति उनके मन में अवज्ञा थी । मांस भोजन और मदिरापान साधारण से कार्य हो गये[3] । कठोर सामाजिक नियमों का वे उल्लंघन करते थे[4] । नई पीढी के लोगों में इस प्रकार स्वधर्म और स्वभाषा के प्रति उपेक्षा वृत्ति बढने लगी ।

इसके ठीक विपरीत परंपरावादी सामाजिक प्रगति को रोकना चाहते थे । परम्परागत आचारों और मर्यादाओं का अक्षरशः परिपालन करना उनका सर्वोच्च लक्ष्य था[5] । देश तथा जनता के बीच नवजागृति के जो भी चिन्ह दिखाई देते थे, वे उनका विरोध करते थे । इन दोनों विरुद्ध शक्तियों के संघर्ष के कारण एक नवीन सामाजिक व्यवस्था केलिए आवश्यक भूमि स्वयं तैयार हो रही थी ।

---

1. शान्ति स्वरूप गुप्त - हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन - पृ.89
2. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture 5th Edn.p.518
3. कमला कानोडिया - भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ.64
4. B.N. Luniya - Evolution of Indian Culture p.518
5. Ibid

इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन सामाजिक स्थिति अत्यंत अस्त-व्यस्त और संकीर्ण थी । धर्म की दृष्टि से वह विषम तो था ही सामाजिक चेतना भी उसकी विनष्ट हो चुकी थी ।

आर्थिक परिस्थिति

भारतेन्दु युग में देश की आर्थिक परिस्थिति सर्वथा निराशाजनक थी । जनता, अकालों और महामारियों से संत्रस्त थी । कृषकों की हालत अत्यंत शोचनीय थी । पर धनी मानी व्यक्ति अपने धन का भोग विलासों में अपव्यय करते थे । उत्पादन में मन्दता थी और अपव्यय में वृद्धि ।

ब्रिटिश-सत्ता का आर्थिक शोषण

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक-नीति देश के लिए हितकारी नहीं थी । आर्थिक शोषण उनका एकमात्र लक्ष्य था ।

उनके आगमन के पूर्व देश में जो कारखाने और कामधंधे थे, सबको उन्होंने तहस नहस कर दिया ।[1] इंग्लैंड के कारखानों के लिए कच्चे मालों का निर्यात करना ही भारत का सबसे बड़ा उद्योग बन गया ।[2]

---

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पृ.39

2. K.A. Nilakantha Sastri - G.Srinivasachari - Life and Culture of the Indian people p.100

भारतीय धन अबाधित गति से इंग्लैंड की तरफ बहने लगा[1]। भारत सच्चे अर्थ में इंग्लैंड में उत्पादित वस्तुओं केलिए बाजार मात्र रह गया[2]। फलस्वरूप लाखों बुनकर और अन्य श्रमजीवी बेकारी और गरीबी से विवश बन गये[3]।

खेती की दशा

भारत कृषि-प्रधान देश है, इसका आर्थिक ढांचा कृषि पर आधारित है। पर ब्रिटीश सरकार ने कृषि के विकास केलिए आवश्यक कार्य नहीं किया। उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने पर लोगों का ध्यान कृषि की ओर बढ गया[4]। फिर भी कृषि विकास केलिए आवश्यक प्रबन्ध सरकार ने नहीं किया। कृषक, व्यापारिक फसलों पर अधिक ध्यान देते थे। फलस्वरूप खाद्य का उत्पादन बहुत कम पड गया।

भूमि-कर नीति

ब्रिटीश सरकार ने जो भूमि-कर लगा दिया वह इतना अधिक था कि उसे चुकाने में किसान असमर्थ थे[5]। विद्रोह के बाद किसानों केलिए जो बन्दोबस्त हुआ था उसमें अनेक बार लगान बहुत ऊंचा चढाकर आंका गया था[6]।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली-प्रथम भाग - सं.ब्रजरत्नदास - द्वि.सं. पृ.384
2. Romesh Dutt - The Economic History of India.Vol.II,1963 p.24 9
3. Jawaharlal Nehru - Discovery of India pp.315-316
4. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पृ.55
5. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.317
6. रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग - चतुर्थ सं. - पृ.3

कर चुकाने केलिए कृषकों को अपनी उपज बेचनी पड़ती थी । इनसे क्र· 50 प्रतिशत से लेकर 83 प्रतिशत तक भूमि कर लिया जाता रहा[1] । अव्यावहारिक रूप से भूमि कर अत्यधिक बढाने के कारण भारतेन्दु युग के किसान की आर्थिक दशा प्रतिदिन बिगड़ती गई ।

अकाल

इन सबके परिणामस्वरूप देश को अनेक बार भीषण अकालों का शिकार बनना पड़ा[2] । भुखमरी सर्वसाधारण बात हो गई । पर व्यापारी वर्ग जनता के दुष्काल से खूब लाभ उठाता रहा[3] ।

लोगों का जीवन संकट ग्रस्त था । आशा का लेश शेष नहीं था । किन्तु हमारी जनता सर्वसहा थी । अपनी परिस्थिति से संघर्ष करते हुए अपने को मुक्त करने का विचार तक उसमें नहीं पाया गया । वह एकदम भाग्यवादी बन गई थी । जो जनता अपनी मुक्ति केलिए संघर्ष नहीं करना चाहती उसका भविष्य क्या होगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

धार्मिक परिस्थिति

भारतेन्दु युग की धार्मिक परिस्थिति भी पतनोन्मुख थी । हिन्दू धर्म अपेक्षाकृत अधिक उदार था । पर उसकी संकीर्णता मिटी नहीं थी ।

1· डॉ·देवेश ठाकुर–आधुनिक हिन्दी साहित्य की मार्क्सवादी भूमिकाएं –1974 पृ·152

2· B.M. Bhatia - Famines in India - p.88

3· जवाहरलाल नेहरू - विश्व इतिहास की झलक - अनु·चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय - पृ·595

धर्म के वास्तविक अर्थ से लोग अनभिज्ञ थे । अन्धविश्वासों और अनाचारों से सारी जातियाँ ग्रस्त थीं ।[1] हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था ।[2] बीच बीच में साम्प्रदायिक संघर्ष होते थे । इससे धार्मिक वातावरण बहुत ही कलुषित रहता था ।

हिन्दू - मुस्लिम संघर्ष

आलोच्यकाल के पहले ही हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य जोर पकड़ चुका था ।[3] सन् 1885 और 1893 के बीच हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष ने भीषण रूप धारण कर लिया । लाहौर, दिल्ली, होशियारपुर, लुधियाना, अम्बाला, बंबई शहर, पंजाब जैसे स्थानों में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों का नग्न ताण्डव हुआ ।[4] सामाजिक जीवन इससे अशान्तिपूर्ण था ।

धर्म की स्थिति

हिन्दू धर्म गतिहीन और जड़प्राय हो चुका था । अतएव समाज भी । तीर्थ-यात्रा, दान-पुण्य जैसे बाह्याचार ही धर्म के प्रधान अंग माने जाते थे । बहुदेवोपासना और मूर्ति पूजा अधिकाधिक बल पकड़ती जा रही थी ।[5] कर्मकाण्ड विकृत बन रहा था । गायों और पितरों की पूजा की जाती थी

---

1. History and culture of Indian people - Ed.R.C.Majumdar Vol.X p.387
2. डा॰कमला कानोडिया-भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - प्रथम सं॰ पृ॰3
3. History and culture of Indian People.Vol.X Ed.R.C.Majumdar p.326
4. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पृ॰61
5. डॉ॰कमला कानोडिया-भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ॰49

प्राण शक्ति विहीन परम्पराओं से तंग आकर साधारण हिन्दू लोग ईसाई धर्म की शरण में जाने लगे थे।[1]

पुरोहित वर्ग का अत्याचार

ब्राह्मण पुरोहित, समाज का नेतृत्व करते थे। सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक विषयों पर उनका नियंत्रण था। ये पुरोहित व्यभिचार व ढोंग के प्रतीक बन चुके थे।[2] वेद और धर्म - शास्त्र के वे पूर्णतः अनभिज्ञ थे। पर भोली-भाली जनता पर उन्हीं का पूर्ण अधिकार था। महिलाएं सन्तानाभिलाषा और धन-प्राप्ति केलिए मंत्र-तंत्र, झाड़-फूंक आदि का सहारा लेती थीं। वे इन पाखंडियों और साधुओं के शिकंजे में पड़कर अपना धन, मान, इज्जत सब कुछ खो बैठती थीं।[3] ग्र ग्रह

सच पूछा जाय तो धर्म की ग्रंथि जन-मानस पर आज भी कितनी जटिल है, समाजशास्त्र के विद्यार्थियों को यह अविदित नहीं है।

उपर्युक्त परिस्थितियों में ही भारतेन्दु ने अपनी नाट्य रचनाओं के माध्यम से देश में नव जागृति भर देने की कोशिश की। नाटक ही साहित्य विधाओं में सर्वाधिक समाजस्पर्शी है। उसमें ही समाज की गतिविधियाँ और आशा अभिलाषाओं का सूक्ष्म तथा व्यापक रूप निखर उठता है।

---

1. डा॰देवेश ठाकुर - आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएं - पृ॰155
2. कमला कानोडिया - भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ॰51
3. वही पृ॰52

भारतेन्दु का समय केवल नाटक की दृष्टि से ही नहीं उपन्यास, कविता, निबंध, आलोचना आदि अन्य साहित्यिक विधाओं की दृष्टि से भी संक्रान्ति का युग है । इस युग का जो साहित्य उपलब्ध है, कविता, नाटक इत्यादि अन्तर के बिना सबमें जन जीवन का चित्र स्पष्ट अंकित पाया जाता है । इसी युग ने हिन्दी के महान नाटककारों के अभ्युत्थान केलिए वेदिका तैयार की । इस नवजागरण के अग्रदूत के रूप में ही भारतेन्दु साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए थे । केवल भारतेन्दु ही नहीं उनके समवर्ती नाटककारों की कृतियाँ भी सामाजिक चेतना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठापक हैं । इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी । इन्होंने साहित्य की नाना विधाओं में अपनी सृजन शक्ति लगायी है । प्रायः सबमें इनको समान सफलता प्राप्त हुई । पर इनकी प्रतिभा का सबसे प्रकृष्ट स्वरूप नाट्य रचनाओं में ही लक्षित होता है । नाटक भारतेन्दु केलिए केवल रसोद्बोध की वस्तु नहीं थे । नाट्य से रस का परिपाक हो, यह अवश्य काम्य है । पर रसानुभूति प्रमुखतया व्यक्तिनिष्ठ होती है । भारतेन्दु अपनी रचनाओं में सामाजिक पक्ष पर अधिक ध्यान देनेवाले थे । इसलिए विशेषकर उनकी नाट्यकृतियाँ सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही पूर्णतया ग्राह्य हो जाती हैं ।

1• पं• रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ•441

भारतेन्दु युग स्रष्टा कलाकार थे । उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीर्ण-शीर्ण जन जीवन के पुन: संस्कार के लिए नाटक को प्रमुख साधन बना लिया । वे भावी नाटककारों के लिए प्रेरणास्रोत बने ।

भारतेन्दु, नाटककार के अतिरिक्त उच्चकोटि के अभिनेता भी थे । उन्होंने ही हिन्दी नाटक को सर्वप्रथम यथार्थवाद से मंडित कर दिया । उनकी प्रतिभा मौलिक थी, ग्रहणशील थी । अपने अपेक्षाकृत अल्पकालिक जीवन में उन्होंने बहुत अधिक अध्ययन किया, साहित्य की नई गतिविधियों का परिचय पाया । जो कुछ ग्राह्य पाया, उसे ले लिया । केवल पश्चिमी साहित्य की नई दिशाओं से ही नहीं, बंगला जैसी भारतीय भाषाओं से भी उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की । उपार्जित अनुभूतियों की उन्होंने समाज के हित के लिए अभिव्यक्ति की । अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर भारतेन्दु ने जीवन का जो यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया, वह अन्यत्र दुर्लभ है । सामाजिक उन्नति को अवरुद्ध करनेवाली रूढ़ियों से वे निरन्तर संघर्ष करते रहे ।

<u>नाटक युग</u>

भारतेन्दु स्वयं नाटक लिखते तो थे, पर अपने मित्रों से नाटक लिखवाते भी थे । इस प्रकार उन्होंने अपने युग को नाटक युग ही बना लिया[2] । जीवन के हर क्षेत्र से उन्होंने सामग्री ग्रहण की । देश की दुर्दशा पर वे विक्षुब्ध और खिन्न थे । वे जानते थे कि दुरवस्था का कारण पराधीनता है । देश के प्रति अपने कर्त्तव्य के संबन्ध में वे जागरूक थे । इसलिए ऐसे नाटकों की रचना उन्होंने आवश्यक मानी जिनमें देश की विपन्नता का चित्रण हो ।

---

1. डा॰लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतीय नाट्य साहित्य - डा॰नगेन्द्र द्वारा संपादित - पृ॰293

2. चिरंजीत - आजकल, फरवरी 1964 - सं॰बनारसीदास चतुर्वेदी, नगेन्द्र मोहन राकेश - पृ॰22

भारतेन्दु ने देश की प्राचीन नाट्य प्रणाली का कुछ अंशों में अनुकरण किया है। पर वे अन्धे अनुकरण को पसन्द नहीं करते थे। नाट्य कला की प्राचीन शैलियों के संबन्ध में उनका ज्ञान पूर्ण था। नवीनता को ग्रहण करने में कभी हिचकते नहीं थे। यही कारण है कि उनके नाटकों में प्राचीनता तथा नवीनता का समुचित समन्वय पाया जाता है।[1]

भारतेन्दु की नाट्य कृतियाँ

भारतेन्दु के नाटकों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।
(1) मौलिक कृतियाँ (2) अनुदित कृतियाँ

(1) मौलिक कृतियाँ -

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति,
प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमौषधम्,
चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी,
अन्धेर नगरी, सती प्रताप।[2]

(2) अनुदित कृतियाँ -

विद्या सुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, धनंजय विजय,
सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी, कर्पूर मंजरी,
मुद्रा राक्षस।[3]

---

1. पं० रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० 441
2. वही पृ० 439
3. वही पृ० 439

मौलिक नाटकों में सामाजिकता

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति [1873]

यह एक प्रहसन है । इसमें भारतेन्दु ने मुख्यत: मांस-मदिरा सेवन, पशु बलि, नरेशों का कुशासन आदि अनेक अनाचारों पर कुठाराघात किया है ।

लेखक की तीक्ष्ण दृष्टि विशेषकर हिन्दु पुरोहितों[1] पर पड़ी है । उन दिनों पुरोहित मांस खाते थे, मदिरा पीते थे । वे वैदिक सूक्तों का उद्धरण देकर इसका समर्थन करते थे । उनकी धार्मिकता बाह्याचार निष्ठ थी । वे माथे पर तिलक लगाते थे, रामनाम की ओढ़नी ओढ़ते थे, भगवान की पूजा करते थे । पर वे सचमुच वासना के पुतले थे[2] । उनकी दृष्टि भक्तों की दक्षिणा पर टिकी रहती थी । ऐसे पुरोहितों की घोर निन्दा इस प्रहसन में की गई है ।

राजा, मंत्री जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी विलासमय जीवन बिताते थे[3] । मदिरापान को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त थी[4] । पशु बलि का भी प्रचलन था । विधवाओं का पुनर्विवाह निषिद्ध था ।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - दूसरा भाग-सं.ब्रजरत्नदास-दूसरा सं.पृ.106
2. वही पृ.117
3. वही पृ.107
4. वही पृ.110

भारतेन्दु ने इन अनाचारों के विरुद्ध आवाज़ उठायी । प्रस्तुत प्रहसन में एक बंगाली पात्र के द्वारा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन कराया गया है।[1] ।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी पढ़े हिन्दुओं, मिथ्यावादियों, पाखंडी समाज सुधारकों और शाक्तों पर भी नाटककार की व्यंग्य भरी दृष्टि पड़ी है ।

2. <u>प्रेम जोगिनी</u> (1875)

यह अपूर्ण रचना है, पर है विशेष महत्वपूर्ण । तत्कालीन काशी के सामाजिक जीवन का सजीव चित्र इसमें पाया जाता है ।

इसके अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि काशी, प्रयाग जैसे तीर्थ स्थानों के पंडे पुरोहितों के दुर्व्यवहारों के कारण भारतेन्दु का हृदय कितना विक्षुब्ध था । ये पुरोहित केवल अत्याचारी ही नहीं, भ्रष्टाचारी भी है । इस में दिखाया गया है कि अपने पिता के साथ काशी विश्वनाथ के दर्शनार्थ आनेवाली एक बाल-विधवा पण्डों की कामुकता का शिकार बनती है और एक साहसी युवक द्वारा उसका उद्धार किया जाता है । यही विधवा अन्त में योगिनी बन जाती है ।

---

1. पुनर्विवाह अवश्य करना । सब शास्त्र की यही आज्ञा है और पुनर्विवाह न होने से बड़ा नुकसान होता है, धर्म का नाश होता है, ललनागण पुंश्चली हो जाती है, जो विचार कर देखिए तो विधवागण का विवाह कर देना उनको नरक से निकाल लेना है ।
दे. भारतेन्दु नाटकावली - दूसरा भाग - पृ.९३

नाटककार इसमें धर्माचार्यों की भोग लोलुपता का खुलकर विरोध करते हैं। गोसाइयों के कुत्सित कार्य व्यापारों और दुराचारों की पोल खोली गई है[1]। इस संबन्ध में काशी विश्वनाथ का उपालंभ करने में भी भारतेन्दु हिचके नहीं[2]।

भारतेन्दु की दृष्टि अपने युग के कलाकारों की शोचनीय दशा पर भी पड़ी थी। नये ओहदों पर विराजनेवाले अफसर कितने गर्वीले और घमंडी होते हैं, यह भी उन्होंने दिखाया है।

3. <u>विषस्य विषमौषधम्</u> [1876]

यह एक भाण है। बड़ौदा के राजा मल्हारराव गायकवाड़ को अपने कुत्सित व्यवहारों के कारण राजसिंहासन का त्याग करना पड़ा। भाण का आधार यही घटना है।

देशी राज्यों का कुप्रबन्ध, नरेशों का चारित्रिक पतन, अंग्रेज़ सरकार की स्वार्थपरता, जनता की निस्सहायता आदि इस रचना के प्रतिपाद्य विषय हैं।

भारत की संपत्ति लूटने में अंग्रेज़ सदैव तत्पर रहते थे। जन-जीवन के साथ उनका कोई संबन्ध नहीं था[3]। सैनिक शक्ति बढ़ाना और साम्राज्य को सुरक्षित रखना ही उनका ध्येय था।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - सं. ब्रजरत्नदास - प्र. भाग-द्वि.सं. पृ. 121-122
2. वही 126
3. वही द्वितीय भाग पृ. 184

केवल विदेशी शासकों के खिलाफ ही नहीं नरेशों की विलासिता के खिलाफ भी भारतेन्दु आवाज़ उठाते हैं। वे लिखते हैं "राजा और देव बराबर होते हैं, ये जो करें देखते रहो बोलने की तो जगह ही नहीं"[1]। नाटककार इस बात पर असन्तुष्ट है कि भारतीय नरेश, अंग्रेज़ों के कठपुतले हैं[2]। इस नाटक में स्थापित यही होता है कि दुराचारी शासक को सिंहासन से उतारकर अंग्रेज़ों ने भारत का उपकार ही किया। मल्हारराव विष है और विष के लिए विष (अंग्रेज़) ही औषधि है। इसमें लेखक ने कुशासन की निन्दा और सुशासन का अभिनंदन किया है।

4. चन्द्रावली (1876)

कृष्ण और चन्द्रावली आत्म और परमात्मा के प्रतीक के रूप में इस नाटिका में चित्रित है।

अन्य नाट्यकृतियों की अपेक्षा चन्द्रावली में सामाजिकता का चित्रण कम है। फिर भी तत्कालीन धार्मिक अवस्था इसमें व्यंजित होती है। व्यक्तिगत धार्मिक विचारों का दर्शन कराते हुए सच्चे प्रेम में आत्म समर्पण की भावना को अनिवार्य बताना नाटककार का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है[3]।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - द्वि. भाग. सं. ब्रजरत्नदास - पृ. 185
2. वही
3. डॉ. अरविन्द कुमार देसाई - भारतेन्दु और नर्मद - एक तुलनात्मक अध्ययन - प्रथम सं. पृ. 242

भारतेन्दु वल्लभ - सम्प्रदाय में दीक्षित थे[1]। अतः उनकी सामाजिक दृष्टि मूलतः पुष्टिमार्ग से अनुप्राणित है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के सिद्धान्तों का इसमें प्रतिपादन है। भगवान की मधुरोपासना का प्रामुख्य है। मधुरोपासक, सिद्धान्त - प्रतिपादन के झमेले में पड़ना नहीं चाहता। वह उसके लिए निष्प्रयोगी है। भारतेन्दु इस नाटक में यही दृष्टि अपनाते हैं[2]।

5. <u>भारत दुर्दशा</u> (1880)

यह भी भारतेन्दु की श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। इस प्रतीकात्मक रूपक के शीर्षक से ही इसका प्रतिपाद्य व्यक्त होता है। दुर्दशा, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त है। देश राजनैतिक दृष्टि से गुलाम, आर्थिक दृष्टि से परमुखापेक्षी और सामाजिक दृष्टि से शतछिद्रित बना था। भारतेन्दु इस स्थिति से मुँह नहीं मोड़ सकते थे[3]। देश के उद्धार में उन्होंने अपना जीवन-साफल्य पाया।

ब्रिटिश शासन के अभिशापों से भारतेन्दु अनभिज्ञ न थे। भारत की संपत्ति विलायत जाती थी। भारतीय जनता गरीबी में डूबी रहती थी। इस स्थिति पर भारतेन्दु का हृदय व्याकुल हो उठता है[4]।

---

1. भारतेन्दुनाटकावली - प्र॰भाग - दूसरा सं॰ सं॰ब्रजरत्नदास - पृ॰416
2. ब्रजरत्नदास - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - तृ॰सं॰ पृ॰95
3. रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
   हा हा भारत दुर्दशा देखि न जाई॥ दे॰भारतेन्दु नाटकावली-प्र॰भा॰पृ॰383
4. अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।
   ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी। दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा!
   सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई। हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।
   दे॰ भारतेन्दु नाटकावली - प्र॰भा॰ सं॰ब्रजरत्नदास - पृ॰384

देश की दुरवस्था पर लेखक के शोक और क्षोभ का विस्फोट इसमें पूर्णतया अनुभवगम्य होता है ।

समाज अन्धविश्वासग्रस्त और आलस्यमग्न था । उसकी गतिशीलता मिट गई थी । विशेष रूप से विवश थीं विधवाएँ । बाल-विवाह का जोरों पर प्रचलन था । समुद्र-यात्रा वर्जित थी । धर्म अर्थहीन आचारों तक सीमित था । यह स्थिति देश के सच्चे हितैषी को व्यथित बनाने में पर्याप्त थी । वही दुःख, वही नैराश्य "भारत दुर्दशा" में मुखरित हुआ है[1] ।

भारतेन्दु की सामाजिक चेतना, इसमें अपने पूर्ण प्रकर्ष पर पहुँची हुई दिखाई देती है । स्थिति में परिवर्तन लाने में संभवतः वे अपने को असमर्थ पाते थे । भारत नायक अथवा पात्र को अतएव उन्होंने आत्महत्या केलिए विवश किया ।

"भारत दुर्दशा" में देशी नरेशों के विलासमय जीवन का भी चित्रण मिलता है[2] । एक ऐसा समय था जब कि यहाँ के नरेश देश की जनता तथा संस्कृति की रक्षा में रुचि रखते थे । लेकिन अब स्थिति बदल गई है । शासक देश हित की चिन्ता करते ही नहीं । भोगमय जीवन बिताना ही उनका जीवन - लक्ष्य हो गया है । इस दुस्थिति का भारतेन्दु ने इसलिए अपने नाटक में प्रतिपादन किया कि वे चाहते थे कि देश का उद्धार हो ।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - प्र.ना.सं.ब्रजरत्नदास - पृ.390-391
2. भारतेन्दु नाटकावली - प्र.ना.सं.ब्रजरत्नदास - पृ.402-402

6. <u>नीलदेवी</u> (1881)

यह ऐतिहासिक रूपक पाश्चात्य नाट्य शैली में रचा गया है। इसमें पंजाब के एक हिन्दू राजा पर मुसलमानों की चढ़ाई का चित्रण है।[1] इसमें विदेशी शासन से विद्वेष प्रकट किया गया है और देश प्रेम की महत्ता गाई गई है। सती - प्रथा का विरोध किया गया है, सतीत्व और स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया है।

इस रूपक के अवलोकन से यह विदित होता है कि भारतेन्दु अपने समय के बहुत आगे थे। सामाजिक दृष्टि से वे क्रान्तिकारी नहीं कहे जा सकते। पर क्रान्तदर्शी अवश्य थे। समाज का उद्धार कैसे हो इसके संबन्ध में उनकी दृष्टि साफ थी। उनका विश्वास था कि नारी समाज का उद्धार जब तक नहीं होगा तब तक समाजोद्धार का स्वप्न, स्वप्न ही रहेगा। इसी कारण से उन्होंने नारी जागरण का सर्वत्र समर्थन किया।[2]

नवजागृति के पक्षधर होते हुए भी भारतेन्दु ने प्राचीन मूल्यों का परित्याग नहीं किया। उनकी दृष्टि में नारी की महत्ता उसके सतीत्व पर अधिष्ठित है। इस नाटक की वीरांगना नीलदेवी अपने पतिदेव के हत्यारों को मारकर पति की चिता में कूद पड़ती है।[3] वीररमणी के आत्मत्याग का रोमांचकारी दृश्य दिखाते हुए भारतेन्दु ने प्राचीन भारतीय गौरव का भी समर्थन किया है।

---

1. पं.रामचन्द्रशुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.440
2. भारतेन्दु नाटकावली - प्र.भा.-सं.ब्रजरत्नदास - पृ.421
3. वही पृ.454

सामाजिक चेतना के अतिरिक्त राजनैतिक चेतना भी भारतेन्दु में कूट-कूट कर भरी थी । प्रस्तुत रूपक के आठवें दृश्य में पागल के मुँह से ये उद्गार निकलते हैं - "मार मार मार । हमारा देश .... हम मंत्री और हम प्रजा । .... । हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़ पत्ता कपड़ा लत्ता छाता जूता सब हमारा । ले चला ले चला । मार मार मार .... जाय न जाय जा[1] ।

प्रत्येक समझदार पाठक को यह अविदित नहीं कि यह पागल की अन्तर्गत उक्ति नहीं है । इसमें स्वदेश की हीन दीन दशा के संबन्ध में मार्मिक विक्षोभ ही प्रकट किया गया है ।

नीलदेवी को आदर्श भारतीय महिला के रूप में चित्रित करते हुए लेखक ने मृतप्राय, व्यक्तित्वहीन नारी समाज को जागृत करने का प्रयत्न किया है

7. <u>अन्धेर नगरी</u> । 1881 ।

यह एक प्रहसन है । इसमें भी देश की दयनीय स्थिति का प्रतिपादन है इसके समस्त कार्यकलापों का केन्द्र अव्यवस्थित अंग्रेज़ी शासन है । परोक्ष रूप से अंग्रेज़ी-शासन पर चोट करते हुए भारतेन्दु ने इसमें प्रत्यक्ष रूप से एक राजा पर करारा व्यंग्य किया है । यह राजा अत्याचारी देशी - नरेशों का प्रतिनिधि है

---

1. भारतेन्दु नाटकावली - प्रथम भाग - सं० ब्रजरत्नदास - पृ०439-440

ब्रिटीश राज में जनता को असीम संकट सहने पड़ते थे । समय समय पर प्रस्तुत तथाकथित शासन सुधार भी जनता को कष्ट देनेवाले सिद्ध हुए । रिश्वत के बिना न्यूनतम कार्य भी सिद्ध नहीं होता था । भारतेन्दु ने रिश्वत की घोर निन्दा की है । वे कहते हैं, पैसा ही परमेश्वर बन गया था । पैसे के लिए लोग सभी अन्यायपूर्ण कार्य करते थे । इस कारण समाज धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अधःपतित हो चुका था । ऐसी परिस्थितियों की कटु आलोचना भारतेन्दु ने अपने इस नाटक में की है[1] ।

"अंधेर नगरी" में अंग्रेज़ों की अन्यायपूर्ण शासन व्यवस्था और कर्मचारियों के भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश किया गया है[2] ।

अन्धेर नगरी की अवस्था का निरूपण भी इसमें प्राप्त होता है[3] ।

8. <u>सती प्रताप</u> (1883)

यह भी अपूर्ण रचना है । इसके केवल चार ही दृश्य लिखे गए थे । बाद में बाबू राधाकृष्ण दास ने इसे पूरा किया था[4] । स्त्री समाज में नवीन जागरण और स्फूर्ति की नूतन ज्योति जगाने की आवश्यकता पर इसमें बल दिया जाता है ।

---

1. भारतेन्दु नाटकावली-प्रथम भाग-सं.ब्रजरत्नदास - पृ.463-464
2. वही पृ.463
3. वही पृ.473
4. वही पृ. 91

सामाजिक चेतना : अनूदित नाटकों में

भारतेन्दु ने अन्य भाषाओं से अनेक नाटकों का अनुवाद किया । कला और सामाजिक चेतना की दृष्टि से वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं । संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी से उन्होंने श्रेष्ठ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया । इनमें उल्लेखनीय है "विद्या सुन्दर", "पाखंड विडम्बन", विजय, सत्य हरिश्चन्द्र, कर्पूर मंजरी, भारत जननी, और "मुद्राराक्षस" । इनमें भी प्रायः वे ही बातें पायी जाती हैं जो भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में प्राप्त हैं ।

1. विद्या सुन्दर [1868]

यह सुन्दर कृत "विद्या सुन्दर" और "चौरपंचाशिका" संस्कृत काव्य पर आधारित है । इसमें तत्कालीन वैवाहिक मान्यताओं का विरोध तथा गान्धर्व-विवाह का समर्थन है[1] । भारतेन्दु स्वच्छन्द प्रेम के समर्थक हैं । वे यह मानने को तैयार नहीं कि उच्च कुल में जन्म लेना मान्यता का चिन्ह है[2] । अन्य कुछ रचनाओं की भांति "विद्या सुन्दर" में भी कुल - विरक्त आदि का विरोध है[3] ।

---

1. सखी सब बातें हो चुकी हैं, अब गान्धर्व विवाह की कुछ रीतें क्यों क्यों जाती है ? .... अब तुम दोनों माला का बदला - बदला करो जिसे देखकर हम सुखी हों ।
   दे. भारतेन्दु नाटकावली - द्वितीय भाग-सं.ब्रजरत्नदास-पृ.25
2. वही पृ. 3
3. भारतेन्दु नाटकावली - दूसरा भाग - सं. ब्रजरत्नदास - पृ.5

डॉ॰ दशरथ ओझा का कथन है कि विवाह संबन्धी सामाजिक प्रश्न को कथानक बनाकर सुसंगठित रूप में लिखा हुआ हिन्दी का प्रथम नाटक है[1]।

2॰ पाखण्ड विडम्बन [1872]

कृष्ण मिश्र रचित संस्कृत के "प्रबोध चन्द्रोदय" के तृतीय अंक का अनुवाद है यह रूपक। विभिन्न धार्मिक पाखंडों का खंडन और कृष्ण भक्ति का प्रतिपादन इस रचना का मुख्य उद्देश्य है। यह स्मरणीय है कि भारतेन्दु स्वयं वैष्णव धर्म के अनुयायी थे।

उन्नीसवीं सदी का धार्मिक क्षेत्र संप्रदायग्रस्त और जटिल था। वासना और विलासिता का उसमें बोलबाला था। धर्म का सूत्र पाखंडियों के हाथ में था।

पाखंड विडम्बन में भारतेन्दु ने अन्य धर्मों की अपेक्षा वैष्णव धर्म की उच्चता स्थापित की है। फिर भी अन्य धर्मों की महत्ता वे मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं[2]।

1॰ डॉ॰ दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - तृतीय सं॰ - पृ॰155

2॰ भारतेन्दुनाटकावली - दूसरा भाग सं॰ब्रजरत्नदास - पृ॰65

3• <u>धनंजय विजय</u> [1873]

यह व्यायोग संस्कृत के कांचन कवि के "धनंजय विजय" का अनुवाद है। कथानक का आधार महाभारत है। फिर भी इसे भारतेन्दु ने सामयिक चित्रों से सजाया है।

भारतेन्दु युग में साधारण जनता शिक्षा-प्राप्ति के अधिकार से वंचित थी। राज-कर के भार से वह संत्रस्त थी। शिक्षा प्राप्ति और राजकर से मुक्ति - ये दोनों उस युग की मांगें थीं। "धनंजय विजय" में दोनों मांगें प्रस्तुत की गई हैं।

4• <u>सत्य हरिश्चन्द्र</u> [1874]

"सत्य हरिश्चन्द्र" क्षेमा से अनूदित है। देशोद्धार की कामना इसकी भी उत्प्रेरक शक्ति है।

समसामयिक समाज प्राचीन गौरव से वंचित था। सत्य प्रियता, दानशीलता आदि का स्थान असत्य और कर्तव्यहीनता ने ले लिया था। इस दुरवस्था से जनता का उद्धार करने के उद्देश्य से भारतेन्दु ने सत्य हरिश्चन्द्र के चरित्र का पुनः आख्यान किया है।[1]

1• डॉ॰ बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक - प्रथम सं॰ पृ॰25

इस नाटक में आदर्श राज-धर्म का प्रतिपादन है। अंग्रेज़ों की गुलामगी करनेवालों की इसमें अवहेलना की गई है। उपाधिदान से देशी राजाओं और सामन्तों को अपने अधीन रखने की अंग्रेज़ी नीति की आलोचना इसमें पायी जाती है।

नाटककार का संदेश है कि कर्तव्य पालन में राजा को सर्वस्व परित्याग करना चाहिए। हरिश्चन्द्र से यही शिक्षा प्राप्त होती है।

5· <u>कर्पूर मंजरी</u> [1876]

यह राजशेखर रचित प्राकृत नाटक "कर्पूर मंजरी" का अनुवाद है। इसमें राजदरबार का सुन्दर और व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित होता है। साथ ही सिद्धों और तान्त्रिकों के कुप्रभाव का भी अंकन है।

6· <u>भारत जननी</u> [1877]

यह नाट्यगीत, बंगला के "भारत माता" का अनूदित रूप है।

1· शोच की बात है कि जो बड़े बड़े लोग है और जिनसे किए कुछ हो सकता है .... उनको गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी शेखाबी दिखाकर या लम्बा - चौड़ा गाल बजाना आता है।

दे· भारतेन्दु नाटकावली - दूसरा भाग - सं·ब्रजरत्नदास - पृ·35-36

इसमें भारतमाता और उसकी संतानों की करुण दशा का चित्रण है। सुप्त भारतवासियों को जगाने का प्रयत्न भी इसमें दृष्टव्य है। देश की विपन्नता से निकुब्ध लेखक कहता है कि दुर्दशा से भारत भूमि को बचाने केलिए एक दिन का प्रयत्न भी काम्य है।

इसमें भी अँग्रेज़ों का अत्याचार और भारतीयों की दुर्दशा का अंकन है।[1]

भारतेन्दु-युग में सरकार के स्तुति-पाठकों की उत्पत्ति निश्चित थी। यही कारण है कि साहित्य में अँग्रेज़ों की प्रशंसा अनिवार्य रूप से पायी जाती है। भारतेन्दु पर भी युग का प्रभाव लक्षित होता है। इस नाटक में लेखक अँग्रेज़ों की दयालुता, न्यायशीलता, प्रजावत्सलता आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।[2]

धार्मिक तथा सामाजिक अनाचारों की आलोचना इसमें भी पायी जाती है।

7. <u>मुद्रा राक्षस</u> [1878]

यह संस्कृत के "मुद्राराक्षस" [ले.विशाखदत्त] का अनुवाद है। कथानक राजनीतिक षड्यंत्र से संबद्ध है। धर्म, अधर्म की जो व्याख्या राजनीति से है। इस की जाती है, उसका भी संबन्ध राजनीति से है।

---

1. हमारा धन, आभूषण, वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार कर ले गए अब हम निराधार हो रहे हैं, तेल भी नहीं मिलता कि केशों में लगावें।
दे. भारतेन्दु नाटकावली - दूसरा भाग - सं.ब्रजरत्नदास-पृ.209

2. वही पृ.212-213

समसामयिक नाटककार

जैसा कि ऊपर सूचित किया गया, भारतेन्दु युग-प्रवर्तक कलाकार थे। लेखकों की एक मण्डली का भी वे नेतृत्व करते थे। उनसे प्रेरणा पाकर साहित्य सृजन करनेवालों की संख्या नगण्य नहीं है।

भारतेन्दु मण्डली के प्रमुख नाटककार ये हैं - अंबिकादत्त "व्यास", बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन", प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, खड्गबहादुर मल्ल, गोपालराम गहमरी, काशी नाथ खत्री, पं.देवकी नन्दन त्रिपाठी और राधाचरण गोस्वामी[1]।

मंडली-नाट्य कृतियों में सामाजिक चेतना

भारतेन्दु मंडली की प्रमुख नाट्यकृतियों की सामाजिक चेतना का यहाँ संक्षेप में निरूपण किया जाएगा।

अंबिकादत्त व्यास की रचनाएं हैं - "भारत सौभाग्य" "गो संकट" "कलियुग और घी" आदि।

गो संकट (1882) नाटक में गोरक्षा का समर्थन है। इसकी स्थापना है कि हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक वैमनस्य का परिहार, गोवध निषेध से ही संभव है। "भारत सौभाग्य" (1887) महारानी विक्टोरिया की रजत जयंती के अवसर पर रचा गया है। इसमें साबित किया जाता है कि

---

1. पं.रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.441

मुसलमानी-शासन की अपेक्षा अंग्रेज़ी शासन ही भारतीय जनता के लिए मंगलकारी है। कलियुग और घी" में भारतेन्दुकालीन परिपाटी का अनुगमन करते हुए पंडे पुजारियों और धर्मिक वर्गों के अत्याचारों की आलोचना की गई है।

बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन" ने "भारत सौभाग्य", वृद्ध विवाह नाटक" और "वारांगना रहस्य महा नाटक" का प्रणयन किया।

"भारत सौभाग्य" {1889} में सन् 1850 से लेकर 1885 तक की भारत की राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण है। इसमें भी अंग्रेज़ी शासन प्रणाली का समर्थन है। अनमेल विवाह और वेश्यागमन के दुष्परिणाम को क्रमशः "वृद्ध विवाह" और "वारांगना रहस्य महा नाटक" में दिखाया गया है।

प्रताप नारायण मिश्र की रचनाओं में "भारत दुर्दशा" रूपक, "गो संकट" कलि प्रवेश", कलि कौतुक रूपक, जुआरी खुआरी आदि प्रमुख हैं।

"भारत दुर्दशा" रूपक में भारत की दुर्दशा का प्रमुख कारण जनता का आलस्य ही ठहराया गया है। "गो संकट" {1886} में गायों की रक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है। कलि प्रवेश में नारी की हीन-दशा पर खेद प्रकट किया गया है। अंग्रेज़ी फैशन पर व्यंग्य करना, वेश्यागमन की निन्दा, धर्माधिकारियों के पाखंडों का पर्दाफाश आदि "कलिकौतुक {1886} का लक्ष्य है। जुआरी खुआरी में द्यूत क्रीडा का कुपरिणाम चित्रित है।

राधाकृष्णदास की 'दु:खिनी बाला' [1880] का प्रमेय चिरपरिचित है। इसमें अनमेल विवाह का विरोध है और विधवा-विवाह का समर्थन। रूढ़िवाद और अन्धविश्वास का विरोध भी इसमें स्थान पाता है। नाटककार यह दिखा देते हैं कि जन्मपत्री के उत्तम होने पर भी वर को मृत्यु के पंजे से मुक्ति नहीं मिलती।

बालकृष्ण भट्ट 'जैसा काम वैसा परिणाम', शिक्षादान, बृहन्नला, वेणु संहार, नई रोशनी आदि के रचयिता है।

जैसा काम वैसा परिणाम में अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा, वेश्यागमन आदि कुरीतियों से जनता को मुक्त करने का प्रयास दृष्टव्य है। शिक्षादान में भी यही सुपरिचित समस्या है। बृहन्नला का कथानक भले ही पुरातन हो, उसके द्वारा नाटककार वर्तमान समस्या का ही परिहार ढूँढता है। वेणु संहार में पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण का विरोध है। नई रोशनी नाटक का भी प्रतिपाद्य यही है।

लाला श्रीनिवास दास ने तप्ता संवरण और संयोगिता स्वयंवर नाटक लिखे।

तप्ता संवरण में गान्धर्व विवाह का समर्थन है। संयोगिता स्वयंवर में यह सिद्ध किया गया है कि कन्या की अनुमति वैवाहिक जीवन की समृद्धि और सुख केलिए आवश्यक है।

गोपालराम गहमरी की भेंट हैं - "देशदशा" और विद्या विनोद" । "देश दशा" नाटक समाज का सच्चा प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है । इस विपुल काय नाटक में पुलिस, कचहरी, डाक खाना, रेल का टिकट घर जैसे सामाजिक प्रतिष्ठानों और बाल-विवाह, भूत-प्रेत विश्वास आदि अनाचारों को प्रवेश दिया गया है । विद्या विनोद में अनमेल विवाह की समस्या ही प्रमुख है । मंत्र-तंत्र, मारण-उच्चाटन आदि अंधविश्वासों का विरोध भी है ।

काशी नाथ खत्री की रचनाएं हैं - ग्राम पाठशाला, निकृष्ट नौकरी और बाल विधवा सन्ताप ।

बाल विधवा सन्ताप [1881] में बाल विधवा की हीन दशा का अंकन है । "ग्राम पाठशाला" [1883] भी समाज की कुछ समस्याओं का अनावरण करती है । इसमें यह दिखाया गया है कि एक ओर हमारी ग्रामीण जनता शिक्षा के प्रति उदासीन है और दूसरी ओर शिक्षित वर्ग बेकारी से पीड़ित है । "निकृष्ट नौकरी" [1883] सरकारी नौकरों की दयनीय हालत अंकित करती है ।

पं॰ देवकी नन्दन त्रिपाठी के नाटक भी सामाजिक परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए प्रणीत हैं । उनकी प्रचंड गोरक्षा, गोवध निषेध, कलियुगी जनेऊ, कलियुगी विवाह, जयनार सिंह, वेश्या विलास आदि रचनाएं इस बात का समर्थन करती हैं ।

प्रचंड गोरक्षा {1881} में गोसंरक्षण की आवश्यकता स्थापित की गई है । गोवध निषेध {1881} में अकबर की गोरक्षा संबंधी घोषणा दोहराई गई है और सामाजिक शान्ति के लिए गोवध निरोध को आवश्यक माना गया है । कलियुगी जनेऊ {1886} में पुरोहिताई पर आक्रमण है । कलियुगी विवाह {1886} में पुरोहिताई पर आक्रमण है । कलियुगी विवाह {1898} में अनमेल विवाह के कुपरिणामों का प्रतिपादन है । "जयनार सिंह" में ओझों की खिल्ली उड़ाई गई है । वेश्या विलास नाटक में वेश्यागमन के दोष दिखाए गए हैं ।

"बूढ़े मुंह मुहासे" {1887} में लम्पट वेश्यागमन को कुपरिणामों पर प्रकाश डाला गया है । "तन मन धन श्री गोसाइजी के अर्पण {1890} में धार्मिक गुरुओं के भ्रष्टाचारों का उद्घाटन है । यह भी दिखाया गया है कि पुरोहित अपने आराधकों की बहू-बेटियों की लाज लूटने में भी संकोच नहीं करते ।

खड्ग बहादुर मल्ल के नाटकों में वे ही बातें उठायी जाती हैं जो इस युग के अन्य रचनाकारों की कृतियों में पायी जाती हैं । उनके भारत आरत हरितालिका आदि नाटक समाज का असली दर्पण हैं ।

भारत आरत {1885} ब्राह्मणों और जमीन्दारों के अत्याचारों की झांकी देता है । अंग्रेजी शासन के दोषों की तरफ भी लेखक का ध्यान जाता है । हरितालिका {1887} में दाम्पत्य धर्म पर प्रकाश डाला गया है ।

फुटकर रचनाएं

अज्ञात होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से उल्लेखनीय नाट्य कृतियां और भी उपलब्ध हैं । सबमें प्रवृत्तियां प्राय: समान है । भारतेन्दु ने अपनी रचनाओं में जिन समस्याओं को उठाया उन्हीं का पिष्टपेषण सबमें पाया जाता है । वही भारत-दुर्दशा, धार्मिक अत्याचार, अन्धविश्वास, विधवा विवाह, बाल विवाह, अंग्रेजी शासन के दोष, गोरक्षा, हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य सबमें प्रतिपादित हुए हैं । इससे प्रतीत होता है कि एक महान प्रभा-पुंज के इर्द-गिर्द जुगुनुओं का कोई अपना स्थान नहीं है । वे छोटी सी प्रभा अवश्य रखते हैं लेकिन उनका कोई अपना सामाजिक महत्व नहीं है । भारतेन्दु, महान प्रतिभावान कलाकार थे । उनकी सृजन शक्ति के कणों को लेकर ही उनके युग के अन्य साहित्यकार काम चलाते थे । सामाजिक चेतना की दृष्टि से उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

"सज्जाद सम्बुल" [ले॰केशवराम] में भारतेन्दु की तरह "धन विदेश चलि जात" बात पर पूरा विरोध प्रकट होता है । स्त्री-शिक्षा पर भी जोर दिया जाता है । भारत दुर्दिन [ले॰जगत नारायण] और वर्तमान दशा [ले॰ दुर्गादास दत्त] आदि भारत की राजनीतिक और सामाजिक दुर्दशा सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं । भारत डिमडिमा और अकबर गोरक्षा न्याय आदि में जगत नारायण ने क्रमश: गोरक्षा और तत्सम्बन्धी अकबर की नीति प्रतिपादन किया है । पुलिस नाटक में [ले॰पं॰ मूलचन्द] शासन के सत्य का प्रदर्शन है । हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का चित्रण और हिन्दुओं के ऐक्य का उद्बोधन राम लीला विजय [ले॰वैद्य बलदेव प्रसाद मिश्र] में प

"न्याय सभा" [ले॰रत्नचन्द्र वकील] में हिन्दू-मुस्लिम मैत्री-स्थापना का प्रयास है । अनमेल विवाह का दुष्फल दिखानेवाले नाटक हैं, बालविवाह [ले॰देवी प्रसाद] "वृद्धावस्था विवाह [ले॰जगन्नाथदास], बाल विवाह विदूषक ~~[ले॰जगन्नाथ दास]/बाल/विवाह/विदूषक~~ [ले॰पं॰देवदत्त मिश्र] आदि । "समुद्र-यात्रा वर्जन" में श्री भारतीय, समुद्र यात्रा निषेध का विरोध करता है । मनोरंजिनी नाटक [ले॰ कुँवर रघुवीर शर्मा], चोपट चपेट [किशोरी लाल गोस्वामी] सरस्वती नाटक [ले॰दुर्गा प्रसाद मिश्र], सती चरित्र [हनुमंत सिंह रघुवंशी] आदि में सामाजिक बन्धनों से जकड़ी पिसती नारी का प्रस्तुतीकरण है ।

प्रत्यवलोकन

नाटक दृश्य काव्य है और उसका चरम लक्ष्य है भावों और विचारों का संप्रेषण । सामाजिक यथार्थ की सबसे प्रबल अभिव्यक्ति नाटकों में ही हो सकती है । उपर्युक्त नाटकों के विवेचन से यही तथ्य व्यक्त हो जाता है ।

भारतेन्दु युग के अधिकांश नाटक रंगमंच पर अभिनीत हुए थे । उनके अभिनय ने साबित किया कि समाज की विकृतियोंके परिहार का सबसे सशक्त उपकरण है नाटक । उनसे तत्कालीन शिक्षित समाज खूब प्रभावित हो गया था । नव जागृति पैदा हुई थी । फिर भी खेद की बात यह है कि ये नाटक तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को जड़ से उखाड़ निकालने में पूर्णतः सफल नहीं हुए । कहने की ज़रूरत नहीं कि इन नाटकों में प्रतिपादित सामाजिक कुरीतियों का अभी तक पूर्ण परिहार नहीं हो पाया है । इन बुराइयों के दूरीकरण का दिशा-निर्देश ही साहित्यकार का कर्तव्य है । भारतेन्दु काल के नाटककारों ने साहित्यकारों के उक्त कर्तव्य का पूरा पालन किया । उनसे प्रभावित परवर्ती नाटककारों ने भी समाज-सुधार को अपनी रचनाओं में लक्ष्यरूप ग्रहण किया। यह प्रक्रिया अद्यापि जारी रहती है ।

निष्कर्ष

१. भारतेन्दु और उनके सहयोगी नाटककारों ने सामाजिक जीवन पर व्यापक दृष्टि डाली थी ।

२. वे अपने समाज को विकासशील देखना चाहते थे ।

३. उन्होंने विभिन्न पात्रों के कार्यकलापों और कथोपकथनों द्वारा प्रचलित जातिगत कुरीतियों, रूढ़िगत संस्कारों का अनावरण किया । धार्मिक मिथ्याडंबर, अंधविश्वास, शासकों की दमन-नीति, आर्थिक शोषण, देशी राजाओं की निरंकुशता, पारस्परिक फूट आदि का पर्दाफाश करके समाज को शील की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास किया ।

४. भारतेन्दु युगीन नाटक सामाजिक मिथ्याचारों के परिहार केलिए सहायक साधन सिद्ध हुए ।

अध्याय - 5

प्राक् स्वाधीनता युग के नाटकों में सामाजिकता

पंचम अध्याय

प्राक् स्वाधीनता युग के नाटकों में सामाजिकता

आधुनिक भारत के इतिहास में 1900 से लेकर 1947 तक का अंतराल विशेष महत्व का है। इस समय परिधि में हमारी जनता ने स्वातंत्र्य के लिए कठोर संघर्ष किया, सैकड़ों देश भक्तों ने प्राणों की आहुति दी। सबका समवेत फल है देश का स्वातंत्र्य।

यह युग केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। समस्त भारतीय साहित्य में, विशेषकर हिन्दी साहित्य में ऐसी कोई विधा नहीं रही, जिसमें इन आन्दोलनों और संघर्षों का चित्रण न हुआ हो, उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, आलोचना निबन्ध सब जन जीवन के सशक्त आन्दोलनों से प्रभावित हो उठे। उक्त प्रभाव की सम्यक् अवधारणा के लिए राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक जन जीवन के नाना पक्षों की अन्तःशक्तियों का अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है।

राजनीतिक परिस्थिति

ब्रिटीश शासन से मातृभूमि को मुक्त करने केलिए जनता जी तोड संघर्ष कर रही थी । समस्त जन आन्दोलनों का ध्येय एक ही रहा देश का स्वातंत्र्य । उन एकोन्मुख जन आन्दोलनों का संक्षिप्त परिचय हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे ।

बंग - भंग

बंग-भंग हमेशा राजनीतिक आन्दोलनों का अग्रणी रहा है । ब्रिटीश शासकों ने इसी कारण बंगाल का विभाजन आवश्यक समझा । वे जानते थे कि हिन्दु - मुसलमानों में एकता स्थापित होने पर विदेशी शासन का कायम रखना कठिन है ।

लार्ड कर्जन ने 1905 में बंगाल के विभाजन की घोषणा की[1] । कांग्रेस ने इसका डटकर विरोध किया[2] । सरकार के विरुद्ध सार्वजनिक आन्दोलन जोर पकड़ता गया । नेता थे, सुरेन्द्रनाथ बेनरजी, विपिनचंद्रपाल जैसे लोग । विदेशी मालों का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रचार इसका मुख्य कार्यक्रम था । राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार केलिए कलकत्ते में एक महा विद्यालय की स्थापना की गई[3] । अरविन्द घोष जैसे अनेक क्रान्तिकारी वीर पुरुषों का सहयोग इस विद्यालय को प्राप्त हुआ । प्रचुर संख्या में विद्यार्थी सरकारी स्कूलों और कालेजों को छोड़कर इसमें भर्ती हो गए ।

---

1. Jagadish Sharma - Indias Struggle for freedom Vol.I p.71
2. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - पृ.48
3. रामधारी सिंह दिनकर -चेतना की शिखा - प्रथम सं. पृ.25

जनसंघर्ष की तीव्रता देखकर सरकार विह्वल हो उठी। उसने दमन नीति अपनाई। आन्दोलन को दबाने के उद्देश्य से 1908 में राजद्रोही सभाबन्दी कानून तथा प्रेस एक्ट पास किए गए।[1]

पर सरकार को इससे कोई प्रयोजन नहीं हुआ। जन जागृति उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही। सरकार को जनता के सामने पराजय माननी पड़ी। 1911 में बंगाल के विभाजन की घोषणा ही रद्द की गई।[2]

बंग - भंग और उसकी प्रतिक्रिया का परिणाम स्वतंत्रता संग्राम में बहुत ही व्यापक सिद्ध हुआ। धर्म - जाति के भेद से परे जन हित को स्थान देने की शिक्षा लोगों ने पाई। इसका शुभ परिणाम शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लगा।

मुस्लिम लीग की स्थापना

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटिशों का षड्यन्त्र सर्वथा विफल रह गया। मुसलमानों ने इसी समय अपने लिए एक स्वतंत्र राजनीतिक दल की आवश्यकता महसूस की। 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।[3] लीग निरंतर अंग्रेजों का समर्थन करती रही। उसने बंगाल विभाजन का समर्थन और स्वदेशी आन्दोलन का विरोध किया।[4]

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - पहला खंड पृ.70
2. V.D. Mahajan - India since 1526 - p.493
3. G.S. Chhabra - Advanced study in the History of Modern India Vol. II p.406
4. Ed.Dr. P.N. Chopra - The Gazetter of India - Vol.II p.536

स्वराज्य की मांग

विघटनकारी प्रवृत्ति के समानान्तर एकता भी बल पकड़ती गयी । सन् 1906 में इन्डियन नेशनल कांग्रेस का जो अधिवेशन कलकत्ते में हुआ उसीमें स्वशासन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ[1] । स्वयं कांग्रेस के अन्दर दो विरोधी शक्तियाँ एक साथ काम करने लगीं - तिलक के नेतृत्व में गरम दल और गोखले के नेतृत्व में नरम दल । गरम दलवालों ने पूर्ण स्वराज्य की मांग उठायी[2] ।

प्रथम विश्व महायुद्ध का आरंभ हुआ । युद्ध के परिणाम स्वरूप विश्व की राजनीति एकदम परिवर्तित हो गई । भारत की राजनीति भी नवीन शक्तियों के समावेश से उत्तेजित हो उठी ।

प्रथम विश्व युद्ध

प्रथम विश्व महायुद्ध छिड़ा 1914 में[3] । वह चाहती थी कि भारतीय जनता युद्ध में उसका साथ दें । बदले में भारत को स्वतंत्र करने का उसने वचन दिया[4] । जनता ने सरकार पर विश्वास रखा । युद्ध में जनता ने सहायता की । लेकिन सरकार अपने वचन से मुकर गई ।

जनता क्षुब्ध और उत्तेजित हो उठी । शासन केवल दमन ही जानती थी । 1919 में रौलट एक्ट पास किया गया[5] । वह जनता केलिए बहुत ही

---

1. V.D. Mahajan - India Since 1526 p.443
2. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास
3. Jawaharlal Nehru - Discovery of India
4. Tarachand - History of Freedom Movement in India - Vol III P. 456
5. Ibid - Ibid - P. 470

खतरनाक था । इसलिए गांधीजी ने उसके विरोध में सत्याग्रह शुरू किया । जुलूसें निकाली गईं । समस्त भारत उबल रहा था । इसी अवसर पर [1922] जालियनवालाबाग का हत्याकांड हुआ । सैकड़ों निरीह मानव गोली से उड़ा दिये गए[1] । इसने जनता की विद्रोहाग्नि को और भड़का दिया । असंख्य जनता आज़ादी केलिए आत्मबलि देने को तैयार हो गए ।

महात्मागांधी का पदार्पण

ठीक इसी समय राजनीतिक क्षेत्र में मोहनदास करमचन्द गांधी का प्रवेश हुआ । उस समय तक वे दक्षिण आफ्रिका में बैरिस्टरी कर रहे थे । भारतियों का अपमान उनकेलिए असह्य था । उनकी अंतरात्मा में क्रान्ति की चिनगारी उठने लगी । उन्होंने गरीब जनता के उद्धार केलिए अपना जीवन अर्पित कर दिया ।

कांग्रेस के कलकत्ते अधिवेशन के समय से ही गांधीजी ने राजनीतिक कार्यों में भाग लेना शुरू किया था[2] । उनके विचारानुसार राजनीतिक संग्राम सामाजिक और आर्थिक संग्रामों से जुड़ा रहता है । केवल राजनीतिक स्वतंत्रता उनका लक्ष्य नहीं थी । जब तक जनता का सामाजिक तथा आर्थिक उद्धार नहीं होगा गांधीजी समझते थे, तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है[3] ।

---

1. A.K. Majumdar - Advent of Independence Ist Edn. 1963 p.80
2. M.K. Gandhi - My experiments with Truth
3.

असहयोग आन्दोलन

गांधीजी ने अहिंसा और असहयोग को अपना हथियार बनाया । कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन ने उसे स्वीकार किया था[1] । गांधीजी के नेतृत्व में समस्त भारतीय जनता रण क्षेत्र में कूद पडी । सारा राष्ट्र एक ही व्यक्ति के समान डटा रहा ।

इस संग्राम के दो उद्देश्य थे - ध्वंसात्मक और सृजनात्मक । ध्वंसात्मक उद्देश्य में निम्न लिखित बातें अन्तर्भूत है[2] ।

1. वकीलों द्वारा सरकारी अदालतों का बहिष्कार ।
2. सरकारी स्कूलों तथा कालेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की स्थापना ।
3. प्रान्तीय परिषदों और सभाओं की चुनावों का बहिष्कार ।
4. उपाधियों और अवैतनिक पदों का त्याग । सरकारी अफसरों द्वारा आयोजित उत्सवों का बहिष्कार ।
5. विदेशी चीजों का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रचार । खादी वस्त्र का उपयोग ।
6. मदिरा सेवन का निषेध ।

रचनात्मक उद्देश्य में निम्न लिखित बातें महत्वपूर्ण रही[3] ।

---

1. A.R. Desai - Social Background of Indian Nationalism p.349
2. Tharachand - History of Freedom Movement in India Vol-III p.493
3. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p 382

1. हिन्दू मुस्लिम एकता
2. हरिजनोद्धार
3. अस्पृश्यता निवारण
4. नारी समाज की उन्नति का प्रयत्न
5. राष्ट्रभाषा का प्रचार
6. सर्वधर्म समन्वय ।

गांधीजी के कार्यक्रमों में हिन्दू - मुस्लिम ऐक्य तथा हरिजनोद्धार को बहुत अधिक महत्व दिया गया था । उनके प्रयत्न के परिणाम स्वरूप वर्षों तक हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच ऐक्य कायम रह सका । स्वतंत्रता बहुत निकट दिखाई पड़ने लगी थी । पर, अंग्रेजों की कूटनीति हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच निरन्तर संघर्ष जारी रखने में जागरूक रही । उसने उन आन्दोलन के खिलाफ कठोर दमन नीति अपनाई । गांधी, नेहरू जैसे नेताओं को कैद कर लिया गया और उन सब तरीकों को अपनाया गया जिनसे जनता में सन्देह बढ़े और विद्वेष जारी रहे ।

चौरी चौरा कांड

जनता अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने में कटिबद्ध थी । यद्यपि गांधीजी ने अपने कार्यक्रमों में अहिंसा को सर्वाधिक महत्व दे दिया था तथापि विपत्तिग्रस्त जनता उसे पूर्ण रूप से मानने के लिए तैयार नहीं थी । विक्षोभ, और विद्वेष की ज्वालामुखी धधकने लगी । इसी अवसर पर चौरी चौरा में वह घटना हुई जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में विस्फोट ही पैदा कर दिया[2] ।

D.C Gupta – Indian National Movement and Constitutional Development – P 103

M K Gandhi – My experiments with Truth

5 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी चौरा गांव में यह घटना घटी। कुछ भीड़ ने इक्कीस सिपाहियों और एक सब इन्सपेक्टर को थाने के अन्दर जिन्दा जला दिया।[1] सारे देश में संघर्ष का वातावरण छा गया। सरकार भय चकित सी हो गई। सर्वत्र अव्यवस्था छा गयी। प्रतीत होने लगी कि स्वतंत्रता की देवी भारत के द्वार पर आ खड़ी है। संघर्ष ज़ोरों पर था। जनता आवेश से झूम उठी। गांधीजी ने अनुभव किया कि अब स्थिति पर उनका नियंत्रण नहीं है। वे अपने सिद्धांतों से चिपके रहे। अहिंसा और सत्य के मार्ग से वे तिल भर भी विचलित नहीं हो सकते थे। इसलिए उन्होंने सारा आन्दोलन स्थगित कर दिया।[2] गांधीजी के इस निर्णय ने जनता के स्वातंत्र्य प्रेम की आग को बुझा दिया।

सरकार अवसर की ताक में थी। उसने कठोर दमन शुरू किया। बहुत से नेता गिरफ्तार कर लिए गए। परन्तु धीरे-धीरे उसे यह बोध होने लगा कि भारत पर विदेशी शासन अधिक दिन तक जारी नहीं रह सकेगा।

साइमन कमीशन का विरोध

उपर्युक्त विस्फोटक स्थिति से बचने को बचाने के लिए सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की।[3] शासन के सुधारों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने केलिए 1928 में कमीशन ने देश का भ्रमण किया। गांधीजी ने कमीशन के विरोध और बहिष्कार का आह्वान दिया। सारे देश में हड़ताल हुई और

---

1. V.D. Mahajan - India Since 1526 p.525
2. G.S. Chhbra - Advanced study in the History of modern India Vol.III p.10
3. Tharachand - History of Freedom Movement in India - Vol IV - p.91

कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया गया । सारे देश में विक्षोभ का वातावरण छा गया । सब कहीं सरकार के विरुद्ध सभाएं हुईं, जुलूसें निकली । अनेक स्थानों पर गोली कांड हुआ । छात्रों और पुलिस के बीच मुठ भेड हुई[1] । बहुत से व्यक्ति मारे गए ।

1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य घोषित किया[2] ।

सविनय - अवज्ञा आन्दोलन

दमन नीति के खिलाफ गांधीजी ने सविनय अवज्ञा भी का आन्दोलन शुरू किया 1930 में । नमक कर मिटाना, शराबबन्दी, अस्पृश्यता निवारण, खादी-प्रचार, हिन्दी-प्रचार आदि इस आन्दोलन के मुख्य कार्यक्रम थे[3] । गांधीजी ने अपने साथियों के संग दण्डी के समुद्र तट पर नमक तैयार करते हुए कानून का भंग किया[4] । यह बडा भारी सार्वजनिक आन्दोलन का रूप धारण करता गया । करोडों की संख्या में ग्रामीण जनता ने इसमें भाग लिया[5] ।

छात्रों और सरकारी अफसरों से गांधीजी ने अपील की कि वे पाठशाला और आफिस को छोड दें और स्वतंत्रता संग्राम में कूद पडे[6] ।

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - पहला खंड पृ.167
2. राजकुमार - भारत का राजनीतिक इतिहास - पृ.248
3. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास
4. वही - वही - पृ 192
5. " — — पृ 192
6. Ed P N Chopra - The Gazetteer of India - Vol II - P 540

इसके फलस्वरूप असंख्य छात्र और सरकारी कर्मचारी अपना सब कुछ त्यागकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने लगे । आन्दोलन के देश व्यापी होने पर सरकार का आतंक और भी बढ़ा । वह केवल दमन की ही नीति जानती थी । 1930 में गांधीजी कैद कर लिए गए । देश भर में इसके विरुद्ध हड़ताल हुई[1] । परिस्थिति की गंभीरता को समझकर सरकार ने गांधीजी और उनके अनुयायी को जेल से मुक्त कर दिया ।

1936 के चुनाव में कांग्रेस बहुत से विजयी हुई । मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, असाम, उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त आदि आठ प्रान्तों में कांग्रेस शासन स्थापित हुआ[2] ।

द्वितीय विश्वयुद्ध और भारतीय राजनीति

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ । संसार भर में आतंक का वातावरण छा गया । भारतीय परिस्थिति अशान्त थी । इस युद्ध में जर्मनी, इटली और जापान एक ओर थे । ब्रिटन, फ्रान्स और रूस दूसरी ओर । उन दिनों भारत के वाइसरोय थे लिनलिथगो । उन्होंने भारतीय नेताओं की सम्मति लिये बिना भारत को युद्ध में भागी घोषित किया[3] । कांग्रेस सरकारों के लिए यह स्वीकार्य नहीं था । इस कारण 1939 में कांग्रेस मंत्री मण्डलों ने इस्तीफा दे दिया[4] ।

---

1. Tharachand – History of Freedom Movement in India – Vol. IV p.127
2. Jawaharlal Nehru - Discovery of India - p.371
3. Ibid – Ibid – p 151
4. Ed. R.C. Majumdar - History and culture of Indian People Vol. XI p.687

व्यक्तिगत सत्याग्रह

1940 में वाइसरॉय ने पुनः कांग्रेस को केन्द्रीय सरकार और युद्ध सलाहकार परिषद में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया । इसे भी कांग्रेस ने ठुकरा दिया । अब कांग्रेस समझ गई कि संघर्ष के बिना स्वातंत्र्य प्राप्त नहीं होगा । अतः गांधीजी के आदेशानुसार 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा की गई[1] । नेतृत्व गांधीजी के हाथों में था । चरखा, ग्रामोद्योग आदि रचनात्मक कार्यक्रम भी साथ साथ चले ।

1942 में ब्रिटीश मंत्री मंडल के निर्देशानुसार क्रिप्स मिशन भारत आयी । उसके सारे प्रस्तावों का भारत के सभी राष्ट्रीय दलों ने निराकरण किया[2] ।

पाकिस्तान की मांग

साम्प्रदायिक संघर्ष के कारण भी देश का वातावरण धूमिल था । मुसलमानों केलिए एक अलग राष्ट्र की मांग उठाई गयी[3] । पहले ही [1920] सर मुहम्मद इकबाल ने यह मांग उठायी थी[4] । पर 1939 में मुस्लिम लीग ने धर्म के आधार पर देश के विभाजन की मांग की । लीग का नेतृत्व मुहम्मद अली जिन्ना के हाथों में था । 1940 के लाहौर अधिवेशन में लीग ने नारा उठाया कि पाकिस्तान की स्थापना के बिना भारत उप खण्ड को स्वतंत्रता प्राप्त होगी ही नहीं[5] ।

---

1. A.R. Desai - Recent Trends in Indian Nationalism p.34
2. Jagadish Sharma - Encyclopaedia of India's struggle for freedom p.53
3. डा॰एस॰ राधाकृष्णन - धर्म और समाज - पृ॰291
4. Jawaharlal Nehru - Discovery of India
5. R C Majumdar — History of Freedom Movement in India - Vol III - P-600

भारत छोड़ो आन्दोलन

भारत का राजनैतिक तथा आर्थिक वातावरण सर्वथा क्षुब्ध था। एक ओर साम्प्रदायिक दंगे और कलह और दूसरी ओर सरकार की फूट डालनेवाली कूटनीति। इसी समय [1942] बंगाल में अकाल के क्रूर ताण्डव शुरू किया। हजारों के प्राण अकाल के शिकार हुए। गांधीजी ने सभी विपत्तियों का दायित्व ब्रिटीश शासन पर रखा। उन्होंने घोषित किया कि तुरन्त ही अंग्रेज़ों को भारत छोड़ देना चाहिए। 14, जुलाई 1942 में बंबई की बैठक में कांग्रेस कार्य समिति द्वारा भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पास किया गया[1]।

आन्दोलन का सक्रिय रूप

अगस्त, 1942 में महात्मागांधी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हुआ। गांधीजी का करो या न मरो आह्वान सुनकर स्वतंत्रता संघर्ष में सर्वस्व बलिदान करने केलिए जनता तैयार हो गयी।

कठोर दमन भी सरकार का सहारा था। नेतागण गिरफ्तार कर लिए गए। जनता पर गोली चलाई गयी। हजारों की संख्या में लोग गिरफ्तार किये गए। उनकी संपत्ति लूटी गयी।

सरकार की दमन नीति की प्रतिक्रिया भी ज़ोरों पर हुई। देश के कोने कोने में सार्वजनिक सभाएं हुई। जुलूसें हुई हड़ताल की गयी। प्रतिहिंसा में पागल जनता ने रेल की पटरियाँ उखाड़ी डाकखाने लूटे, तार घरों के तार काटे,

1. Ed. R.C. Majumdar - History and Culture of Indian People Vol.VI p.646

पुलिस थानों पर आग लगा दी [1]। इस आंदोलन में नई पीढ़ी के विशेषकर विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा। यह आन्दोलन तीन वर्षों तक जारी रहा। सरकार को मालूम हुआ कि अब भारत पर अधिकार जारी रखना संभव नहीं।

सुभाषचन्द्र बसु और आज़ाद हिन्द फौज

गांधीजी का आन्दोलन अहिंसात्मक था। पर बहुत से नवयुवक अहिंसात्मक संघर्ष पर आस्था नहीं रखते थे। उन्होंने सशस्त्र संग्राम शुरू किया। चन्द्रशेखर आज़ाद और भगतसिंह क्रान्तिकारियों के नेता थे। पर उनमें संगठन का अभाव था। केवल वैयक्तिक वीरता के बल पर ही वे काम करते रहे। फलत: वे अपनी लक्ष्य सिद्धि में कामयाब नहीं हो सके।

आगे चलकर सुभाष चन्द्रबसु ने आज़ाद हिन्द फौज की स्थापना करके उसे संगठित शक्ति प्रदान की और अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष जारी रखा।

सुभाष बसु ने कांग्रेस से अलग होकर 1939 में 'फार्वेड ब्लाक' नामक नवीन पार्टी की स्थापना की थी [2]। जनवरी 16, 1942 में भारत से वे अचानक अदृश्य हो गए। पहले वे जर्मनी पहुँचे, पश्चात जापान। उनके प्रयत्न से 21, अक्टूबर 1943 में आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना हुई [3]।

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - पृ०
2. Jagadish Sharma - Encyclopaedia of India's struggle for freedom Ist Edn. p.69
3. मन्मथनाथ गुप्त - भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास छठवाँ सं० पृ०512

बोस ने ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की ।

सन् 1944 में आइ॰एन॰ए॰ जापानी सेना के साथ भारतीय सीमा की ओर बढ़ी । मणिपुर असाम से होकर भारतीय सीमा में प्रवेश करना उसका लक्ष्य था । पर इसमें वह सफल नहीं हो सकी । मई, 1947 में आइ॰एन॰ए॰ ने अंग्रेज़ों की अधीनता स्वीकार की[1] ।

यद्यपि आज़ाद हिन्द अपनी लक्ष्य सिद्धि में सफल नहीं हुई, फिर भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में उसका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा ।

<u>नौ सेना विद्रोह</u>

स्वतंत्रता का यह संघर्ष केवल आम जनता तक ही सीमित नहीं रहा । भारतीय सेना भी असंतुष्ट थी । सैनिकों का असंतोष धीरे-धीरे बढ़ रहा था । आकस्मिक ढंग से बंबई में नौ सैनिकों ने संघर्ष शुरू किया [1946] यह अंग्रेज़ अफसरों के दुर्व्यवहारों के कारण ही हुआ[2] । नौ सेना कमाण्डर ने विद्रोही भारतीय सैनिकों पर गोली चलायी । देश भर में इसकी प्रतिक्रिया हुई । मद्रास, कराची और कलकत्ते में विद्रोह फौरन फैल गया । बंबई में संपूर्ण मज़दूर वर्ग ने इसमें भाग लिया[3] । नौसेना विद्रोह ने तत्वतः ब्रिटीश सत्ता की नींव उखाड़ डाली । भारत-स्वातंत्र्य की उद्घोषणा के अतिरिक्त सरकार के सम्मुख कोई दूसरा उपाय ही नहीं रह गया ।

---

1. Ed. P.N. Chopra - The Gazetter of India Vol.II p.546
2. मन्मथनाथ गुप्त - भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास पृ॰526 p.
3. A.R. Desai - Recent Trends in Indian Nationalism p.40

भारत विभाजन और स्वतंत्रता प्राप्ति

सन् 1946 में आम चुनाव हुआ । पं॰ जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार स्थापित हुई । लेकिन मुस्लिम लीग ने इसमें सहयोग नहीं दिया । वह तब भी ज़ोरदार शब्दों में पाकिस्तान की मांग कर रही थी । देश भर साम्प्रदायिक दंगे चल रहे थे ।

लार्ड माउंटबेटन नए वायसराय नियुक्त हुए । उन्होंने समझ लिया कि हिन्दू - मुस्लिम संघर्ष की समाप्ति का एकमात्र उपाय भारत विभाजन ही है । इस प्रकार 3, जून 1947 को ब्रिटीश सरकार द्वारा भारत विभाजन की स्वीकृति घोषित की गई[1] । 14, अगस्त के साथ भारत भूमि से अंग्रेजों के निवर्तन की योजना का भी उद्घोष हुआ[2] ।

कांग्रेस को विवशतावश भारत विभाजन की योजना स्वीकार करनी पड़ी[3] । महात्मागांधी[4] और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद[5] ने इसका कड़ा विरोध किया । लेकिन इन दोनों नेताओं के विरोध और हठ का कोई अनुकूल फल नहीं हुआ । अंत में उनको भी भारत विभाजन का निर्णय स्वीकार करना पड़ा[6] ।

विभाजन के निर्णय के अनुरूप पंजाब के पश्चिमी और बंगाल के पूर्वी ज़िलों, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान को पाकिस्तान में सम्मिलित कर देने का फैसला किया गया । 15, जुलाई 1947 में पास किये गये

---

1. G. L. Grover, R. R. Sethi — A new look on Modern Indian History – Fourth Ed. p 518
2. D. C Gupta – Indian National Movement and Constitutional Development p २५१
3. M.R. Masani – Britain in India – 2nd Edn. p.262
4. मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद – आज़ादी की कहानी – पृ॰205
5. वही पृ॰208
6. R.C. Majumdar – History of Freedom Movement in India Vol.III Ist Edn. 1963 p.262

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के आधार पर भारत और पाकिस्तान दोनों की प्रतिष्ठा की गयी[1]। 14,15 अगस्त, 1947 की आधी रात में शासन सत्ता का अधिकार भारतीयों को हस्तांतरित किया गया[2]।

भारत स्वतंत्र हुआ। भारतीयों का सदियों का सपना पूर्ण हुआ। इसकेलिए उनको कितना त्याग और कष्ट सहने पड़े। इसका अवलोकन हो गया।

स्वतंत्रता संग्राम ने समूचे भारतीय समाज पर प्रभाव डाला। युगों से प्रपीड़ित अछूतों में नवजागृति फैल गई। शताब्दियों के बंधनों से नारी वर्ग का विमोचन संभव हुआ। इन आन्दोलनों का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में भी देखने को मिलता है। कृषकों के उद्धार का प्रयत्न किया गया। देश के व्यावसायिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आने लगे। कुटीर उद्योगों की महत्ता स्वीकृत हुई। इसके फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में विकास चिह्न लक्षित होने लगे।

सामाजिक परिस्थिति

भारतेन्दु युग की सुधारात्मक प्रवृत्ति प्रायः स्वातंत्र्य युग में तीव्र और आलोच्य काल [1900-1947] में तीव्रतर होती गई। नव्यतर उत्साह सामाजिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर अनुकूल होने लगा। पुनरुत्थानवादी सामाजिक आन्दोलन के फलस्वरूप भी भारतीय समाज में जागृति लक्षित हुई थी। पुरातनता क्षीण होती गयी और नवीनता सशक्त। राजनीतिक आन्दोलन की सार्थकता इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन में स्थापित होने लगी। उसका लक्ष्य भी और कुछ नहीं था[3]। आलोच्य काल के सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप निर्धारण यहाँ किया जा रहा है।

---

1 Ed. P.N. Chopra - The Gazetteer of India Vol.II p.548

2 Michael Edwards - Last years of British India Ist Edn. p.218

3. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय - पृ.15

नारी - जागृति

युगों से सुप्त पड़ी भारतीय नारी इसी युग में जागृत होने लगी। सन् 1919 के बाद वह राजनीति में भी सक्रिय भाग लेने लगती है। यह देश के इतिहास की सर्वाधिक विस्मयकारिणी घटना है[1]।

गांधीजी नारी-जागरण के समर्थक थे। उनके नेतृत्व में भारतीय महिलाएं असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने लगी[2]। खादी का प्रचार करते हुए, शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देते हुए उन्होंने अनेक कठिनतम परिस्थितियों का सामना किया[3]।

भारतेन्दु युग के समाज ने नारी को शिक्षा प्राप्ति के अधिकार से वंचित रखा था। आलोच्य युग के आरंभ की भी स्थिति प्रायः यही रही। पर गांधीजी जैसे नेताओं ने नारी शिक्षा अनिवार्य मान ली[4]। धीरे धीरे स्त्री शिक्षा का प्रचार होने लगा।

इस दिशा में दिल्ली के लेडी इरविन कालेज स्थापिता (1932) का योगदान विशेष उल्लेखनीय है[5]। सह शिक्षा भी प्रचलित होने लगी। शिक्षा प्राप्ति के लिए महिलाएं विदेश जाने को तैयार हुई। परिणाम स्वरूप पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां प्रायः लुप्त होने लगी।

---

1. A.R. Desai - Social background of Indian Nationalism p.278
2. Ed. P.N. Chopra - Gazetteer of India Vol.II P.636
3. पट्टाभि सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास - पृ.319
4. M.K. Gandhi - India of My dreams p.231
5. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी

1856 में ही हिन्दु-विधवा पुनर्विवाह कानून पास किया गया था[1]। महर्षि कर्वे ने एक विधवा के साथ विवाह करके इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम रखा[2]। स्थान स्थान पर विधवाश्रम और नारी शिक्षा केन्द्र खोले गए।

समाज सुधारकों के कार्यक्रमों में अन्यतम था वेश्याओं का उद्धार[3]। सन् 1923 में बंबई में वेश्यावृत्ति निरोधक कानून पास किया गया। देवदासी कानून 1934 में पास हुआ।

सन् 1925 में नेशनल कौन्सिल ओफ विमन संगठित हुई[4]। 1926 से महिलाएं व्यवस्थापक मण्डलों की सदस्या बनने लगी। 1926 में श्रीमती मार्गरेट कजिन्स के प्रयासों से अखिल भारतीय महिला परिषद स्थापित हुई। और 1927 में अखिल भारतीय महिला काँग्रेस[5]। काँग्रेस और मुस्लिम लीग ने पहले ही स्त्रियों की मताधिकार संबन्धी मांग स्वीकार की थी। 1935 के इन्डियन एक्ट के अनुसार पचास लाख स्त्रियों को मतदान का अधिकार मिला[6]।

सन् 1929 के हिन्दु उत्तराधिकार और 1937 के संपत्ति पर हिन्दु महिला के अधिकार संबन्धी नियम आदि भारतीय नारी को समाज में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हुए[7]।

---

1. Ed. P.N. Chopra - Gazettar of India Vol.I p.576
2. V.D. Mahajan - India Since 1526 - p.606
3.
4. Ed. P.N. Chopra - Gazetteer of India - Vol II p.644
5. हरिदत्त वेदालंकार - भारत का सांस्कृतिक इतिहास - पृ.231
6. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.231
7. Ed. P.N. Chopra - The Gazetteer of India - Vol.II P.645

वैवाहिक स्वरूप में परिवर्तन

समय के अनुसार सामाजिक मान्यताएं बदलती हैं। विवाह संबन्धी पुरानी मान्यताएं शिथिल और नई मान्यताएं प्रबल होने लगी।

कन्या का विवाह सिर्फ माता - पिता के निश्चय पर निर्भर था। पर आधुनिक नारी विवाह के संबन्ध में पूर्ण स्वतंत्रता चाहती है। शारदा एक्ट (1930) ने बाल विवाह को अवैध घोषित किया[1]। बाल विवाह धीरे-धीरे समाप्त हो गया। लड़की और लड़के के विवाह केलिए उम्र भी निश्चित की गई[2]।

1937 के आर्य विवाह कानून ने अन्तर्जातीय विवाहों को वैध बना दिया[3]। इस क्षेत्र में कांग्रेस ने सहयोग प्रदान किया।

मुस्लिम विवाह अधिनियम 1939 में पारित हुआ इसके अनुसार मुस्लिम बालिकाओं को तलाक का अधिकार मिला[4]।

1939 में सिंध में दहेज विरोधी कानून पास किया गया[5]। स्वतंत्र भारत ने सारे देश में दहेज प्रथा को कानून द्वारा रोका है[6] अब भी कहीं कहीं गुप्त रूप से जारी है यह प्रथा, पर उसके प्रतिबंध का सामाजिक महत्व इनकार नहीं किया जा सकता।

---

1. Ed. P.N. Chopra - The Gazetteer of India Vol.II p.642
2. शारदा एक्ट के अनुसार लड़कों को अठारह वर्ष और लड़कियों को चौदह वर्ष की उम्र विवाह केलिए उपयुक्त स्वीकृत की गई।
3.
4.
5. Ed. P.N. Chopra - The Gazetteer of India VolII p.646

नारी की यह नव जागृति स्वतंत्रता संग्राम का एक रोमांचकारी परिच्छेद है। इससे प्रमाणित होता है कि देश - भक्ति, बलिदान और व्यक्तित्व की बहुमुखी अभिव्यक्ति के बल पर भारतीय नारी कर्मक्षेत्र में पुरुषों के समानस्तरीय है[1]। आज की नारी किसी की मुंहताज नहीं है। वह स्वावलंबी बनना चाहती है। सार्वजनिक क्षेत्र में पुरुष के साथ काम करना वह अपना परम कर्तव्य मानती है।

जाति-पाँति का विरोध

जाति-पाँति संबन्धी कठोर नियम शनैः शनैः ढीले पड़ने लगे। रेल और समुद्र यात्रा के प्रतिबन्ध टूट गए। खान पान के बंधन कट गए। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। कांग्रेस की सारी सभाओं में सभी जातियों का खुला स्वागत किया गया। 1922 में लाहौर में जाति पाँति तोड़क मण्डल स्थापित हुआ[2]। बड़ौदा में जाति सम्बन्धी अत्याचारों को दूर करने का कानून 1930 में पास किया गया[3]।

इसका सम्मिलित प्रभाव बहुत गहरा पड़ा। विवाह, खान पान आदि में लोग अन्तर्जातीय भाव ग्रहण करने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पहले ही भारत की स्थिति बदलने लगी। विज्ञान और यंत्र के पहियों पर चलनेवाली सभ्यता ने जाति व्यवस्था के भेदों को समाप्त करने में सक्रिय योग दिया है। रेल, मिलें और फ़ैक्टरियाँ सभी जातियों से कामगार लेती है। व्यवसाय, जाति का चिह्न नहीं रह गया[4]।

---

1. चन्द्रबली पाण्डेय - भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास - पृ.286
2. हरिदत्त वेदालंकार - भारत का सांस्कृतिक इतिहास - पृ.229
3. Ed. P.N. Chopra - Gazetteer of India Vol.III p.643
4. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य

अस्पृश्यता निवारण और हरिजनोद्धार

अस्पृश्यता, सदियों से हमारा सामाजिक कलंक रहा करती है। सवर्णों के दुर्व्यवहारों के कारण दलित वर्ग के लोग ईसाइयत या इस्लाम ग्रहण करते थे।[1] इस दुरवस्था से उन्हें बचाने का प्रयास कांग्रेस ने किया। अछूतों की सामाजिक आध्यात्मिक दशा सुधारने के उद्देश्य से डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसाइटी आफ इण्डिया की 1906 में स्थापना की गई।[2] 1917 के कलकत्ता कांग्रेस में अछूतों की कठिनाइयों और असुविधाओं पर विचार - विमर्श हुआ और ऊपर से तमाम बन्दिशें उठा दी जाएँ का प्रस्ताव पास किया गया।[3]

गांधीजी की दृष्टि में अस्पृश्यता ईश्वर और मानव के प्रति घोर अपराध है। वह विष की भांति हिन्दू धर्म को नष्ट कर देती है।[4] उन्होंने समाज के निम्नजातिवालों को हरिजन नाम दिया और उनके सुधार के लक्ष्य में हरिजन सेवक संघ स्थापित किया।[5] हरिजन पत्र का प्रकाशन भी उन्होंने इसी उद्देश्य से किया था।[6]

पंजाब के सिक्खों ने भी अस्पृश्यता निवारण का कुछ प्रयत्न किया। अछूत हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन का कड़ा विरोध करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने उसका गतिरोध रोका।

---

1. सीताराम झा 'श्याम' - भारतीय समाज का स्वरूप - पृ.52
2. V.D. Mahajan - India Since 1526 p.606
3. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - दूसरा खंड - पृ.59
4. M.K. Gandhi - India of my dreams p.252
5. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.169

कांग्रेस ने धारा सभाओं में हरिजनों के लिए स्थान सुरक्षित रखना आवश्यक घोषित किया।[1] पर सरकार ने हरिजनों केलिए पृथक निर्वाचन की पद्धति अपना ली। गांधीजी का विचार था कि इसके फलस्वरूप हरिजन जनजीवन की मुख्य से हमेशा केलिए अलग कर दिये जायेंगे। उन्होंने इसके विरुद्ध यारवादा जेल में आमरण अनशन प्रारंभ किया।[2] पूना पेक्ट में अछूतों केलिए धारा सभाओं में स्थान सुरक्षित कर दिये जाने तक यह अनशन जारी रहा। 1935 के गवर्मेंट ओफ इंडिया आक्ट के आधार पर अछूतों को मताधिकार दिया गया।[3]

हरिजनों के मन्दिर प्रवेश में जो सामाजिक बन्धन था, वह भी धीरे धीरे टूटने लगे। सभी मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश की अनुमति सन 1936 में त्रावणकोर के महाराजा के एक विशेष आज्ञा पत्र द्वारा दी गयी।[4] 8, जुलाई 1939 को मदुरा के प्रसिद्ध मीनाक्षी मन्दिर का द्वार हरिजनों केलिए खुल गया।[5] बड़े बड़े मंदिरों में हरिजन प्रवेश धीरे धीरे संभव हो गया।

1938 में मद्रास में सिविल डिसएबिलिटीस रिमूवल एक्ट पास हुआ।[6] स्वातंत्र्य प्राप्ति के साथ तथा अधिक अछूत सार्वजनिक स्थानों और वस्तुओं के अधिकारी बनने लगे। उनको सार्वजनिक स्थानों और वस्तुओं के अधिकारी बनने लगे। उनको सार्वजनिक सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से भी अधिनियम बनाये गए। सरकारी नौकरियों में उनकेलिए स्थान आरक्षित किए गए।

1.

2. Ed. S. Radhkrishnan Mahatma Gandhi - 100 years 1968 p.156

3. सीताराम झा श्याम - भारतीय समाज का स्वरूप - पृ.85

4. Ed. P.N. Chopra - Gazetteer of India - Vol.I 1973 p.439

5. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.234

6. Ed. P.N. Chopra - The Gazetteer of India - Vol II - p.644

मद्य निषेध

असहयोग आंदोलन का मुख्य कार्यक्रम था, मद्य-निषेध । समाज में मद्य सेवन की प्रवृत्ति बढ़ रही थी, लोग, शराब के इतने प्रेमी हो उठे कि अब वे टैक्स के भार को भी कुछ नहीं समझते । शराबबन्दी की बात करने वालों को पियक्कड़ अपना शत्रु समझते हैं[1] ।

मद्य सेवन के सम्बन्ध में गांधीजी ने लिखा - शराब मानव की आत्मा का हनन करके उसे पशु बना देता है[2] । इसका उपयोग देश को दिन-ब-दिन दुबले बनाता जा रहा है । उससे देश की मुक्ति मद्य निषेध मात्र से ही संभव है । यही कारण है कि गांधीजी के आह्वान पर कांग्रेस सदस्यों ने शराब बेचनेवाली दुकानों पर धरना दिया । इस कार्य में भारतीय महिलाओं ने भी सक्रिय सहयोग दिया ।

खादी का प्रचार

खादी के द्वारा गांधीजी ने भारत की गरीब जनता केलिए एक धन्धा और जीवन निर्वाह का मार्ग खोज निकाला[3] । उनकी दृष्टि में खादी भारतीयों की एकता का प्रतीक है[4] । चरखे से सूत कातना देश भक्तों का परम कर्तव्य माना गया । फलतः खादी का देश के कोने कोने में प्रचार हुआ ।

---

1. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय - पृ.513
2. M.K. Gandhi - India of my dreams p.162
3. V.D. Mahajan - India Since 1526 p.528
4. M.K. Gandhi - Socialism of my conception 1970 p.129

सरकारी स्कूलों और उपाधियों का त्याग

राष्ट्रीयता का व्रत लेनेवाले विद्यार्थी वर्ग सरकारी विद्यापीठों का परित्याग करके स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े । गांधीजी ने सरकार से प्राप्त कैसर-ए-हिन्द उपाधि वापस दी।[1] इनका अनुसरण करते हुए अनेक व्यक्तियों ने सरकारी उपाधियों और पदवियों का त्याग किया । वकील लोगों ने अपनी वकालत छोड़ दी ।

हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयत्न

हिन्दु मुस्लिम ऐक्य की स्थापना, असहयोग आन्दोलन का मुख्य कार्यक्रम थी । दोनों जातियों में एकता लाने केलिए गांधीजी निरंतर प्रयत्न करते रहे । इसी लक्ष्य प्राप्ति केलिए उन्होंने 21 दिन का अनशन किया जिसमें उन्हें आंशिक सफलता मिली।[2] देश के बंटवारे के साथ सांप्रदायिक वैमनस्य और भी बढ़ गया । सैकड़ों की लूट और हजारों की हत्या हुई । सांप्रदायिक वैमनस्य से देश अब भी पूर्णतया मुक्त नहीं हो सका । इसे इतिहास की एक विडम्बना ही कहा जाना चाहिए ।

संयुक्त परिवार का विघटन

संयुक्त परिवार परंपरागत रूप से कायम था । लेकिन आलोच्य काल में इसमें विघटन शुरू होने लगा । पाश्चात्य व्यक्तिवाद का प्रभाव इसका कारण था । परंपरागत पारिवारिक अनुशासन शिक्षित भारतीयों के लिए असह्य था । एक परिवार में ही दो वर्ग स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे - एक ओर युग की प्रगति के साथ कदम बढ़ाने वाली नयी पीढ़ी और दूसरी ओर

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - P. 114
2. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी

रूढ़िग्रस्त पुरानी पीढ़ी । दोनों के बीच का संघर्ष सामाजिक जीवन में उलझन पैदा करता था । औद्योगिक विकास के फलस्वरूप परिवार के सदस्य नौकरी के लिए घर से दूर रहने लगे । फलत: संयुक्त परिवार शिथिल हो गया । सम्मिलित परिवार प्रथा आजकल लुप्तप्राय है ।

पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव

पाश्चात्य सभ्यता से हमारा समाज सर्वांशत: प्रभावित है । रहन-सहन, शिक्षा, आचार-विचार एवं नैतिकता में विपुल परिवर्तन पश्चिमी संपर्क के कारण आया है[1] । नारी समाज भी अधिकाधिक पाश्चात्य प्रभावग्रस्त हो रहा है । आज की महिला आत्मनिर्भर रहना चाहती हैं । फ्रायड के यौन-दर्शन का प्रभाव भी आलोच्य कालीन समाज पर अंकित होता है । अवैध प्रेम और अंतर्जातीय विवाह आज सिर्फ मामूली बात है । पश्चिमी फैशन और सभ्यता के पीछे लोग पागल से हैं । फैशनपरस्ती कभी कभी अनैतिकता का भी कारण बनती है । स्वतंत्रता के बाद का सामाजिक मूल्य बोध उसके पहले की तुलना में बिलकुल भिन्न है । महात्मा गांधी ने हमारे समाज में नैतिकताबोध की प्रतिष्ठा परम आवश्यक मानी थी । उनके नारी जागरण और हरिजनोद्धार जैसे कार्यक्रम के पीछे नैतिकता काम करती थी । युगों से समाज द्वारा पीड़ित और उपेक्षित वर्गों में जागृति एक अनिवार्य ऐतिहासिक आवश्यकता थी । दुर्बलताओं को दूर करके स्वस्थ समाज की स्थापना करने की गहरी उत्सुकता आलोच्य काल की विशेषता है ।

---

1. B.N. Luniya - Evolution of Indian culture - p.518

आर्थिक परिस्थिति

भारत की आर्थिक सुरक्षा कृषि की वृद्धि पर अधिष्ठित है । अतः खेती पर सर्वाधिक ध्यान देना परम आवश्यक माना जाता है ।

अंग्रेज़ों ने इस पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया था । उन्होंने जनता का आर्थिक शोषण ही किया । इसलिए आलोच्य काल के आरंभ में कृषकों की दशा अत्यंत दयनीय थी । किसानों के परिश्रम के भोगी थे ज़मींदार और साहूकार । शोषक वर्ग धनसंचय में संलग्न था । गरीब जनता रोटी के टुकड़े के लिए तड़पती थी । बड़े बड़े ज़मींदार, किसानों की ज़मीन हड़प लेते थे । भूमिहीन कृषकों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती रही[1] । सरकार की भारी कर नीति ने भी कृषकों को अत्यधिक विवश कर दिया[2]। उन्हें यह अनुभव हुआ कि संघर्ष के बिना कृषकों की समस्या सुलझने वाली नहीं है ।

कृषक - आंदोलन

कृषकों के असंतोष का प्रथम विस्फोट गुजरात में हुआ । खेड़ा जिले के किसान अकाल के कारण कर चुकाने में असमर्थ बन गये । उन्होंने सरकार से कर हल्का करने की प्रार्थना की । सरकार ने प्रार्थना को ठुकरा दिया । फलतः 1919 में गांधीजी के नेतृत्व में खेड़ा के किसानों ने आंदोलन शुरू किया[3] । गुजरात, संयुक्त प्रांत और बिहार में यह आंदोलन व्याप्त हो गया । अंत में सरकार को कृषकों की सम्मिलित शक्ति के सामने सिर झुकाना पड़ा ।

---

1. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ. 162
2.
3. Jagadish Sharma - Encyclopaedia of India's struggle ofor freed[illegible] p.49

बिहार के चम्पारन गांव में नील की खेती करनेवाले कृषक भी सरकारी अत्याचारों से पीड़ित थे। गांधीजी ने इन किसानों की मुसीबतों का गहरा अध्ययन करके एक रिपोर्ट तैयार की। इसकेलिए उन्होंने 20 हज़ार किसानों के बयान अंकित किये। किसानों को नील की खेती से मुक्त कराया।[1]

गुजरात के सूरत जिले में बारदोली के किसानों पर सरकार ने 25 प्रतिशत मालगुज़ारी बढ़ा दी। जनता इससे क्षुब्ध हुई।[2] सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में कृषकों ने 1928 में सत्याग्रह शुरू किया। इसमें भी कृषक विजयी हुए।

मज़दूर - आंदोलन

किसानों की तरह मज़दूर भी राष्ट्र के शिल्पी हैं। उनके हितों की अवहेलना राष्ट्र की प्रगति के लिए घातक है। स्वतंत्र भारत का मज़दूर वर्ग जिन अधिकारों का अनुभव कर रहा है, उनसे परतंत्र भारत के मज़दूर वंचित थे।

कल-कारखानों में मज़दूरी करने वाली स्त्रियों और बच्चों की दर्दभरी अवस्था ने ही भारत में मज़दूर आंदोलन को जन्म दिया।[3]

मज़दूरों को अपने परिश्रम केलिए उचित वेतन नहीं मिलता था। मज़दूरी में वृद्धि मांगने पर मिलती थी पिटाई। मज़दूरों द्वारा हड़ताल शुरू किये जाने पर मिल मालिक कारखाने बंद कर देते थे। इस कारण मज़दूरों में

---

1. पट्टाभि सीतारामय्या - कांग्रेस का इतिहास - पृ.113-114
2. रामानन्द अग्रवाल - हमारा राष्ट्रीय आंदोलन तथा संवैधानिक विकास पृ.174
3. G.K. Sharma - Labour Movement In India - Its past and present p.45

और अशांति फैल जाती थी । कानपुर, बंबई, कलकत्ता, बिहार आदि नगरों के बड़े बड़े मिलों में हड़तालें हुई । असहयोग आंदोलन का श्रमिकों ने

किसान और मजदूर संगठन

कृषक और श्रमजीवी अपनी संगठित शक्ति से अवगत होने लगे । उन्होंने अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए दलबद्ध होने का निश्चय किया ।

सन् 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना हुई[1] । उनकी उपेक्षा अब संभव नहीं थी । ग्रामों तथा कृषकों के उद्धार के लिए कांग्रेस सरकार ने नये कदम उठाये । जमीन पर उनके स्वत्वाधिकार के लिए योजनाएं बनायी गई ।

आधुनिक औद्योगीकरण के साथ ही भारतीय मजदूर वर्ग का सच्चे अर्थ में संगठन शुरू हुए । बीसवीं शती के राजनैतिक परिवर्तनों ने मजदूर आंदोलनों को पहुँची है[2] । प्रथम विश्वयुद्ध को इसमें प्रेरक माना गया है । नवीन सामाजिक चेतना भी मजदूर संगठनों की स्थापना में सहायक रही ।

ट्रेड यूनियन

मजदूरों की मांगों की पूर्ति के लिए संगठित संस्था की आवश्यकता थी । अतः सारे देश में ट्रेड यूनियनें अस्तित्व में आए । उनके नेतृत्व में ही मजदूरों ने अपना संघर्ष जारी रखा ।

---

1. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.235

2. C.K. Sharma - Labour Movement in India - Its past and present p.60

सन् 1917 में अहमदाबाद में गांधी जी ने मज़दूर संघ की स्थापना की थी[1]। भारत के ट्रेड यूनियनों का अग्रणी था, मद्रास मज़दूर संगठन। इसकी स्थापना 1918 के आरंभ में हुई[2]। सन् 1920 में भारतीय मज़दूरों की प्रथम केन्द्रीय संस्था अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस[3] और 1946 में हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ[4] स्थापित हुए। इन संस्थाओं ने मज़दूरों की राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में पर्याप्त सहायता दी।

आज़ादी के साथ मज़दूर संगठन बहुत शक्तिशाली बन गए। उनके बहुतेरे कार्यकर्ता साम्यवादी विचार धारा से प्रभावित थे। उनके नेतृत्व में मज़दूरों ने शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई, संघर्ष किए, बहुत हद सफलता पाई।

आर्थिक स्थिति पर दोनों युद्धों का प्रभाव

युद्ध, राष्ट्र की स्थिति को परिवर्तित कर देता है। युद्ध के बाद कोई भी राष्ट्र पूर्व स्थिति में नहीं रहता। उसका समाज बदलता है, जीवन मूल्य बदलता है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों ने भारतीय जन जीवन को प्रभावित किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत को पहली बार मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा। दैनिक उपयोग की चीज़ों के मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि हुई[5]। साधारण जनता के लिए जिन्दगी भार रूप हो गई[6]। द्वितीय विश्वयुद्ध ने सभी राष्ट्रों की जीवन गति को बदला दिया। सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में स्थायी परिवर्तन हुआ। मालों की मूल्यवृद्धि के साथ आर्थिक समस्याएं

---

1. मन्मथ नाथ गुप्त - राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास - दूसरा सं॰ पृ॰389
2. G.K. Sharma - Labour Movement in India - its past and present p.77
3. Ibid p.78
4. कृष्णबिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ॰235
5. Ed. P.N. Gupta - Gazetteer of India Vol.II p.570

बहुत जटिल हो गई । युद्ध खतम होने पर जमाखोरी भी बढ़ गई । मार्केट ने काले धन के पूंजीभूत होने में मदद की । युद्ध के कुछ सत्परिणाम भी दृष्टिगत हुए । जनता की जीवन दृष्टि में स्वच्छन्दता और वैज्ञानिकता आ गई ।[1]

बेकारी की उग्रता और बंगाल का दुर्भिक्ष

सन् 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ । अब युद्ध सामग्रियों की आवश्यकता नहीं रही । अतः उत्पादन भी समाप्त कर दिया गया । अनेक कारखाने बन्द कर दिए गए । फलतः बड़ी संख्या में मज़दूर बेकार हो गये ।

सन् 1943 में बंगाल में अकाल छा गया । उसमें असंख्य व्यक्ति मृत्यु के शिकार हो गए ।[2]

भारत का औद्योगिक विकास

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही भारत में उद्योग धन्धों का पर्याप्त विकास हुआ । युद्धकाल में हथियारों के निर्माण के लिए कारखानें खोले गए थे । लोहा, इस्पात आदि के कारखाने खुलने पर धीरे धीरे भारत का औद्योगिक विकास होने लगा । सिंचाई की व्यवस्था हुई, बिजली का उत्पादन हुआ।

विदेशी मालों के बहिष्कार तथा स्वदेशी के उपयोग का गांधीजी ने जो आह्वान किया था, उसी से भारत में औद्योगिक युग का आरंभ होता है । किसानों के सम्मुख खादी और चरखा की योजना भी गांधीजी ने रखी ।

---

1. D.B. Bhutani - Economic story of modern India p.28
2. B.M. Bhatia - Famine In India (1860-1965) p.310

आर्थिक दुरवस्था से देश उद्धार करने के लिए उन्होंने इसे अत्यंत आवश्यक समझा।[1] चरखे को गांधीजी सत्याग्रह का सब अग से बड़ा हथियार घोषित करते थे।

नाना व्यवसायों और कारखानों की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय अर्थ व्यवस्था धीरे धीरे परिवर्तित होने लगी। हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी तदनुसार बदलने लगा।

धार्मिक परिस्थिति

धार्मिक स्थिति आलोच्यकाल में बड़ी संकीर्ण हो रही। जनता का ध्यान धर्म के बाह्याचारों और परंपरा परिपालनों पर अधिक टिका हुआ था। आध्यात्मिक विकास की अपेक्षा स्वार्थ पूर्ति केलिए ही ज्यादातर लोग भगवान की शरण जाते थे। यद्यपि निम्न वर्ग में जागरण के चिह्न लक्षित हुए फिर भी धार्मिक कट्टरता बढ़ती ही रही।

हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष

हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक संघर्ष बढ़ता ही रह गया। इसका मूल कारण राजनैतिक और सामाजिक ही माना जा सकता है। अंग्रेज़ों की फूट डालो और राज करो नीति ही इस वैमनस्य के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी थी।[2] सन् 1923-24 से लेकर साम्प्रदायिक दंगों ने भीषण रूप धारण किया। अनेक मस्जिदों और मंदिरों का ध्वंस किया गया।

---

1. M.K. Gandhi - Socialism of My conception - p.121
2. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.169

हज़ारों की हत्या हुई[1] । दोनों जातियों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न गांधीजी ने निरंतर जारी रखा । लेकिन उन्हें अभीप्सित सफलता नहीं मिली । इस धार्मिक संघर्ष ने ही भारत को दो राष्ट्रों में विभक्त किया ।

धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन

इसका मतलब यह नहीं कि धार्मिक स्थिति में केवल पतन ही लक्षित होता है । हमारे सभी सुधारात्मक आन्दोलनों की आधार भूमि धर्म ही रही है । इसका कारण जनता की अनिमाप्य धर्मभुवनता है । महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने इसी कारण अपने आंदोलनों के मूल में आध्यात्मिकता को स्थान दिया । धार्मिक विश्वासों को धक्का लगाये बिना ही उन्होंने अनाचारों के विरुद्ध कार्य किया ।

फलस्वरूप जादू-टोना, झाड़ फूंक जैसे अर्थहीन आचरणों पर जनता का विश्वास हटने लगा । छुआछूत, खान-पान संबन्धी परहेज आदि लुप्तप्राय होने लगे ।

परंपरा - पोषित बाह्याचारों और अंधविश्वासों के अड्डे थे भारतीय गांव । धर्माधिकारी अशिक्षित, भोली-भाली ग्रामीण जनता का निरंतर शोषण करते थे । पर स्वातंत्र्य की उपलब्धि से इसमें परिवर्तन आया । सार्वजनिक शिक्षा के प्रचार ने जनता को उद्बुद्ध किया, धीरे-धीरे वह अन्ध परंपरा से विमुक्ति की चेष्टा करने लगी ।

---

1. A.R. Desai - Recent Trends in Indian Nationalism p.43

प्राक् स्वाधीनता युग के राजनीतिक सामाजिक आर्थिक व धार्मिक परिस्थितियों से तत्कालीन साहित्य अप्रभावित रह नहीं सका । इसका उत्तम निदर्शन है, हिन्दी का नाटक साहित्य । जयशंकर प्रसाद और उनके समकालीन नाटककारों ने सामाजिक स्थिति पर यथावत् ध्यान दिया । उनके परवर्ती नाटककार सामाजिक समस्याओं की ओर विशेष भी जागरूक दिखाई पड़ते हैं । उनकी कृतियों के सामाजिक परिवेश की सम्यक् अवधारणा के लिए प्रसाद जैसे प्रमुख कृतिकारों की सामाजिक चेतना का विवेचन आवश्यक है ।

प्रसाद के नाटकों में सामाजिक चेतना

भारतेन्दु का देहान्त सन् 1885 में हुआ । उसके पच्चीस वर्ष के बाद [1910] जयशंकर प्रसाद का जन्म होता है । यह अन्तराल नाटक-रचना की दृष्टि से ठहराव का काल है[1] । प्रसाद के नाट्य साहित्य के समान प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य भी समकालीन समाज का यथार्थ दर्पण है ।

प्रसाद ने उपन्यास, कहानी, कविता जैसी साहित्यिक विधाओं में अपनी सृजन शक्ति का परिचय दिया । पर नाटक के क्षेत्र में उनका योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । वे एक अर्थ में हिन्दी के प्रथम मौलिक नाटककार हैं ।

प्रसाद सोद्देश्य कलाकार थे । उनकी नाट्य रचना का लक्ष्य केवल रसानुभूति नहीं था । वे अवश्य स्वर्णिम अतीत के चित्रकार थे । उन्होंने अतीत का संबंध वर्तमान समाज से जोड़ दिया[2] । तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक वातावरण से प्रसाद की प्रतिभा संपृक्त थी[3] ।

---

1. रामगोपाल सिंह चौहान - हिन्दी नाटक : सिद्धांत और समीक्षा पृ॰66
2. सावित्री सिन्हा - हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास - पृ॰142
3. कमलिनी मेहता - नाटक और यथार्थवाद - पृ॰123

लेखक के इस अंत: संघर्ष के निदर्शन हैं - "राज्यश्री","अजातशत्रु", "विशाख" "कामना", "जनमेजय का नागयज्ञ", "स्कन्दगुप्त", "चन्द्रगुप्त"और "ध्रुवस्वामिनी"

राज्यश्री [1915]

यह एक ऐतिहासिक नाटक है । इसमें हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री की वीरता का अंकन है । फिर भी इसकी घटनाओं का परोक्ष संबंध आधुनिक सामाजिक जीवन से है ।

प्रसाद-युग नारी जागरण का युग था । गांधी जी के नेतृत्व में राजनीति में धीरे-धीरे महिलाओं का पदार्पण होने लगा था । घर की सीमा लांघ कर सामाजिक - राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने लगी थी । ऐसी उद्बुद्ध नारी का प्रतीक है, प्रस्तुत नाटक की नायिका राज्यश्री ।

नारी जागरण के अतिरिक्त और सामाजिक समस्याएं भी नाटक में अभिव्यक्ति पाती हैं । धर्म के नाम पर लोगों का शोषण करनेवाले धर्माध्यक्षों के अनैतिक जीवन का प्रसाद[1] अनावरण करते हैं । राज्यश्री का विकटघोष का जीवन इसका उदाहरण है ।

प्रसाद नारी की स्वाभाविक महिमा के ज्ञाता हैं और निरंतर उसके उद्धार की आवश्यकता की बात अपनी रचनाओं में उठाते हैं । नारी परिस्थितिवश ही वेश्या बनती है, उसके पतन का कर्ता उस का सामाजिक परिवेश है[2] । राज्यश्री में वेश्या समस्या को उठाकर प्रसाद इसी बात का समर्थन करते हैं । यह नाटक समाजव्यापी अन्धविश्वासों पर भी प्रकाश डालता है । प्रतिमा के हंसने से अपशकुन होता है, लोगों के इस विश्वास का परामर्श यही सूचित करता है ।

1· जयशंकर प्रसाद - राज्यश्री - दसवां सं· तृतीय अंक - पृ·51

2· वही पृ·50

विशाख [1922]

इसकी रचना उस समय हुई जब स्वतंत्रता संघर्ष जोरों पर चल रहा था। जालियांवाला बाग की नृशंस हत्या के खिलाफ जन मानस उबल रहा था। स्वराज्य की धूम मच रही थी। इन परिस्थितियों से प्रसाद अनिवार्य रूप से अभियुक्त है। उसकी परिस्फूर्ति इस में मिलती है।

इस प्रेमानन्द [एक साधु महात्मा] गांधी जी के आदर्शों पर चलनेवाला है "सत्य को सामने रखो, आत्मबल पर भरोसा, रखो, न्याय की मांग करो"[1]। इन शब्दों में मानों गांधी जी के वचनों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। धर्माचार्यों के अत्याचारों की अवहेलना इस में भी पाई जाती है। ऐसे धर्माचार्यों की हमारे समाज में कमी नहीं है जो जनता की भाव दुर्बलता से लाभ तो उठाते हैं और महिलाओं को बहकाकर उनके गहने छीन लेते हैं और कभी कभी उनका घात कर[2]

गरीबी की समस्या भी "विशाख" में उठायी जाती है। दुख से विकल इरावती का मार्मिक है[3]। इरावती केवल एक व्यक्ति नहीं गरीब भारतीय नारी की प्रतिनिधि है।

अजातशत्रु [1922]

यह नाटक समकालिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रणीत है। स्वाधीनता की भावना इसमें भी कूट-कूट कर भरी है।

इसका एक पात्र स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए सब कुछ न्योछावर करने का प्रण लेता है[4]।

---

1. जयशंकर प्रसाद - विशाख -सप्तम सं॰ -तृतीय अंक - पृ॰77
2. वही - पृ॰82
3. वही प्रथम अंक - पृ॰15
4. वही - अजातशत्रु - उन्नीसवां सं॰ पृ॰63

गांधी जी ने अंग्रेज़ों की भारी कानीति है । जनता को मुक्त करने का प्रयास किया । "अजातशत्रु" का समुद्र गुप्त भी यही कार्य करता है[1]।

नारी जागरण भी इस नाटक में स्थान पाता है । जागृत नारी, पुरुष की कृपा पर जीवित रहना नहीं चाहती । वह अपने को पुरुष के समकक्ष मानती है । नाटक की शक्तिमती[2] और छलना[3] नारी-जागरण का प्रतिनिधि करती हैं । वे नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का उद्बोध करती हैं ।

ऊँच-नीच भावना का विरोध भी "अजातशत्रु" में स्थान पाता है । दासी पुत्र है विरुद्धक । राजपुत्र होने पर भी माता के दासी होने के कारण विरुद्धक नीच जन्मा माना जाता है । उसे राजाधिकार से वंचित रहना पड़ता है । गौतम [बुद्धदेव] इस सामाजिक मान्यता का कड़ा विरोध करता है[4]।

बिम्बिसार, प्रसेनजित और उदयन के असन्तुष्ट वैवाहिक जीवन चित्रित करते हुए प्रसाद, बहु-विवाह के दोषों पर प्रकाश डालते हैं[5]। श्यामा के माध्यम से वेश्या-समस्या भी उठायी जाती है । मल्लिका दीनहीन विधवा-जीवन का प्रतीक है । श्यामा और शैलेन्द्र का जीवन अंकित करते हुए प्रसाद, अवैध प्रेम की जटिलता की ओर संकेत करते हैं । इस नाटक में दिखाया गया है कि एक बन्दी को छोड़ने के लिए दण्डनायक हज़ार मोहरें रिश्वत मांगता है[6]।

---

1. जयशंकर प्रसाद - अजातशत्रु
2. जयशंकर प्रसाद - " " उन्मीलिका सं० तीसरा अंक - पृ०117
3. वही पहला अंक - पृ०
4. वही तीसरा अंक - पृ०125
5. रविशेखर नेथानी - जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन - पृ०51
6. जयशंकर प्रसाद - अजातशत्रु - पृ०76

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस नाटक की सामाजिक समस्याएं वर्तमान कालिक हैं। उन के परिहार की आवश्यकता पर लेखक पात्रों के माध्यम से बल देते हैं।

कामना [1923-24]

यह एक प्रतीकात्मक रचना है। विलास, दम्भ, कामना, महत्वाकांक्षा जैसी मनोवृत्तियां इसके पात्र हैं। इन के द्वारा नाटककार वैवाहिक मान्यता में परिवर्तन, पाश्चात्य प्रभाव का निराकरण नारी-स्वतंत्रता की आवश्यकता गरीबी निवारण इत्यादि आवश्यकता स्थापित करते हैं।

प्रसाद का विचार है कि अपने जीवन साथी को चुन लेने की स्वतंत्रता प्रत्येक पुरुष और स्त्री को दी जानी चाहिए[1]। प्रसाद पसन्द नहीं करते[2]।

नाटककार की दृष्टि में गरीबी एक विकट समस्या है। वही सब पापों की जननी है[3]।

जनमेजय का नागयज्ञ [1926]

यह ऐतिहासिक नाटक है, पर इसका सामाजिक पक्ष भी उतना ही प्रबल है। आर्य नाग संघर्ष का चित्रण है। इसके द्वारा प्रसाद सन् 1926 के हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष की ओर संकेत करते हैं[4]।

---

1. जयशंकर प्रसाद - कामना - सप्तम सं॰पहला अंक-तीसरा दृश्य - पृ॰15
2. वही दूसरा अंक-चौथा दृश्य - पृ॰44
3. वही सातवां दृश्य - पृ॰56
4. केमलिनी मेहता - हिन्दी नाटक और यथार्थवाद - पृ॰224

महात्मागांधी हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो प्रयत्न करते थे। प्रायः वही प्रयत्न इसका पात्र आस्तिक करता है[1]। वह आर्यों और नागों का संघर्ष समाप्त करके आर्य सम्राट का विवाह नाग कन्या से कराता है। हिन्दू मुस्लिम समन्वय की सूचना देता है।

नारी-स्वातंत्र्य का समर्थन भी इसमें है। इसमें बताया गया है कि पुरुष को और सब अधिकार है। पर स्त्री की सहज स्वतंत्रता का अपहरण करने का नहीं[2]। पश्चिमी फैशन का मोह प्रसाद भारतीय नारी के लिए हितकारी नहीं समझते। शीला, पश्चिमी फैशन के अनुकरण को केवल विडम्बना मात्र मानती है[3]। उसका अभिमत है कि स्त्रियाँ विशेष शृंगार का ढोंग करके अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता भी खो बैठती हैं[4]।

दामिनी और वेद की कथा के द्वारा अनमेल विवाह के दोषों पर भी प्रसाद प्रकाश डालते हैं। सामाजिक जीवन की सुस्थिति के लिए सबल तथा संयमित जीवन की आवश्यकता है, यही प्रसाद का दृष्टिकोण है।

स्कन्दगुप्त {1928}

प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ रचना है "स्कन्दगुप्त"[5]। इसका इतिवृत्त भारतीय इतिहास के सुवर्णकाल {गुप्तकाल} से स्वीकृत है[6]। यद्यपि इसकी कथा ऐतिहासिक है तथापि आधुनिक भारतीय समाज के उथल-पुथल की इसमें अभिव्यक्ति आती है। इसकी रचना उस समय हुई जब गांधीजी का आन्दोलन असफल हो चुका था और देश भर में नैराश्य छाया हुआ था। उसकी स्पष्ट छाप "स्कन्दगुप्त" पर दृष्टव्य है[8]।

---

1. क्षेमनिधी मेहता - जनमेजय का नागयज्ञ - अष्टम सं-तीसरा अंक-छठा दृश्य पृ.88
2. वही पहला अंक-पांचवां दृश्य- पृ.35
3. जयशंकर प्रसाद - जनमेजय का नागयज्ञ-तीसरा अंक-चौथा दृश्य - पृ.82
4. वही
5. सं.दशरथनाथ मदान - हिन्दी नाटक और रंगमंच - पहचान और परख प्रथम सं.1975 पृ.18

राष्ट्र की महिमा और स्वातंत्र्य का मंत्र स्कंदगुप्त में मुखरित है[1]। नारी के स्वाभिमान और स्वतंत्रता प्रेम को इस नाटक में अभिव्यक्ति मिली है। उन दिनों गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय महिलाएं स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग ले रही थीं। "स्कन्दगुप्त" की जनता में हम स्वतंत्रता के लिए आत्मबलि देनेवाली महिलाओं की झांकी पाते हैं[2]। स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति देना विजया, नारी-समाज का कर्तव्य मानती है[3]।

प्रसाद की मान्यता है कि समाज में नारी का स्वतंत्र-अस्तित्व पुरुष द्वारा स्वीकार किया जाय[4]।

दहेज प्रथा का विरोध भी "स्कन्दगुप्त" में द्रष्टव्य है। देश की गरीबी का चित्रण भी नाटक में गरीब जनता को ऐसी सूखी रोटियां बचाकर रखनी पड़ती हैं, जिन्हें कुत्तों को देते हुए संकोच होता था। अन्य भिक्षु के समान लोग उन कुत्सित अन्नों पर पहरा देते हैं[5]। इसका पात्र पर्णदत्त, भीख मांगकर गरीब बच्चों की भूख मिटाने की कोशिश करता है[6]।

कुत्सित कर्म करनेवाले धन-लोभी पंडे-पुरोहितों के दुष्कर्म का प्रसाद ने इस नाटक में खुलकर विरोध किया है। ब्राह्मण के प्रति मातृगुप्त की उक्ति इसका प्रमाण है[7]। यह नाटक सार्वजनीन परिप्रेक्ष्य में रचित है, इसलिए उसमें उठाई गई समस्याएं किसी देश विशेष संबंधी नहीं हैं।

---

1. गोविन्द चातक - प्रसाद नाट्य और रंग शिल्प - पृ. 14
2. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त - पन्द्रहवां सं. चतुर्थ अंक - पृ. 125
3. जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त - पन्द्रहवां सं. चतुर्थ अंक सातवां दृश्य-पृ. 126
4. वही प्रथम अंक - तीसरा अंक - पृ. 24
5. वही पंचम अंक - दूसरा दृश्य - पृ. 131
6. वही तीसरा दृश्य - पृ. 140
7. वही चतुर्थ अंक - पांचवां दृश्य- पृ. 117-118

चन्द्रगुप्त [1931]

"चन्द्रगुप्त" नाटक प्रसाद की नाट्य प्रतिभा की उज्ज्वल उपलब्धि है । इतिहास प्रसिद्ध मौर्यवंश से इसका कथानक संबंधित है । इस विषय को लेकर अन्य भाषाओं में भी अनेक नाटक लिखे गए हैं । फिर भी यह नाटक उनसे इसलिए भिन्न है कि इसके पात्र ऐतिहासिक होतेहुए भी अद्यातन मानव हैं[1] । इसमें मौर्यकालीन भारतीय राजनीति का चित्रण है । नंदवंश के पतन और यवनों के आक्रमण से जर्जित दुरवस्था से चाणक्य ने कैसे देश को बचा लिया, यह इसमें प्रतिपादित होता है । आधुनिक भारत की राजनैतिक स्थिति से इसका सीधा संबंध है ।

नाटक के रचनाकाल में हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य भारतीय राजनीति की एक विकट समस्या बन चुका था । अंग्रेज़ उससे अनुचित लाभ उठा रहे थे । इस बात का संकेत प्रस्तुत नाटक में मिलता है । इसका ब्रह्मचारी कहता है - "महापद्म का जारज पुत्र केवल शस्त्र बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के शिखर पर ताण्डव नृत्य कर रहा है । वह सिद्धान्त विहीन नृशंस कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेद नीति चलाकर बल संचय करता रहता है[2] ।

प्रतियोगी का हृदय-परिवर्तन सत्याग्रह-संग्राम का प्रमुख तंत्र था । "चन्द्रगुप्त" उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है[3] । गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव यहाँ प्रत्यक्ष है ।

गांधी जी के अछूतोद्धार प्रयत्न से प्रसाद प्रभावित थे । इस नाटक के नायक चन्द्रगुप्त का जीवनोद्देश्य पतितोद्धार ही है । वे अपने को मगध की पीड़ित पद-दलित लोगों का सेवक मानते हैं[4] ।

---

1. डॉ.गोविन्द चातक - प्रसाद के नाटक : स्वरूप और संरचना-प्रथम सं.1975 पृ.149
2. जयशंकर प्रसाद - चन्द्रगुप्त - तेरहवाँ सं.प्रथम अंक - पृ.58
3. वही

चन्द्रगुप्त का विवाह यवनकन्या कार्नेलिया से हो जाता है[1]। इस विवाह का एक महत्वपूर्ण सामाजिक तथा राजनैतिक प्रयोजन है। चाणक्य ने विदेशी आक्रमण की विपत्ति को हमेशा केलिए दूर करने के उद्देश्य से ही चन्द्रगुप्त से कार्नेलिया का वरण कराया। इसका संबंध भारत की आधुनिक अवस्था से जोड़ा जा सकता है। यहाँ दो प्रबल जातियाँ [हिन्दू और मुसलमान] परस्पर लड़ रही थी। इससे देश का अहित होता था। प्रसाद जी संभवतः यह चाहते थे कि वैवाहिक संबंध के द्वारा पारस्परिक वैमनस्य हटाया जाये।

अलका, कल्याणी, मालविका आदि नारी पात्र प्रसाद-युगीन जागृत नारी समाज के प्रतिनिधि है[1]। ये महिलाएँ स्वावलंबी बनना चाहती हैं, पुरुष के अधिकार और दया पर जीना पसन्द नहीं करतीं। "यवनों के हाथ स्वाधीनता बेचकर उनके दान से जीने की शक्ति मुझमें नहीं" कहनेवाली अलका सचमुच नारी-स्वातंत्र्य की उत्कट अभिलाषा प्रकट करती है।

सिकन्दर के मुंह से "मगध का वर्तमान शासक एक नीच जन्मा जारज पुत्र है" कहलवाकर नाटककार ने प्राचीन भारतीय समाज के ही नहीं वर्तमान भारत के भी भेद-भाव की ओर संकेत किया है।

<u>ध्रुवस्वामिनी [1933]</u>

इसमें गुप्त साम्राज्य की लक्ष्मी ध्रुवस्वामिनी के स्वाभिमान का चित्रण है। इसकी रचना तब हुई जब सामाजिक और धार्मिक स्तर पर नारी के उत्थान का प्रारंभ हो गया था[2]। स्वाभाविक है कि इस रचना में विधवा विवाह, नारी का स्वत्वाधिकार विवाह मोक्ष जैसी सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान दिया गया है। डॉ॰ गोविन्द चातक लिखते हैं - "ध्रुवस्वामिनी में नारी के अस्तित्व, स्वातंत्र्य और मोक्ष की जो समस्या प्रसाद ने इतिहास के पृष्ठों से उठाई है वह स्वयं अपने युग की नारी की समस्या थी[3]।

1.
2. डॉ॰ पुरुषोत्तम दास अग्रवाल-ध्रुवस्वामिनी का शास्त्रीय विवेचन-पृ॰सं॰पृ॰16।

प्रसाद, विवाह-मोक्ष या तलाक का पक्षपाती है[1]। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से विवाह मोक्ष प्राप्त करके चन्द्रगुप्त से विवाह कर लेती है[2]। इससे नारी स्वातंत्र्य का समर्थन तो होता है, पुरुष की विलासिता की अवहेलना भी हो जाती है ।

ऐतिहासिक नाटककार होते हुए भी प्रसाद में सामाजिक चेतना, पूर्णत: वर्तमान थी । उनका प्रत्येक पात्र चाहे वह ऐतिहासिक हो या काल्पनिक, उनकी सामाजिक समस्याओं से संबंध रखता है । प्रसाद जानते थे कि ऐतिहासिकता, सामाजिकता का नामान्तर मात्र है । यही कारण है कि उनके नाटकों में वर्तमान युग की अनेक समस्याएं उठायी जाती हैं, उनका समाधान ढूंढा जाता है[3]। प्रसाद की सामाजिक दृष्टि विशिष्ट है । वह सतह पर अटकनेवाली नहीं, गहराई तक पहुंचकर वह समस्या के मूल को पकड़ लेना चाहती है[4]। यह विशेषता उस युग के बहुत कम नाटककारों में पायी जाती है ।

प्रसाद कालीन अन्य प्रमुख नाटककार हैं - हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, पं॰उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क और वृन्दावनलाल वर्मा । ये लेखक स्वातंत्र्योत्तर काल में भी नाटक लिखते रहे हैं । इनकी कृतियों में भी सामाजिक समस्याओं के समाधान की चेष्टा पाई जाती है । अब उनका विवेचन किया जाएगा ।

कुछ उनका विवेचन [illegible] ।

<u>हरिकृष्ण प्रेमी</u>

प्रसादोत्तर नाटककारों सर्वथा प्रमुख हैं हरिकृष्ण प्रेमी । इनका रचना-काल स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से लेकर स्वतंत्रता युग के लगभग तीन दशकों तक व्याप्त है ।

1• जयशंकर प्रसाद - ध्रुवस्वामिनी - सप्तवां सं॰ तृतीय अंक - पृ॰63
2• वही पृ॰64
3• शशि शेखर नैथानी - जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन" प्रथम सं॰ - पृ॰51
4• डा॰ बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक - प्रथम सं॰ - पृ॰54

रचनाओं की संख्या लगभग तीस है ।

"प्रेमी" जी के नाटक मुख्य रूप से ऐतिहासिक हैं । पर यह नहीं नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने सामाजिक नाटकों का प्रणयन नहीं किया । इनके तीस नाटकों में से तीन पूर्णतया सामाजिक हैं ।[1]

"प्रेमी" जी के प्रायः सभी नाटक मुगल काल से संबद्ध है, पर उनका वातावरण वर्तमान युग का है । गांधीवाद का नाटकों पर गहरा प्रभाव है । हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य इनके साहित्य की प्राण धारा है । स्वदेश प्रेम इनका धर्म है ।

"प्रेमी" के "रक्षाबन्धन" [1934] "प्रतिशोध" [1937] जैसे नाटकों में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का समर्थन तथा विघटनवादी प्रवृत्तियों का विरोध पाया जाता है । नाटककार की मान्यता है कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके चरित्र पर अधिष्ठित है, जाति पर नहीं । "प्रतिशोध" में भी इसी विचार धारा का समर्थन है[2] । "प्रेमी" के अनुसार मनुष्य - हृदय के प्रकाश का नाम है मज़हब । इसके नाम पर तलवार चलाना धर्म का अपमान करता है[3] । "रक्षा बन्धन" में बहादूर शाह के गुरु शाह शेख, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का कड़ा विरोध करते हैं । उनकी दृष्टि में हिन्दुस्तान में रहनेवाले मुसलमान भी हिन्दू हैं[4] ।

हरिकृष्ण प्रेमी अखण्ड भारत का स्वप्न देखनेवाले थे । देश के विभाजन के कारण उनके सारे स्वप्नों का भंग हो गया । इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति "स्वप्न भंग" [1934] में मिलती है[5] ।

1• विश्व प्रकाश दीक्षित बटुक - नाटककार हरिकृष्ण "प्रेमी" व्यक्तित्व और कृतित्व - प्रथम सं• - पृ•43

2• हरिकृष्ण प्रेमी - प्रतिशोध - तीसरा सं•1956 - तीसरा अंक - पांचवां दृश्य पृ•121

3• हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षा बन्धन - इक्कीसवां सं•प्रथम अंक-तीसरा दृश्य-पृ•22

4• वही प्रथम अंक - चौथा दृश्य - पृ•27

5• हरिकृष्ण प्रेमी - स्वप्न भंग - चौथा सं• तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ•103

"प्रेमी" धार्मिक भेद-भाव के विरोधी और समन्वय के समर्थक हैं। वे अपनी सभी नाट्य रचनाओं में इस आदर्श की स्थापना करते हैं। ऐतिहासिक नाटकों में धार्मिक एकता का वे समर्थन करते हैं। समाज की सुस्थिति, भिन्न समुदाय के ऐक्य में है, "रक्षा बन्धन" की विचार धारा यही है।[1]

मेवाड की रानी है, कर्मवती। वह मुगल सम्राट को राखी भेजती है। राखी स्वीकार करके हुमायूं चित्तोड की रक्षा करते हैं।[2] धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता का इसमें प्रतिपादन है।

"आहुति" [1940] का हिन्दू राजा हम्मीर, मुसलमान मीर महिमा को अपना भाई मानता है।[3] हम्मीर की महारानी है देवल। वह भैया दूज के दिन में अपने हाथों से एक मुसलमानी सेनानी के माथे पर टीका लगाती है।[4]

गांधीजी के सुधारात्मक कार्यक्रमों पर लेखक के मन में गहरी श्रद्धा है। उच्च नीचता का निवारण और समानता की स्थापना उनकी दृष्टि में सामाजिक पुनर्गठन केलिए आवश्यक है।

प्रेमी जी शिवाजी में सच्चे राष्ट्रनायक के दर्शन करते हैं। उनके शिवाजी कहते हैं - "मेरे शेष जीवन की एकमात्र साधना होगी भारत वर्ष को स्वतंत्र करना, दरिद्रता की जड खोदना, ऊंच नीच की भावना और धार्मिक व सामाजिक असहिष्णुता का अन्त करना, राजनीतिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की क्रान्ति करना।[5] दरिद्र किसानों, अभावग्रस्त श्रमजीवियों और मध्यवर्ग के साधनहीन व्यक्तियों को लेकर शिवाजी स्वाधीनता - संग्राम शुरू करते हैं। उनका विश्वास है कि राजा महाराजाओं और धनिकों का सहयोग

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षा बन्धन - दूसरा अंक - छठा दृश्य - पृ.36
2. विश्वप्रकाश दीक्षित बंटुक - नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी - व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ.36
3. विश्वप्रकाश दीक्षित बंटुक - आहुति चौबीसवाँ सं. पहला अंक - दूसरा दृश्य पृ.13
4. वही
5. हरिकृष्ण प्रेमी - शिवसाधना - छठा सं.1961 पहला अंक-पहला दृश्य-पृ.19

मिलने पर विदेशी शासन का उन्मूलन अनायास हो जायेगा[1]।

भारतीय स्वतंत्रता - संग्राम का उज्ज्वल वर्णन "प्रेमी" की रचनाओं में प्राप्त है। "शिव साधना" [1937] की जीजा बाई अपने मुल्क की आज़ादी केलिए जान दे देना सबसे बड़ा मनसब मानती है[2]। उसके जीवन का आत्यंतिक लक्ष्य देशकी स्वाधीनता है[3]। गुरु राम दास आज़ादी केलिए बलिदान आवश्यक मानते हैं[4]। स्वतंत्रता देश की सब व्याधियों की एकमात्र औषधि है[5]। "प्रतिशोध" का प्राण नाथ स्वातंत्र्य यज्ञ में सब कुछ न्योछावर करने का सन्देश देता है[6]।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में राष्ट्रीय एकता पर सर्वत्र बल दिया जाता है एकता के बल पर ही राष्ट्र स्वतंत्र बन सकता है। देश को आज़ाद बना लेना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। "रक्षा बन्धन" का पात्र विजय, प्रेमी के इस आदर्श को सामने रखता है[7]।

महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन से भी "प्रेमी" प्रभावित है। "आहुति" और "बन्धन" [1941] इसके निदर्शन है। "आहुति" की महाराणी हिंसा के परिणाम को अस्थायी मानती है और आत्मबलि के परिणाम को अजर अमर[8]। "बन्धन" में मज़दूर नायक मोहन अहिंसा के बल पर मिल मालिकों पर विजय पाना चाहता है[9]।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - शिवसाधना - तीसरा अंक - सातवाँ दृश्य - पृ. 107
2. वही — चतुर्थ सं. 1956, तीसरा अंक, सातवाँ दृश्य पृ. 120
3. वही — पहला अंक, दूसरा दृश्य — पृ. 23
4. वही — पहला अंक, छठा दृश्य — पृ. 43
5. वही — पाँचवाँ अंक, छठा दृश्य — पृ. 175-176
6. हरिकृष्ण प्रेमी - प्रतिशोध, पहला अंक, पहला दृश्य — पृ. 15
7. हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षा बन्धन, दूसरा अंक, तीसरा दृश्य — पृ. 52
8. " आहुति
9. हरिकृष्ण प्रेमी - बन्धन, पाँचवाँ सं. पहला अंक, दूसरा दृश्य - पृ. 16

नारी - जागरण भी हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में स्थान पाता है। वे नारी स्वातंत्र्य के समर्थक हैं। उनके नारी पात्र पुरुषों के अत्याचारों का विरोध करते हैं। "रक्षा बन्धन", "शिव साधना" "छाया", "प्रतिशोध" जैसे नाटक इसके उदाहरण हैं।

"छाया ( ) की ज्योत्सना अपने पति के स्वार्थ मोह का कुछ विरोध करती है और अपना अलग अस्तित्व स्थापित करना चाहती है[1]। "रक्षा बन्धन" की श्यामा मेवाड़ वीरों को समर भूमि की ओर अग्रसर होने का आह्वान देती है[2]। "शिव साधना" में गुरु रामदास स्वातंत्र्यलक्ष्य केलिए नारी का सहयोग अनिवार्य मानते हैं[3]। "प्रतिशोध" में नारी" जागरण द्वारा युग-परिवर्तन संभव माना जाता है[4]।

हरिकृष्णप्रेमी के अनुसार "सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह परम आवश्यक है। पर्दा-प्रथा नारियों के लिए अपमानजनक है। "स्वप्न भंग" की रोशन आरा कहती है कि हमारे मर्दों ने स्त्रियों का पर्दे में बन्द कर उन्हें दुर्बल बना दिया[5]। विधवा की हीन दशा का परिचय "बंधन" में मिलता है। इसकी सरला एक विधवा है। उसे ससुराल में कोई आश्रय नहीं मिलता। अपने माँ-बाप से भी उसे चैन नहीं मिलता[6]।

वेश्या समस्या पर भी "प्रेमी" ने विचार किया है। "छाया" नाटक में वे यह साबित करते हैं कि समाज ही स्त्री को कलंकी बना देता है। इस नाटक की माया अपने परिवार को आर्थिक संकट से बचाने केलिए वेश्या बन जाती है[7]। "विषपान" (1940) में "प्रेमी" ने वेश्याओं के प्रति समाज के घृणापूर्ण व्यवहार की भर्त्सना की है[8]।

1· हरिकृष्ण प्रेमी - छाया - चौथा सं·1958, पहला अंक, पाँचवाँ दृश्य-पृ·23
2· वही रक्षाबन्धन - दूसरा अंक, पाँचवाँ दृश्य - पृ·62
3· वही शिवसाधना - पहला अंक, छठा दृश्या- पृ·44-45
4· वही प्रतिशोध - तीसरा सं·1956
5· वही स्वप्न भंग - दूसरा अंक - चौथा दृश्य - पृ·65
6· वही बन्धन - पहला अंक, सातवाँ दृश्य - पृ· 32
7· वही छाया, छठा सं· पहला अंक - चौथा दृश्य - पृ· 14

प्रेमी समत्ववादी हैं। उच्च जातियों के दम्भ और अत्याचार उन्हें सह्य नहीं है। "रक्षा बन्धन" में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं[1]। "स्वप्न भंग" पर साम्यवादी विचार धारा का प्रभाव है[2]। "विषपान" का जवानदास और धीमर[3] ऊँच-नीच भावना का कड़ा विरोध करते हैं।

पूँजीपतियों के शोषण और अत्याचार के प्रति नाटककार, प्रेमी क्षुब्ध हैं। "बन्धन" का मोहन, पूँजीवाद की समाप्ति को अपना जीवन लक्ष्य मानता है[4]। देश की आर्थिक असमानता पर हरिकृष्ण प्रेमी बहुत दुःखी हैं। संपत्ति पर सबका समान अधिकार ही उनकी दृष्टि में वांछनीय है। "बन्धन" नाटक में यह भावना अभिव्यक्त होती है। उनके विचार में धन पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं होना चाहिए। उसका उपयोग सामाजिक कल्याण केलिए किया जाना चाहिए[5]।

मज़दूर संघर्ष का चित्रण हरिकृष्ण प्रेमी के बन्धन में मिलता है। जुलूस निकालनेवाले मज़दूरों पर पुलिस गोली चलाती है। उसके लाठी-प्रहार से किसी का सिर फूटा, किसी की टाँग फूटी, किसी की आँख गई, किसी का हाथ उठा[6]।

"बन्धन" में गरीबी की समस्या उठायी जाती है। इसके अनुसार भारतीय समाज में मनुष्यों की हालत कुत्तों से अधिक शोचनीय है। पत्तलों की जूठन केलिए क्षुधार्थ मनुष्य छीना-झपटी करते हैं[7]। "शिव साधना" में गरीबी की

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षा बन्धन - दूसरा अंक, तीसरा दृश्य - पृ.51
2. वही - विषपान - दूसरा अंक, पहला दृश्य - पृ.31
3. वही दूसरा दृश्य - पृ.44
4. वही - बन्धन, पहला अंक दूसरा दृश्य - पृ.16
5. वही तीसरा अंक, चौथा दृश्य - पृ.88
6. वही पहला अंक, तीसरा दृश्य - पृ.19
7. वही पाँचवाँ दृश्य - पृ.25

चरम सीमा दिखाई गई है । लोगों को खाने केलिए अन्न नहीं, पहनने ओढ़ने केलिए कपड़े नहीं, घर बनवाने को उपादान नहीं[1] । स्वप्न भंग की समस्या भी यही है[2] ।

जैसा कि ऊपर सूचित किया गया, हरिकृष्ण प्रेमी ऐतिहासिक नाटककार के रूप में ही अधिक मशहूर हैं । यह ठीक है कि उनकी अधिकतर रचनाओं में ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण है । परन्तु गहराई से देखने पर यह विदित होगा कि वे ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से देश की सामाजिक समस्याओं का परिहार ही ढूंढ निकालते हैं । समस्या चाहे राजनैतिक हो या आर्थिक, धार्मिक हो या सांस्कृतिक, सबका संबंध मानव के सामाजिक जीवन से है । इसलिए हरिकृष्ण प्रेमी को सफल सामाजिक नाटककार की श्रेणी में ही स्थान दिया जाना चाहिए ।

पर इतना हम ज़रूर कहना चाहते हैं कि प्रेमी जी के नाटकों में उठायी जानेवाली सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएं हमारी ऐतिहासिक धरोहर हैं जिनका परिहार उतना सरल नहीं जितना कि समझा जाता है ।

<u>लक्ष्मी नारायण मिश्र</u>

लक्ष्मी नारायण मिश्र हिन्दी के युग प्रवर्तक नाटककार हैं । उन्होंने प्रसाद की अतिभावुकता से नाट्य साहित्य को मुक्त किया । वे स्वच्छन्द प्रेम, स्वप्न और उन्माद के विरोधी हैं । रोमांटिक रुग्णता से मिश्र जी ने ही हिन्दी नाट्य साहित्य को बचाया[3] ।

मिश्र हिन्दी के इब्सन कहे जाते हैं[4] । इस कथन की सार्थकता की परीक्षा हमारे लिए अपेक्षित नहीं है । व्यक्ति और समाज के प्रति मिश्रजी का अपना दृष्टिकोण है । उन केलिए दोनों की आभ्यंतर समस्याएं ही प्रमुख हैं । यहीं

1. हरिकृष्ण प्रेमी - शिवासाधना - पहला अंक, छठा दृश्य - पृ. 42
2. हरिकृष्ण प्रेमी - स्वप्न भंग - पृ.
3. वेदपाल खन्ना विमल - हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन

कारण हैकि वे हिन्दी के प्रथम समस्या नाटककार माने जाते हैं[1]। इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्ति तथा समाज की जटिल समस्याओं का गौरवयुक्त प्रतिपादन उन्हीं की कृतियों में पाया जाता है। उनके अधिकांश नाटकों की मूल समस्या है, सेक्स[2] प्रत्यक्ष प्रमाण है "मुक्ति का रहस्य" और "सन्यासी"।

"मुक्ति का रहस्य" [1932] में डिप्टी कलक्टर उमाशंकर अपने सरकारी पद को त्यागकर असहयोग आन्दोलन में भाग लेता है। इस कारण उसे दो वर्ष केलिए कारावास भोगना पड़ता है[3]। सन्यासी [1930] का मि॰ राय सविनय अवज्ञा आन्दोलन में शरीक होता है। वह भी सरकारी नौकरी छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़ता है। दीनधर की गिरफ्तारी और मुरलीधर की जेल-सजा के द्वारा नाटककार यही सिद्ध करता है कि आन्दोलन का समर्थन करनेवाले कलाकारों को सरकारी दण्ड मिलता था।

मिश्र जी देश-सेवक है। सब कुछ त्यागकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने का आह्वान वे अपने नाटकों द्वारा देते हैं। "सन्यासी" का विश्वकान्त, देश सेवा रत नवयुवक है। देशसेवा में बाधक होने के भय से वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करना नहीं चाहता।

"मुक्ति का रहस्य" गांधीवादी आदर्शों से अनुप्राणित है। इसका उमाशंकर गांधीवादी समाज सुधारक है। वह त्याग और आत्मोत्सर्ग का जीवन बिताता है। परम्परागत रूढ़ियों का ध्वंस करके उनके खण्डहरों पर नवीन मूल्यों का निर्माण करना चाहता है। इस सिद्धांत के समर्थन केलिए वह अविवाहित आशादेवी को अपने घर में बसा लेता है[4]।

---

1. माब्बाता ओझा - समस्या नाटक
2. गोपाल कृष्ण कौल - नाटककार अश्क - पृ॰36
3. लक्ष्मी नारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य - 1976, पहला अंक - पृ॰62
4. वही

स्वदेशी का जोरदार समर्थन सन्यासी में पाया जाता है।[1] किरणमयी, खद्दर की साड़ी पहनती है। वह खादी का प्रचार करती है। "राक्षस का मन्दिर" (1931) में भी यह आशा व्यक्त की जाती है कि खादी के उपयोग से ही भारत की गरीबी और गुलामी समाप्त हो जाएगी।[2]

मिश्रजी समाजवाद से भी प्रभावित हैं। सन्यासी का विश्वकान्त समाजवादी है।[3] उमाशंकर "मुक्ति का रहस्य" साम्यवादी आदर्शों से प्रेरित होकर ही अपनी सारी संपत्ति छोड़ देना चाहता है।[4]

पश्चिमी सभ्यता और फैशन का अतिप्रसार मिश्रजी, भारत के लिए अहितकर मानते हैं। इसपर उन्होंने अपना मंतव्य व्यक्त किया भी है।[5] "राक्षस का मन्दिर" में वे कहते हैं कि बाबू साहब अंग्रेजी पढ़कर नास्तिक हो गए हैं। भगवान पर विश्वास नहीं करते, सभा करके व्याख्यान देकर राम राज्य लाना चाहते हैं।[6] सन्यासी के प्रो॰ [illegible] रमाशंकर के चित्रण द्वारा भी वे अंग्रेजी सभ्यता का दुष्प्रभाव दिखाते हैं।[7] मिश्रजी को फरियाद है कि प्रसार से आधुनिक नारी समाज की पुरानी मान्यताओं को हवा में उड़ा देती है "आधी रात" (1937) की नायिका मायावती इसका उदाहरण है। उसका विवाह ही अंग्रेजी ढंग का हुआ था "जिसमें सन्देह है, डायवोर्स है, पुरुष के प्रति प्रतिहिंसा है, जिसके मूल में यह भावना है कि बच्चे न पैदा हो, किसी तरह का बन्धन न हो।[8] अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से भारतीयों के संस्कार

1• लक्ष्मी नारायण मिश्र - सन्यासी, दूसरा अंक, पृ॰110
2• वही राक्षस का मन्दिर, तृतीय सं॰तीसरा अंक,पृ॰13[illegible]
137
3• वही सन्यासी, तीसरा सं॰1961, तीसरा अंक,पृ॰14[illegible]
4• वही मुक्ति का रहस्य, पहला अंक, पृ॰78
5• वही राक्षस का मन्दिर,तृतीय सं॰1958,मेरा दृष्टिको[illegible]
6• वही वही पृ॰120
7• वही सन्यासी - पृ॰162
8• वही आधीरात, दूसरा सं॰1957, पहला अंक

विश्वास को धक्का लगा है[1]।

मिश्रजी के अनुसार कि आधुनिक शिक्षा मनुष्य को मशीन बना देती है। .... पश्चिमी आदर्श, पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी जीवन हमारे रक्त में विषैले कीटाणु की तरह प्रवेश कर हमें आक्रान्त बना रहे हैं[2]। 'सन्यासी' का केन्द्र ही एक कालेज है जहाँ सह-शिक्षा की व्यवस्था है। आज डिग्री के आधार पर ही अध्यापकों की नियुक्ति होती है, योग्यता के आधार पर नहीं[3]। मिश्रजी इसको उचित नहीं मानते। वे प्रस्तुत नाटक में 'योग्य' अध्यापक के रूप में प्रो॰रमाशंकर को प्रस्तुत करते हैं।

मिश्र के नाटकों में जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी की महिमा स्वीकृत है। आधी रात में राजनीतिक क्षेत्र में नारी की अधिकार प्राप्ति मान ली जाती है। सरकार स्त्रियों को पृथक् अधिकार दे रही है। व्यवस्थापिका सभाओं में पुरुषों के साथ विधान और व्यवस्था का काम उन्हें दिया जा रहा है[4]।

विधवाओं के प्रति उनकी दृष्टि सहानुभूतिपूर्ण है। समाज विधवाओं से उदारता का व्यवहार करे, यही उनकी इच्छा है। 'सिन्दूर की होली' (1933) की मनोरमा बाल-विधवा है। विधवा के संबंध में लेखक कहते हैं - विधवा अग्नि है, हलाहल है, कोई भी पुरुष उसे छूकर या पीकर नहीं जी सकता[5]। इसी नाटक में तलाक आवश्यक माना जाता है[6]।

---

1. लक्ष्मी नारायण मिश्र - आधीरात, दूसरा अंक, पृ॰79
2. वही सन्यासी, भूमिका, पृ॰10
3. वही सन्यासी, अपने आलोचक मित्र से
4. वही आधीरात, पहला अंक, पृ॰39
5. वही सिन्दूर की होली, बारहवाँ सं॰दूसरा अंक,पृ॰5
6. वही सिन्दूर की होली, पृ॰107-108

दहेज अनमेल विवाह आदि कुरीतियों पर भी उनकी पैनी दृष्टि पड़ी है[1] अनमेल विवाह के दुष्परिणामों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सन्यासी के दीनानाथ और किरणमयी। नाटककार का सुझाव है कि यदि कोई वृद्ध पुरुष विवाह करना चाहता है तो उसका विवाह किसी विधवा से ही संपन्न होना उचित है[2]।

अवैध-प्रेम और यौन संबंध का प्रतिपादन भी मिश्रजी के नाटकों में मिलता है। सन्यासी के उमाकान्त का अवैध पुत्र है, मोती। उमाकान्त समाज के सामने तो अपना पुत्र स्वीकार नहीं करता[3] "आधी रात" में मिश्र जी इस समस्या की जटिलता पर और भी प्रकाश डालते हैं। चार पुरुषों से एकसाथ प्रेम करनेवाली स्त्री तीन के साथ विवाह कर लेती है। लेकिन उसे जीवन में कोई सन्तोष नहीं मिलता। अन्त में निराश होकर वह आत्मघात कर लेती है[4]। "मुक्ति का रहस्य" में भी अवैध स्त्री-पुरुष संबंध दिखाया जाता है। अवैध सन्तानों के संरक्षणार्थ खोले गये अनाथालयों की चर्चा भी इसमें मिलती है[5]।

बेकारी के संबंध में भी नाटककार व्याकुल है। उनका विचार है कि जब तक गरीबों की हालत सुधारी नहीं जा सकती, तब तक देश की उन्नति न होगी[6]।

मिश्र जी के नाटकों के सामाजिक तत्वों का अंकन ही यहां अभिप्रेत है। उनके नाटक समस्या प्रधान हैं। सभी समस्याएं समाज सापेक्ष हैं। अतः सामाजिकता के प्रकाश में ही हमने उनका निरूपण किया है। व्यक्त है, मिश्र जी अपने नाटकों में बुद्धिवादी वातावरण उपस्थित रखना चाहते हैं। उनकी मनोरमा चन्द्रकान्ता, रजनीकान्त, विश्वकान्त, जैसे पात्र उम्र की दृष्टि से छोटे होने पर भी परिपक्व बुद्धि का परिचय देते हैं। मिश्र जी के पात्रों के जीवन की

---

1. लक्ष्मी नारायण मिश्र - [illegible] सन्यासी, पृ.36
2. वही
3. वही
4. वही आधी रात - पृ.130-132 तीसरा अंक

समस्यायें जितनी व्यक्तिगत है, उतनी ही सामाजिक भी । उनकी कृतियों में प्रेम, विवाह आदि जो समस्यायें उठायी जाती हैं, उनका स्पष्ट संबंध वर्तमान से है ।

<u>सेठ गोविन्द दास</u>

सेठ गोविन्द दास गांधीवादी हैं । उनका रचना-काल तीन दशकों तक व्याप्त रहा है । नाटकों के अतिरिक्त मिश्रजी ने एकांकियों की भी रचना की है । नाटकों में विविध समस्यायें उठायी जाती हैं । उनका परिहार भी देखते हैं । इतिवृत्त गांधीवाद से लेकर भूदान यज्ञ तक लिए गए हैं । कुछों का कथा तक ऐतिहासिक है, कुछों का पौराणिक और सामाजिक ।

सेठ जी के नाटकों के मुख्य प्रतिपादन है - असहयोग आन्दोलन, स्वराज्य, उच्च नीचत्व, जाति-पाति, विधवा, पश्चिमी सभ्यता, कुलीनता गरीबी आदि । जीवन से जो कुछ आपने अनुभव किया उसको अकृत्रिम शैली में असाधारण साहस के साथ संसार के सम्मुख रखा है[1] ।

स्वतंत्रता-संग्राम की कुछ मार्मिक घटनाओं से "सिद्धांत स्वातंत्र्य" (1938) प्रेरित है । 1905 के बंग-भंग आन्दोलन नाटककार की दृष्टि में भविष्य की स्वतंत्रता की भूमिका है[2] । इसका त्रिभुवन दास सार्वजनिक आन्दोलन में भाग लेता है । उसका पुत्र मनोहर 1930 के सत्याग्रह में भाग लेकर गोली का शिकार बन जाता है ।

गोविन्द दास के प्राय: सभी नाटकों में स्वराज्य का सन्देश मिलता है । केवल राजनीतिक स्वराज्य ही नहीं बल्कि आर्थिक स्वराज्य भी अभिप्रेत है[3] ।

---

1. रामचरण महेन्द्र - सेठ गोविन्द दास:नाट्य कला तथा कृतियाँ, 1956, पृ.24
2. सेठ गोविन्द दास - सिद्धान्त स्वातंत्र्य, 1958, पहला अंक, पृ.16
3. सेठ गोविन्द दास - प्रकाश, 1958, पहला अंक, पहला दृश्य, पृ.14

शशिगुप्त" [1942] में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए शत्रु का वध आवश्यक माना जाता है[1]। "सेवापथ" [1940] में स्थापित किया जाता है कि साम्यवाद की स्वीकृति से ही देश की गरीबी खत्म होगी[2]।

सेठ जी सामाजिक कुरीतियों का भी चित्रण करते हैं। कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह करने में उनकी संयत प्रवृत्ति बाधक नहीं होती। "प्रकाश" [1935] का राजा अजयसिंह गवर्नर को भोज दे रहा है। उसमें आमंत्रित अतिथियों को सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार अलग अलग बैठक की व्यवस्था भी की जाती है[3]। कुलीनता [1940] में भी उच्च नीच भावना का प्रतिपादन है।

"प्रकाश" और "कुलीनता" में जाति-पाति पर विचार किया जाता है। "प्रकाश" की मनोरमा वैश्य जाति की अमीर लड़की है। वह जाति-पाति को नहीं मानती। उसका आकर्षण निर्धन क्षत्रिय युवक प्रकाश की ओर है। "कुलीनता" का यदुराय, गोंड वंश का है। उसकी प्रेमिका रेवा सुन्दरी कलचुरिया वंश की है। इस जाति-भेद के कारण विजयसिंह [रेवासुन्दरी का पिता] यदुराय को अपना दामाद नहीं स्वीकार करता[4]।

कुलीनता का दंभ कुलीनता" में प्रतिपादित होता है[5]। राजा विजयसिंह देव, यदुराय को इसलिए राज्य से निष्कासित कर देता है कि वह अकुलीन रवट है। कुलीनता अत्यंत तीव्र सामाजिक समस्या है जो सभी देशों और कालों में वर्तमान है। सेठ जी उसे अपने नाटक में प्रस्तुत करते हैं।

फैशन परस्ती के दुष्प्रभावों पर सेठ जी की दृष्टि पड़ती है। "प्रकाश" की रुक्मिणी सिगरेट पीती है, अंग्रेजी ढंग से वेष धारण करती है[6]।

1• सेठ गोविन्द दास - शशिगुप्त-दशम सं•, पहला अंक, पांचवां दृश्य-पृ•61
2• वही सेवा पथ, 1959
3• वही प्रकाश, पहला अंक, पहला दृश्य - पृ•19
4• वही कुलीनता, पांचवां सं• पहला अंक, पृ•15
5• डॉ• नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी नाटक - पृ•44
6• सेठ गोविन्द दास - प्रकाश

पर मनोरमा भारतीय रीतिरिवाजों का समर्थन करती है और उन्हीं में समाज का हित देखती है[1]। सेठ जी खद्दर के समर्थक हैं। "शशिगुप्त" [1942] नाटक इसका निदर्शन है[2]। सेठजी नारी मुक्ति के समर्थक हैं। विधवाओं के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति है। इसका प्रमाण है "कुलीनता"[3] "हर्ष"[4] [1935] आदि नाटक।

भारत की गरीबी सेठजी को निरंतर व्याकुल करती रही है। उनकी कृतियों में निरीह गरीब जनता के कष्ट संकुल जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण हैं गरीबी या अमीरी[5] [1947] और सन्तोष कहाँ" [1947]। संतोष कहाँ का मनसाराम [अध्यापक] प्रतिमास 60 रुपये वेतन पाता है। उसके परिवार में स्थिति यह है कि कभी गेहूं नहीं है, तो कभी चावल नहीं, कभी घी नहीं है तो कभी शक्कर नहीं है, कभी कपड़े नहीं है और कभी और कुछ नहीं[6]।

समाज के आर्थिक असन्तुलन का विरोध "सेवा पथ" में मिलता है। नाटककार की दृष्टि में आर्थिक संतुलन एक प्रकार से पूंजीवाद का समर्थक है[7]। लेखक पूंजीवाद के प्रकार विरोधी हैं[8]।

मज़दूर-मिल मालिक- का संघर्ष "हिंसा या अहिंसा" में प्रतिपादित है। यह मज़दूरों हड़तालों का भी परिचय देता है[9]।

---

1. सेठ गोविन्द दास - प्रकाश
2. वही शशिगुप्त, पहला अंक, पहला दृश्य - पृ.32
3. वही कुलीनता, पंचम सं.चौथा अंक, पांचवां दृश्य-पृ.1[illegible]
4. वही हर्ष - पंचम सं. दूसरा अंक, दूसरा दृश्य-पृ.46
5. वही गरीबी या अमीरी - पृ.62
6. वही सन्तोष कहाँ - पृ.9
7. वही सेवा पथ, दूसरा अंक, दूसरा दृश्य - पृ.58
8. वही वही पहला अंक पहला दृश्य - पृ.18
9. वही हिंसा या अहिंसा - पृ.39

यद्यपि सेठ गोविन्द दास के अधिकतर नाटकों के कथानक राजनैतिक हैं तथापि सामाजिक समस्याओं से उनका गहरा संबंध है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह मालूम हो जाता है कि इनके राजनैतिक नाटकों का मेरुदंड हमारा सामाजिक जीवन है और उनकी समस्याएं तत्कालीन समकालिक परिस्थिति से भी संबद्ध है ।

पं॰ उदयशंकर भट्ट

ऐतिहासिक , पौराणिक और सामाजिक नाटकों के प्रणेता हैं, पं॰ उदयशंकर भट्ट । आपकी रचनाओं में एकांकी भी स्थान प्राप्त करते हैं । लगभग नाटकों का आपने प्रणयन किया । इनमें से अधिकतर रचनाओं का विविध संस्थाओं द्वारा मंचीकरण हुआ है । कई आकाशवाणी प्रसारित हो चुके हैं[1] । भट्ट जी के बहुत नाटक स्वातंत्र्य पूर्व रचित हैं, जिनमें स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण है । यह तो स्वाभाविक भी है । स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद की कृतियों में सामाजिक विषयों को अपनाया गया है ।

भट्ट जी के नाटक समाज के दैनिक जीवन का यथार्थ चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन, अहिंसा, जाति-पाति, उच्च-नीचत्व, हिन्दू-मुस्लिम एकता, नारी जागरण, अनमेल विवाह, शराब बन्दी आदि विषय भट्ट जी की नाट्य रचनाओं में स्थान पाते हैं । उनकी स्वातंत्र्यपूर्व कृतियों का विवेचन यहाँ अभीप्सित होगा ।

भट्ट जी ने "विक्रमादित्य की रचना सन् 1933 में की । देश भर स्वतंत्रता आन्दोलन जोर पकड़ चुका था । उसकी उर्मी और आवेश इस में प्रतिफलित है । इसमें दिखाया गया है कि करहाट देश पर पार्थिव राजा का आक्रमण होता है । पर वहाँ की जनता स्वातंत्र्य की पुनः प्राप्ति केलिए

1• सं॰ बांके बिहारी भटनागर - उदयशंकर भट्ट - व्यक्ति और कृतित्व। प्रथम सं॰ - पृ॰109

संघर्ष शुरू करती है । कुमार, उनका नेतृत्व ग्रहण करता है और शत्रुओं के विरुद्ध लड़ने केलिए अपने साथियों को आह्वान देता है[1] । विक्रमादित्य, विदेशी शासन से मुक्ति और अपनी जन्म भूमि की स्वातंत्र्य की अभिलाषा प्रकट करता है[2] । उस युग के प्रत्येक देश प्रेमी प्रतिनिधि है विक्रमादित्य ।

इस नाटक में प्रेम की महत्ता स्वातंत्र्य केलिए आत्मोत्सर्ग करने की आवश्यकता आदि विशिष्ट गुणों का प्रकीर्तन किया गया है । यह रचना बहुत प्रेरणादायक सिद्ध हुई है ।

"सगर विजय" भी देश सेवा के लिए प्रेरणा देनेवाला है[3] । इसमें [illegible] भट्ट जी के नाटकों पर गांधीवाद का प्रभाव है । सगर विजय का दुर्दम [हैहेय वंशी राजा] किसी के हृदय पर अधिकार जमाना सच्ची विजय मानता है[4] ।

"मुक्तिदूत" [1944] गौतम बुद्ध की जीवन कथा है । इसमें अहिंसा सिद्धांत का प्रतिपादन आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है । इसका सिद्धार्थ पशु बलि का कड़ा विरोध करते हुए अहिंसा का सन्देश देता है[5] । लेखक की सम्मति यह है कि समस्त राजनीतिक व सामाजिक समस्याओं के परिहार केलिए अहिंसा अमोघ शस्त्र है ।

भट्ट जी सामाजिक परिवर्तन को आवश्यक मानते हैं । इस दिशा में उनका "दाहर अथवा सिन्ध पतन [1934] महत्वपूर्ण है । इसमें उनकी मान्यता है "कर्म की श्रेष्ठता, प्रत्येक व्यक्ति के अपने दैनिक व्यवहार पर निर्भर है ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - विक्रमादित्य, छठा सं.1963 दूसरा अंक, दूसरा दृश्य पृ.39
2. वही पृ.35
3. वही सगर विजय पृ.110
4. वही पांचवां अंक, पांचवां दृश्य पृ. 95
5. वही मुक्ति दूत 1960, पहला अंक, तीसरा दृश्य - पृ.27

सोहाग, जाट और गूजरों में वैसा ही क्षत्रियत्व है, जैसा कि वीरता का कार्य करनेवाले क्षत्रियों में"[1]।

"मुक्तिदूत" में भी यही दृष्टि अपनाई गयी है[2]।

उच्च-नीचत्व का निराकरण भी भट्ट के नाटकों में द्रष्टव्य है। "दाहर अथवा सिन्ध पतन" का पुरोहित ऊँच-नीच भेद भाव को मानता है[3]। मंत्री ज्ञानकर उसका विरोध करते हुए कहता है। संसार में कोई ऊँच नीच नहीं है। यह भेद भाव मनुष्यकृत है। भगवान का बनाया हुआ सूर्य सबको एक सा प्रकाश देता है। वायु सबको एक सा जीवन देता है, तुम्हें अधिक और उनको जिन्हें तुम नीच कहते हो न्यून जीवन नहीं प्रदान करता[4]।

उदयशंकर भट्ट, हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं। गांधीजी की तरह वे भी मानते हैं कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही ईश्वर है। सभी धर्मों में सत्य का महत्व स्वीकृत है और असत्य निन्दनीय है। इसलिए सब धर्म मूलत: एक है। स्पष्ट है भट्ट जी पर महात्मा गांधी की विचार धारा का गहरा प्रभाव है। उनके "मुक्तिदूत" का बुद्ध मनुष्य गण को एकता से पृथक् कर रखनेवाले क्षुद्र भेद बुद्धि का परित्याग करने का उपदेश देता है[5]।

नारी जागरण का चित्रण भट्ट ने "दाहर अथवा सिन्ध पतन", "विद्रोहिणी अम्बा" जैसे नाटकों में किया है। नारी जाति के प्रति वे पूर्ण सहानुभूति रखते हैं[6]। दाहर की पुत्री (दाहर अथवा सिन्ध पतन) जागृत नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है[7]।

---

1. उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिन्ध पतन - पृ.45-46
2. वही मुक्तिदूत दूसरा अंक, दूसरा दृश्य - पृ.48
3. वही दाहर अथवा सिन्ध पतन - 1960, दूसरा अंक, पाँचवाँ दृश्य
4. वही वही पृ.46 पृ.46
5. वही मुक्तिदूत - तीसरा चौथा दृश्य - पृ.81
6. कमलिनी मेहता - नाटक और यथार्थवाद - पृ.274
7. उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिन्ध पतन - 1962

"विद्रोहिणी अम्बा" [1935] के नारी पात्र अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका पुरुष के अत्याचारों पर विद्रोह करती हैं[1]।

अनमेल विवाह के दोषों पर भी लेखक की दृष्टि गई है। "विद्रोहिणी अम्बा" का लेखक अनमेल विवाह को समाज के प्रति अन्याय मानता है[2]।

भट्ट जी शराबबन्दी आन्दोलन के भी समर्थक हैं। "दाहर अथवा सिन्ध पतन" का देवराज, शराब का तिरस्कार करता है। उसकी राय में शैतान की कमाई हुई चीज होने के कारण उसे छोड़ देने को खुदा ने ही कहा है[3]।

उदयशंकर भट्ट, हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारों में से हैं। वे अपने चारों तरफ के सामाजिक जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। कथानक का संबंध किसी भी युग से हो, उनके नाटकों की समस्याओं का संबंध वर्तमान जीवन से है। यही उनके नाटकों की मौलिक विशेषता है। अन्य लेखकों के समान वे भी स्वतन्त्रता संग्राम से प्र भावित रहे हैं। वे यह स्थापित करना चाहते हैं कि हमारी जीर्ण-शीर्ण सामाजिक कुरीतियों के निवारण के द्वारा ही देश तथा समाज का उद्धार संभव है। भट्ट जी इसलिए गांधी जी द्वारा निर्दिष्ट मार्गों का समर्थन करते हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क

उपेन्द्रनाथ अश्क का साहित्य अत्यंत विस्तृत है। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में अपनी सिद्ध हस्तता स्थापित की है। कविता, नाटक, एकांकी, उपन्यास आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। फिर भी वे मौलिक रूप से नाटक रचना में रुचि रखनेवाले हैं[4]।

---

1. उदयशंकर भट्ट - विद्रोहिणी अम्बा - दूसरा अंक, पहला दृश्य - पृ.59.
2. वही पृ.93
3. वही दाहर अथवा सिन्ध पतन, पहला अंक, चौथा दृश्य -पृ.।
4. सं.कौशल्या अश्क - ले.गोपालकृष्ण कौल, नाटककार अश्क, प्रथम सं.पृ.60

उनके नाटकों में व्यक्ति और समाज की गहरी समस्याओं की अभिव्यक्ति है । इसलिए ही वे स्वयं अपने को सामाजिक चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण के नाटककार कहते हैं[1] ।

अश्क ने नाटकों की रचना, स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पहले ही शुरू की थी । नाट्य रचना-कार्य में वे पश्चिम के इब्सन, मेटरलिंक, चेखव, पिरेंडलो, ओ नील, कापमेन आदि नाटककारों के ऋणी हैं[2] । छोटे नाटक लिखने में अश्क जी अधिक रुचि रखते हैं[3] ।

उन्होंने एकांकी भी रचे जिनकी संख्या लगभग चालीस है । उनके प्राक् स्वाधीनता युग के प्रमुख नाटक हैं - 'जयपराजय', 'छठाबेटा' और 'स्वर्ग की झलक' ।

'जय पराजय' [1937] अश्क जी की पहली नाट्य रचना है । यह उस समय लिखा गया । जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम जोरों पर चल रहा था । उसकी प्रतिध्वनि इसमें भी सुनाई पड़ती है । यह कृति मेवाड़ के राणा लक्षसिंह के पुत्र चण्ड की वीरता और दृढ़ पितृभक्ति का प्रतिपादन करती है । चण्ड, अपने सैनिकों को शत्रु की सेना पर टूट पड़ने का और दासता की बेड़ियों को तोड़ देने का वीर सन्देश देता है[4] । यद्यपि इस में मध्यकालीन भारतीय राजपूत जीवन की आदर्शवादी झांकी है तथापि लेखक की दृष्टि समसामयिक भारतीय जीवन की ओर लगी रहती है । शासन का अत्याचार[5], अनमेल विवाह के दोष[6] आदि की चर्चा भी प्रस्तुत रचना करती है ।

छठा बेटा [1940] वर्तमान समाज के मध्यवर्गीय परिवारों के स्वार्थपूर्ण संबंधों पर कठोर प्रहार करता है । इसमें अहिंसात्मक संग्राम की ओर भी संकेत

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - स्वर्ग की झलक, प्रथम सं० भूमिका
2. सं०कौशल्या अश्क - ले० उपेन्द्रनाथ अश्क,नाटककार अश्क पृ०346
3. वही वही
4. उपेन्द्रनाथ अश्क - जयपराजय, प्रथम सं० पृ०172

किया गया है । इसका बसन्तलाल, विद्रोह केलिए तलवार और बन्दूक को उचित मानता है । लेकिन हीमदयाल अहिंसा के माध्यम से इस लक्ष्य पर पहुँचना चाहता है[1] । यह इसकी समसामयिक राजनीतिक आन्दोलन और संघर्ष का परिचायक है ।

युवा पीढ़ी की समस्याओं से भी अश्क जी परिचित है । "स्वर्ग की झलक (1939) अस्वस्थ मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन पर व्यंग्य करता है । युवापीढ़ी के प्रेम और विवाह की जटिलता भी इसमें चर्चित होती है । आज के युवक पढ़ी-लिखी लड़कियों को ही अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहते हैं प्रस्तुत नाटक में अश्क जी ने रघु के चित्रण द्वारा इस दृष्टिकोण का समर्थन किया ।

आधुनिक प्रगतिशील समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो अब भी पुराने विचारों का पल्ला पकड़े रहते हैं । "छठा बेटा" का पं•बसन्तलाल और "स्वर्ग की झलक" का लाला गिरिधारी लाल दोनों इस कोटि के व्यक्ति है[3] पं• बसन्तलाल, हिन्दू धर्म के अनुसार चोटी रखना शान की बात समझता है । लाला गिरिधारी लाल के विचार में घर की चहार दीवारी में रहकर खाना पकाने और सीने पिरोने में व्यस्त होने में ही नारी-जीवन की सार्थकता है ।

इन दोनों पात्रों के प्रस्तुतीकरण में लेखक का अपना उद्देश्य है । वह उन लोगों का उपहास करना चाहता है जो शिक्षित और सभ्य होते हुए भी परम्परागत आदर्शों के बन्धन से अपने को मुक्त नहीं करना चाहते ।

अश्क जी सामाजिक परिवर्तनों के पक्षधर हैं । "स्वर्ग की झलक" का अशोक नारी के अलग अस्तित्व को स्वीकार करता है[4] ।

पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण अश्क जी पसन्द नहीं करते । यह बात उनकी "छठा बेटा" से प्रकट होती है । इसका पं• बसन्तलाल रेलवे का

1• उपेन्द्रनाथ अश्क - छठा बेटा - छठा सं• - पृ•91
2• वही स्वर्ग की झलक, पाँचवाँ सं• पहला अंक, पृ•27
3• वही छठा बेटा - पृ•75
4• वही स्वर्ग की झलक, दूसरा अंक

अवकाश प्राप्त पदाधिकारी है । उनके पुत्रों में से कोई अपने बूढे पिता की खबर नहीं करता । इस बात पर दुःखी पिता, पश्चिमी सभ्यता को इसलिए उत्तरदायी मानता है जिससे उनके सारे पुत्र प्रभावित है । अश्क की दृष्टि में, पश्चिमी सभ्यता दिखावे की सभ्यता है, छल, कपट और प्रपंच की सभ्यता है[1]

रिश्वत जैसे अनाचारों का भी विरोध अश्क ने किया है । "छठा बेटा" में इस बात को स्वीकार किया है कि आज उन्नति के शिखर पर चढने केलिए रिश्वत से कोई अच्छा साधन नहीं है[2] ।

नाटककार अश्क की दृष्टि वर्तमान सामाजिक जीवन से निरंतर संबद्ध रहती है । उनकी समस्त नया कहानियां इसके प्रमाण है । उनकेलिए काल्पनिक जगत की अपेक्षा वास्तविक जीवन ही महत्वपूर्ण है । उनके नाटकों के पात्रों का संबंध वास्तविक जीवन से है । वे सब हमारे जीवन के अंग से लो गये हैं । यही उनके नाटकों की विशेषता है । यही उनकी सामाजिकता की सार्थकता है ।

वृन्दावनलाल वर्मा

वर्मा जी की सामाजिक दृष्टि अत्यन्त स्वस्थ और यथार्थोन्मुखी है । वे कला के माध्यम से राष्ट्र का नव निर्माण आवश्यक मानते हैं । यही कारण है कि उनकी नाट्य कृतियों में भारतीय समाज का पूरा वैविध्य प्रतिबिंबित पाया जाता है । ऐसी कोई समस्या नहीं जिसको उनके नाटकों में स्थान प्राप्त न हुआ हो । वर्मा जी समझते है कि मानव जीवन की विविध समस्याओं के प्रेक्षण से सामाजिकों को उन्हें समझने, उनसे जूझने एवं विमुक्त होने की प्रेरणा प्राप्त होती है[3] ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - छठा बेटा - पृ.26
2. वही - पृ.110
3. वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज - पृ.100

वृन्दावनलाल वर्मा प्रमुखत: ऐतिहासिक नाटककार है । फिर भी उनके सारे नाटक हमारे वर्तमान समाजिक जीवन से प्रभावित हैं । उन्होंने 20-21 नाटकों की रचना की । इनमें एकांकी भी हैं । उनकी अधिकांश रचनाएं स्वातंत्र्योत्तर काल की हैं । धीरे-धीरे, राखी की लाज, फूलों की बोली, बांस की फांस । जैसी अपनी स्वातंत्र्यपूर्व रचनाओं में लेखक ने राजनीतिक और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया है ।

वर्मा जी का पहला नाटक है, धीरे-धीरे [1938] । यह 1937 की राजनीति पर आधारित है । स्वाभाविक है, अहिंसात्मक आन्दोलन इसमें स्थान पाता है । स्वदेशी आन्दोलन हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन लाया उसका परिचय इस नाटक से मिलता है । इसका गुलाब सिंह, खादी पहनता है और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करता है[1] । अहिंसात्मक आन्दोलन से प्रेरित दूसरा पात्र है, ज्ञानचन्द । वह अहिंसा को परम धर्म और सत्य को सबसे बड़ा हथियार मानता है[2] ।

नाटककार रिश्वत के दोष से देश को मुक्त करना चाहता है । इसलिए धीरे-धीरे का दयाराम, रिश्वत लेनेवालों को बिना प्रमाण लिये ही उल्टा टांग कर कोड़े का दंड देना आवश्यक मानता है[3] । तब ही इस गरीब देश से यह भयंकर रोग दूर हो जायेगा[4] ।

पुलिस को घूस से वश में करके गरीबों पर अत्याचार करनेवालों का चित्रण भी इसमें है । गरीब देहाती लोग जंगल के कुछ वृक्ष काट लेते हैं । इसके नाम पर राजा के कर्मचारी पुलिस को घूस देकर वश में लेते हैं और गरीबों पर अत्याचार करवाते हैं[5] ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - धीरे धीरे - चतुर्थ सं. 1962, पहला अंक, पृ. 18
2. वही दूसरा अंक, पृ. 53
3. वही पहला अंक, पृ. 18
4. वही दूसरा अंक, पृ. 53
5. वही वही पृ. 53

राष्ट्र संघ के नेता लगनचन्द के भाषण द्वारा नाटककार ने किसान वर्ग के जीवन वैषम्य पर प्रकाश डाला है। इसमें साम्यवादी आह्वान की गूंज उठता है।

कृषि और उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पर नाटककार ने पर्याप्त बल दिया है[1]।

वर्मा जी के राखी की लाज (1946) में राखी की प्रथा को हिन्दू समाज में सुरक्षित रखने की आवश्यकता सिद्ध की गई है[2]। यह प्रथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए आवश्यक मानी गई है। इसी दृष्टि से नाटक में बाबाराम की बेटी चम्पा, मुसलमान युवक चाँद खां के हाथ में राखी बांधती है[3]।

1944-45 में भारत में महामारियों का प्रकोप हुआ था। गांव में फैलनेवाले हैजा जैसे सांक्रमिक रोगों की चर्चा भी इस में पाई जाती है। सांक्रमिक रोगों के निवारण के लिए ग्राम-पंचायत की तरफ से प्रबन्ध किया जाता है[4]। कुओं में दवा डालने का निर्देश भी दिया जाता है[5]।

धनाढ्य बाबाराम अपनी बेटी चम्पा का विवाह निर्धन सोमेश्वर से संपन्न नहीं होने देता[6]। इससे विदित होता है कि आर्थिक आधार पर ही सामाजिक संबंध स्थापित होता है। आर्थिक आधारों के निर्बल होने पर केवल व्यक्तिगत संबंध ही नहीं, सामाजिक संबंध भी टूट जाता है।

प्रस्तुत नाटक जाति-पांति का पूरा विरोध करता है। इसका सोमेश्वर, चम्पा से विवाह करने में जात-पांत की कोई बाधा नहीं मानता[7]।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - धीरे धीरे, तीसरा अंक - पृ.88
2. वही — राखी की लाज-परिचय, बारहवां सं. - पृ. 5
3. वही — वही — पहला अंक, तीसरा दृश्य-पृ.24
4. वही — वही — दूसरा अंक, दूसरा दृश्य पृ.48
5. वही — वही — " पृ.50
6. वही — वही — तीसरा अंक, पहला दृश्य- पृ.76
7. वही — वही — दूसरा अंक, सातवां दृश्य- पृ.72

"राख की फांस" [1947] में यह दिखाया गया है कि हमारी जनता के जीवन में ज्योतिष का अब भी कितना स्थायी स्थान है । आज भी हमारी जनता जन्म पत्री पर विश्वास रखती है । ज्योतिषी को घूस देकर मनोनुकूल निर्णय प्राप्त किया जाता है । जन्म पत्री मिल गई तो जाति की भिन्नता का प्रश्न भी नहीं उठता ।

उच्च-नीच अथवा अमीर-गरीब के भेदभाव के बिना आज के युवक अपने जीवन साथी को चुन लेते हैं[1] । प्रस्तुत नाटक का धनी गोकुल एक गरीब लड़की से विवाह करता है ।

"फूलों की बोली" [1947] में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सोना बनानेवालों पर तीखा व्यंग्य है[2] । इसके कथानक के चयन में नाटककार ने अलबरूनी की कृति "किताबुल हिन्द" से प्रेरणा ग्रहण की है[3] ।

परिवर्तित वैवाहिक मान्यता का प्रतिफलन "फूलों की बोली" में मिलता है । आज की युवतियाँ वैवाहिक जीवन को स्वच्छन्दता के लिए बाधक मानती हैं । इसकी कामिनी माधव से शादी करके बन्धन में पड़ना नहीं चाहती[4] ।

ऐसे साधु सन्यासियों का चित्रण भी इसमें किया गया है जो अपने "अद्भुत चमत्कार" से बेचारी जनता की आँखों पर धूली डालकर उसकी संपत्ति चुरा लेते हैं[5] ।

समसामयिक जीवन वर्मा जी की रचनाओं का अभिन्न अंग है । उनकी स्वातंत्र्योत्तर रचनाएं ऐतिहासिक हैं । वे सामाजिक भावना से ओतप्रोत हैं ।

1.
2. डॉ॰ पद्मसिंह शर्मा कमलेश - वृन्दावनलाल वर्मा: व्यक्तित्व और कृतित्व
दूसरा सं॰ पृ॰125
3. वही वही
4. वही फूलों की बोली, सातवाँ सं॰पहला अंक,पहला दृश्य-पृ॰1
5. वही वही ...

प्रत्यवलोकन

आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रत्यवलोकन से यह बात प्रमाणित होती है कि भारतेन्दु ने सामाजिकता के आकलन की जो परिपाटी चलायी थी उसका पालन प्रसाद और उनके समकालीन व परवर्ती नाटककारों ने बड़ी तत्परता से किया। नाटकों में विषयगत वैविध्य काफी है। जैसे ऐतिहासिक, पौराणिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक। पर उनमें सामाजिक चेतना एकता विधायक सूत्र के रूप में सर्वत्र वर्तमान है। आधुनिक जीवन की जटिलता से ये रचनाएं पर्याप्त प्रभावित दीख पड़ती हैं। इसी कारण अधिकांश पात्र समसामयिक जीवन के व्यक्त प्रतीक हो गए हैं। आलोच्य युगीन नाटककार महान जीवन द्रष्टा हैं। वे जीवन की उलझन पूर्ण समस्याओं के विश्लेषण में सफल दिखते हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से इन्होंने हमारी संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा की, वर्तमान समाज के पुरातन तथा जीर्ण-शीर्ण अनाचारों के विरुद्ध आवाज उठायी जातियों और कबीलों में विभक्त जनता को ऐक्य के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया, जात-पात, रिश्वतखोरी, भाग्यवाद आदि पुराने दुराचारों से जनता को विमुक्त करने की कोशिश की। सामाजिक तथा धार्मिक संघर्षों को दूर करके एक राष्ट्र के रूप में स्वयं संगठित होने का आह्वान इन नाटकों ने किया। उच्च आदर्शों केलिए आत्मबलि चढ़ाने की प्रेरणा भी इसमें उपस्थित है। साहित्य की दृष्टि में अधिकांश नाट्य कृतियां उच्च कोटि की हैं। यद्यपि कुछ अपवाद भी प्राप्त हैं। इनके रचनाकाल में हिन्दी रंगमंच में यथोचित विकास नहीं हो पाया था। फिर भी इनमें से बहुतों का सफलता पूर्वक अभिनय किया गया है।

निष्कर्ष

1. प्रसाद युग से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक जो नाटक प्रणीत हुए, वे मुख्यतः सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टि से अनुप्राणित हैं।

2. इस काल-अवधि में रचित नाटक संख्या की दृष्टि से विपुल और विषय की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण हैं। इनके कथानक हमारे इतिहास, संस्कृति पुरावृत्त और सामाजिक स्थिति से स्वीकृत हैं।

3. सारे नाटकों में सामाजिक चेतना निरंतर निस्तंद्र और जागरूक रही है।

4. इस युग का नाट्य साहित्य हमारे देश समाज तथा युग की माँग पूरी करने में सफल हुआ है। इसके लेखकों ने हमारे समाज के सड़े-गले आचार का ज्यों का त्यों चित्रण किया।

5. समय के प्रभाव से जन जीवन में जो परिवर्तन आये उनकी अभिव्यक्ति इन नाटकों में की गई है।

6. इन नाटकों ने समाज को इतना अधिक प्रभावित किया कि कुरीतियों का उन्मूलन करके एक आदर्शनिष्ठ, मंगलमय समाज की स्थापना केलिए जन-समाज उत्सुक हो उठा।

7. समाज के नवजागरण में, स्वतंत्रता - प्राप्ति के शीघ्रीकरण में इनका जो योगदान है वह सचमुच अनुपम है।

****

अध्याय - 6

स्वतंत्र भारत की सामाजिक - सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि

षष्ठ अध्याय

स्वतंत्र भारत की सामाजिक - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ । पं॰ जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस मन्त्रिमंडल ने शासन ग्रहण किया । स्वातंत्र्य के आविर्भाव ने भारतीय इतिहास में एक नवयुग की घोषणा की ।

देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों में अभूतपूर्व परिवर्तन के चिन्ह लक्षित होने लगे । उनका चित्रण आधुनिक हिन्दी साहित्य में पाया जाता है, विशेषकर नाटक-साहित्य में । इस युग {1948-65} के नाटककार परिवेश से पर्याप्त प्रभावित थे । उनकी रचनाएँ इसके प्रमाण हैं ।

राजनैतिक परिस्थिति

भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा[1] । यह भूमि दो भागों में खंडित हो गई - पाकिस्तान और भारत ।

---

1. डा॰ राजेन्द्र प्रसाद - स्वतंत्र भारत की झलक - प्रथम सं॰ - पृ॰77

देश के विभाजन ने लाखों नरनारियों को विस्थापित कर दिया । पाकिस्तान में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक थी जबकि हिन्दुओं की बहुत कम । धार्मिक संघर्ष ने मानवीय संबन्धों का मूलोच्छेद कर दिया । लाखों मुसलमान भारत को छोड़कर पाकिस्तान भाग गए । पाकिस्तान की हिन्दू जनता पर कठोर अत्याचार किए गए । अनेक हिन्दू मौत के शिकार हो गये । अनेकों घरों पर आग लगा दी गई । हिन्दू नारियों का अपमान किया गया । इन अत्याचारों से जो हिन्दू बच गए उन्होंने भारत में शरण ली । इस अत्याचार की प्रतिक्रिया भारत में भी हुई[1]। विभाजन ने देश के सम्मुख अनेक समस्याएं उपस्थित की[2]। करोड़ों की संख्या में शरणार्थियों का पुनर्निवास कराना था । उनके रोजगार, शिक्षा आदि का प्रबंध करना था । भारत सरकार ने यह महान भार अपने ऊपर उठा लिया । कहते हैं लगभग 7 करोड़ों शरणार्थियों का पुनर्निवास कराया गया[3]। सैकड़ों शरणार्थी केम्प खोले गए । 'शरणार्थी सहायता कोष' की स्थापना की गई । शरणार्थियों केलिए भारत सरकार को भारी रकम का खर्च करनी पड़ी[4]।

महात्मा गांधी का बलिदान

महात्मा गांधी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे । वे जीवन भर सांप्रदायिक एकता केलिए लड़ते रहे । उनको उसी प्रयास में शहीद होना पड़ा । 30 जनवरी 1948 को उनकी हत्या की गई[5]। इस अप्रतीक्षित घटना ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना को धक्का पहुंचाया ।

---

1. मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद - आज़ादी की कहानी प्रथम सं॰पृ॰233
2. A.R Desai - Recent trends in Indian Nationalism - p.45
3. राजेन्द्र प्रसाद - स्वतंत्र भारत की झलक - पृ॰ 77
4. वही
5. N.K. Sinha & Nisith Ray - A history of India - P 570

देशी राज्यों का विलयीकरण

ब्रिटीश शासनकाल में भारत के देशी राज्यों की संख्या लगभग छः सौ थी । ये आभ्यंतर शासन कार्य में प्राय: स्वतंत्र थे । पर अनेक बातों के संबंध में इनपर ब्रिटीश सरकार का नियंत्रण था । स्वतंत्र भारत में वे स्वतंत्र रहना चाहते थे[1] । पर एक शक्तिशाली भारतराष्ट्र की स्थापना केलिए इनका विलयीकरण अनिवार्य था । इस दिशा में सरदार वल्लभ भाई पटेल की राजनीतिज्ञता ने जो कार्य किया वह इतिहास में चिर स्मरणीय हो गया है । उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सभी रियासतें पूर्ण रूप से भारत में विलीन हो गई[2] ।

गणतंत्र का उदय

26 जनवरी 1950 में भारत का नया संविधान स्वीकृत हुआ[3] । इसके आधार पर भारत धर्म निरपेक्ष गणतंत्रात्मक राष्ट्र घोषित किया गया[4] ।

गवर्नर जनरल का पद समाप्त किया गया । राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री पर राज्यसत्ता का सर्वाधिकार केन्द्रीकृत हुआ । गणतंत्र शासन ने राष्ट्रीयता पर बल दिया । वैयक्तिक स्वतंत्रता की महत्ता प्रतिष्ठित हुई । भारतीय संविधान ने नागरिकों के ये मौलिक अधिकार निश्चित किये[5] ।

पंचशील तत्व

भारत का स्वातंत्र्य विश्व के इतिहास में एकदम महत्वपूर्ण घटना है । हमारा स्वतंत्रता संग्राम अहिंसात्मक था । हमारे नेताओं ने सारी दुनिया को

---

1. B.N. Puri Study of Indian History. P 264
2. R.D. Cornwall. - World History in the 20th Century P 273
3. Nehru - Discovery of India
4. Durga Das India from Curzon to Nehru
5. B.L. Grover & R. R. Sethi - A new look on modern Indian

संघर्ष से मुक्त रखना चाहा । जवाहरलाल नेहरू विश्वशान्ति के पक्षधर थे । उन्होंने अपने वक्तव्यों में घोषित किया कि प्रत्येक देश को स्वतंत्र रहने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए । उसमें उसी प्रकार की शासन व्यवस्था होनी चाहिए।जिसे उनकी जनता अपनेलिए उचित समझें ।

राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों के सन्दर्भ में पंचशील तत्वों का आविष्कार सन् 1954 में चीन तथा भारत के प्रधानमंत्रियों ने सम्मिलित रूप से किया था[1] । पंचशील सिद्धांत ये हैं :-

1. आपसी सहयोग
2. शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व
3. आपसी अनाक्रमता
4. सभी झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाना
5. अन्य राष्ट्रों का भी सार्वभौम सम्मान करना[2] ।

जनतंत्रात्मक समाजवादी शासन-व्यवस्था

स्वतंत्रता के पहले ही हमारे नेताओं ने घोषित किया था कि भारत केलिए समाजवाद ही स्वीकार्य रहेगा[3] । स्वतंत्रता संग्राम के क्रान्तिकारियों ने भी इसका नारा उठाया था[4] । सार्वजनिक समता और संपन्नता समाजवाद का लक्ष्य है । सन् 1955 के कांग्रेस के आवडी अधिवेशन में पं॰ नेहरू ने समाजवाद को कांग्रेस का स्वीकार किया[5] ।

भाषावार प्रान्तों की मांग

भाषावार देशों की मांग स्वतंत्रता के पूर्व ही उठा ली गई थी और कांग्रेस ने उसको तत्वतः मान भी लिया था । सरकारी काम काज में

---

1. B.N. Puri – A Study of Indian History – p.276
2. Hindustan Year Book – 1956
3. ले॰मन्मथनाथ गुप्त – सं॰उदयराज सिंह – नई धारा [अप्रेल-मई-जून 1978] पृ॰24

अंग्रेज़ी भाषा के स्थान पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के व्यवहार को संवैधानिक समर्थन पहले ही प्राप्त हुआ था । भाषावार प्रान्तों के लिए उससे भी प्रेरणा मिली । 1956 में भाषाओं के आधार पर देशों का पुनः संगठन एक्ट पास किया गया और देश के प्रांतों का क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर पुनः गठन किया गया । लेकिन इससे वांछित परिणाम नहीं निकला । लोगों की प्रादेशिक मनोवृत्ति बढ़ती ही रही । 1965 में हिन्दी के विरोध में दक्षिण भारत में कठोर दंगे हुए[1] ।

भारत पर चीनी आक्रमण

सन् 1954 में पंचशील तत्वों का उद्घोषण करते हुए भारत और चीन ने अनाक्रमण संधि स्थापित की थी । लेकिन यह अनाक्रमण संधि अधिक काल तक टिकी नहीं रह सकी । 1959 में भारत भाग आये दलाईलामा [तिब्बत का धार्मिक शासक] को हमारी सरकार ने आश्रय दिया । इस घटना से भारत चीन का मैत्री संबंध बिगड़ने लगा । सन् 1962 में चीन ने भारत पर अचानक हमला किया[2] । भारतीय सेना सुसज्जित नहीं थी । अतः भारत को हार खानी पड़ी । पराजय से हमारे राष्ट्रीय गौरव को धक्का लगा । राजनैतिक और आर्थिक जीवन पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा[3] ।

भारत पाक युद्ध

1964 में पं॰ जवाहरलाल नेहरू का देहान्त हुआ और प्रधानमंत्री हुए श्री॰ लाल बहादुर शास्त्री ।

चीनी आक्रमण के बाद भारत ने अपनी सेना को सुशक्त बनाने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया । नये औजारों का आविष्कार हुआ और प्रशिक्षित

---

1. Michael Edwards – A history of India – P 317
2. B. N. Puri → A Study of Indian history – P 270
3. R. D Cromwell – World history in the 20th century

सैनिकों की संख्या दुगुनी कर दी गई[1] ।

दिसंबर 1965 में काश्मीर पर पाकिस्तान ने अधिकार करने के उद्देश्य से जम्मू पर हमला किया[2] । अमेरिका से पाकिस्तान को भारी सैनिक सहायता प्राप्त हुई थी[3] । लेकिन सशक्त भारतीय सेना के सामने पाकिस्तान टिक नहीं सका[4] । यह युद्ध जल्दी ही समाप्त हुआ । जनवरी 1766 में ताशकन्द में रूस की मध्यस्थता से भारत - पाकिस्तान समझौता हो गया ।

इससे दोनों देशों में शान्ति की स्थिति पैदा हुई पर वैमनस्य जारी रहा । पाकिस्तान इस ताक में रहा कि अवसर पाकर भारत पर हमला करे । पाकिस्तान के सैनिक शासक यह समझते थे कि नेहरू के देहान्त के बाद भारत टुकड़े टुकड़े हो जाएगा । पर उनका संकल्प व्यर्थ ही हुआ । हमारी जनता जनतंत्र से खूब परिचित हो चुकी थी । प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने की शक्ति उसे प्राप्त थी ।

सामाजिक परिस्थिति

जीवन गतिशील है । जीवन की गतिशीलता के अनुरूप समाज में निरंतर परिवर्तन हो रहा है[5] । आधुनिक समाज पश्चिमी सभ्यता से आमूलाग्र प्रभावित है । महात्मा गांधी चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में रामराज्य स्थापित हो[6] । पर यह उनका व्यर्थ स्वप्न मात्र था । समाज का नैतिक स्तर निरंतर गिरता रहा । हिंसा, सांप्रदायिकता, अनुशासनहीनता, आर्थिक असन्तुलन बेरोजगारी, बेकारी, महंगाई, घूसखोरी, भ्रष्टाचार चोरबाज़ारी आदि उत्तरोत्तर बढ़ती

---

1. Durga Das — India from Curzon to Nehru — P 395
2. Ibid — Ibid
3. [illegible] — भारत की [illegible] —
4. R.D Cornwell — World History in The 20th Century
5. T.B. Bottomore — Sociology — P.271
6. M.K. Gandhi — India of my Dream —

बढ़ती रहती है । पुरानी आस्था और विश्वास बह गए है । यह अवस्था जीवन के हर क्षेत्र में पाई जा सकती है ।

पारिवारिक विघटन

परिवार एक चिरपुरातन सामाजिक इकाई है जो सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर द्रष्टव्य है[1]। इसके रूप गठन में परिवर्तन होता रहता है । आधुनिक सामाजिक परिस्थिति ने पारिवारिक जीवन का रूप ही बदल डाला ।

आज कापरिवार विश्रृंखलित है । व्यक्ति के ऊपर पारिवारिक नियंत्रण भी आज नहीं के बराबर है[2]। परंपरागत पारिवारिक मूल्य विघटित हो चुके हैं[3]। कलह और अशान्ति सर्वत्र व्याप्त हो गई है । पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी मेल नहीं खाती । पुरानी रीति-रिवाजों, संस्कारों और परंपरागत मान्यताओं का पालन करने में लोग अपने को असमर्थ पाते हैं । पुराना संयुक्त परिवार आज केवल संकल्प में ही अवस्थित है । आज का परिवार बहुत छोटा है । पारिवारिक विघटन के कारण मुख्यतः ये हैं :-

1. औद्योगिक विकास
2. पश्चिमी प्रभाव
3. संपत्ति विभाजन अधिनियम
4. कलहपूर्ण जीवन
5. राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव
6. सामाजिक परिवर्तन[4]।

---

1. डि॰एन॰मजुमदार - भारतीय संस्कृति के उपादान 1958, पृ॰148
2. परमेश्वर बिहारी - अनुराग [अप्रैल-जुलाई 1976] पृ॰6
3. हेमेन्द्र पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास -मूल्य संक्रमण - पृ॰16
4. डा॰ सीताराम झा श्याम - भारतीय समाज का स्वरूप प्रथम सं॰पृ॰75-

वैवाहिक मान्यताओं में परिवर्तन

विवाह एक अत्यंत जीवन्त सामाजिक संस्था है[1]। एक अर्थ में यह परिवार की रीढ है । लेकिन आज भारतीय समाज की स्थिति कुछ भिन्न है । आज का विवाह यौन सुखावृत्ति का साधन मात्र रह गया है । शिक्षित युवा पीढी इच्छानुसार जीवन साथी को चुन लेना अपना अधिकार मानती है । वे प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह और विलंब विवाह को अधिक पसन्द करते हैं । बहु विवाह की प्रथा समाप्त हो गई है । अन्तर्जातीय विवाह सर्वसाधारण हो चुका है जिसे कानून द्वारा मान्यता दी गई है[2]। विवाह केलिए वर और वधू की निश्चित उम्र भी रखी गई है । विवाह के पहले ही आपस में परिचित होने का अवसर भी उनको दिया जाने लगा है । विज्ञापन द्वारा विवाह की प्रथा की स्वतंत्र भारत में मामूली बन गई है । विधवा-पुनर्विवाह बहुलता से हो रहा है ।

भारत सरकार ने 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम पारित किया जिसमें स्त्री पुरुष को तलाक की सुविधा दी गई[3]। यह सचमुच वैवाहिक संबंध की स्थिरता की पहली शर्त है[4]। तलाक ने परंपरागत वैवाहिक मूल्यों को आघात पहुंचाया है । पुनर्विवाह भी इससे सरल हो गई है । यद्यपि दहेज अवैध है तथापि इस अभिशाप से हमारा समाज अभी मुक्त नहीं है ।

प्रेम और यौन संबंधों में जटिलता

[illegible] प्रेम और यौन संबंधों की परम्परागत धारणाएं टूट गई है । विवाह के पहले का प्रेम ही नहीं यौन-संबन्ध भी हमारी नागरिक सभ्यता का

1• डा• सीताराम झा श्याम - भारतीय समाज का स्वरूप, प्रथम सं• पृ•150
2• K.M. Panikkar - A survey of Indian history - p. 242
3• रजनी पनिक्कर - भारतीय नारी प्रगति के पथ पर प्रथम सं• पृ•68
4• The Complete prefaces of Bernardshaw - p. 32

अंग हो चुका है । आधुनिक शिक्षित वर्ग बर्ट्रेंड रसेल के उन्मुक्त यौन संबंध के सिद्धांतों से प्रभावित प्रतीत होता है[1] । युवा वर्ग जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन लाना चाहते हैं । उनका विचार है "

अर्थात् समूची दुनिया को धुलाई की ज़रूरत है सुरच कर धोये जाने की[2] ।

प्रगति पथ पर अग्रसर नारी

नारी जागरण भारतीय नवोत्थान का एक अभिन्न अंग था[3] । उसका पूर्ण विकास स्वातंत्र्योत्तर युग में देख सकते हैं । स्त्री की प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता ने परंपरागत सामाजिक धारणाओं को तोड़ डाला है । भारतीय संविधान ने नारी को पुरुष के समान अधिकार दिया[4] । अब वह पुरुष के साथ जीवन के सारे क्षेत्रों में कर्मनिरत है । शिक्षा और सभ्यता का प्रभाव आधुनिक नारी समाज पर गहरा पड़ा है । अखिल भारतीय महिला संघ (आल् इण्डिया विमन्स् कॉन्फ्रेन्स) महिला नाशनल कौंसिल (नाशनल कौंसिल ऑफ विमन) आदि संस्थाओं ने नारी के सामाजिक जीवन को सुरक्षित कर दिया है ।

1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पास किया गया जिसके द्वारा भारतीय नारी पारिवारिक संपत्ति की उत्तराधिकारिणी मान ली गई[5] । स्वतंत्र भारत के नारी समाज ने प्रगतिशील पश्चिमी स्त्री समाज की तरह बहुत अधिक अधिकारों को प्राप्त किया है और अब वह अधिकाधिक अधिकारों केलिए अपना संघर्ष जारी रखता है । स्वाधीन भारत की नारी आर्थिक स्वावलंबी बनती जा रही है।

---

1. डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ॰64
2. ~~उपर्युक्त~~ वही - वही
3. रजनी पनिकर — भारतीय नारी प्रगति के पथ पर
4. K A Neelakanta sastri & G Sreenivasachari – Life and culture [illegible]

दाम्पत्य जीवन में विघटन

आज का शिक्षित युवक सुशिक्षित लड़कियों को ही अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहता है । अब अनपढ एवं पुराने विचारवाली लड़की के साथ आधुनिक युवक वैचारिक एकता का अनुभव नहीं करता । ऐसी हालत में उसका दाम्पत्य जीवन विफल हो जाएगा । समाज का नैतिक पतन भी दाम्पत्य जीवन के विघटन का कारण बन रहा है । तालाक की संभावना बढ़ती जा रही है ।

जात-पात में शैथिल्य

आजादी के पहले ही जाति-पाति की कठोरता का अनेक जननेताओं ने विरोध किया था । इस सिलसिले में महात्मा गांधी के प्रयासों का उल्लेख हो चुका है । वे सब मनुष्यों को परमात्मा के अंश मानते थे । स्वतंत्र भारत में व्यक्ति के सामाजिक तथा आर्थिक अस्तित्व का मानदण्ड उसकी जाति नहीं । वर्ग भेद की दीवारें धीरे धीरे ध्वस्त हो रही हैं । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह पुरानी सामाजिक व्यवस्था पूर्णत: मिट चुकी है । सच तो यह है कि भारतीय समाज अब भी जात्यधिष्ठित है ।

हरिजनोद्धार

गांधीजी हरिजनों को भगवान की अपनी सन्तान मानते थे । उनकी दृष्टि में हरिजनों की सेवा भगवान की है । उनका विश्वास था कि इस देश का उद्धार हरिजनों के उद्धार के साथ जुड़ा हुआ है । उन्होंने हरिजनोद्धार को राष्ट्र निर्माण का अंग माना । भारत सरकार गांधीजी के आदर्शों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न जारी रखती है[1] ।

---

1. Ishwari Prasad & S.K Subedkar- A history of Modern India - P.523

भारतीय संविधान जनता के उच्च-नीचत्व का समर्थन नहीं करता[1]। इसमें हरिजनों और अनुसूचित जातवालों को शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में पदों का आरक्षण किया गया है[2]। सन् 1955 में अस्पृश्यता निवारण अधिनियम पास हुआ[3]। इसके अनुसार छुआछूत को मानना दण्डनीय है[4]।

यह खेद की बात है कि अस्पृश्यता का निवारण पूर्ण रूप से नहीं हो सका है। विनोबा भावे, उनके अनुयायी तथा अन्य सैकड़ों समाज सेवा अब भी इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

ग्राम पंचायत

भारत ग्रामों का देश है। हमारे आर्थिक तथा सामाजिक जीवन की आधारशिला गांव है। गांधीजी कहा करते थे कि गांवों में ही भारत माता निवास करती है। भारत सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में देहातों के उद्धार को महत्वपूर्ण स्थान दिया। ग्राम पंचायतों की स्थापना का उद्देश्य यही है।

पुराने जमाने में भी भारत के गांवों में पंचायतें कार्य करती थी। स्वाधीन भारत में तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान ग्राम पंचायतों की स्थापना बल पकड़ने लगी[5]। पंचायतें गांववालों की समस्याओं को सुलझाने में और उन्हें आवश्यक उपदेश देने में सहायक है। इनके कारण ग्रामीण जीवन में बदलाव के चिह्न लक्षित होने लगे हैं।

---

1. हरिदत्त वेदालंकार - भारत का सांस्कृतिक इतिहास - पृ. 181
2. Jagadish Sharma - Encyclopedia of Indian Struggle for Freedom - P. 188
3. Hans Nagpal - A Study of Indian Society - 1972 - P. 188.
4. Clause - 6 Untouchability in any form is abolished and the imposition of any disability on that account shall be an offence - Constitution of India Section 17
5. पूरनचन्द जोशी - भारतीय ग्राम : संस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास - पृ. 132

<u>भ्रष्टाचार और स्वार्थभावना</u>

स्वतंत्रता के बाद हमारे समाज में भ्रष्टाचार बढ़ने लगे हैं । त्याग और बलिदान की भावना लुप्त हो रही है । लोग स्वार्थ के पीछे दौड़ रहे हैं । आम लोगों की अपेक्षा नेता गणों में ये दोष अधिक दृष्टव्य है । छल, कपट आदि की अतिव्याप्ति के कारण आज का सामाजिक जीवन अत्यंत जटिल और धूमिल हो गया ।

<u>पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण</u>

पश्चिमी सभ्यता के प्रसार ने हमारी कुरीतियों, अन्धविश्वासों और रूढि परंपराओं का ध्वंस किया है । नवीन जीवन चर्या पर पश्चिम सभ्यता का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ रहा है। स्वाधीन भारत का शिक्षित समाज अपनी संस्कृति और धर्म की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है । वेश भूषा, रहन-सहन, खान-पान, शिष्टाचार आदि सब में पश्चिम का ही अनुकरण हो रहा है । अनुकरण की यह प्रवृत्ति जीवन के बाह्याचारों तक ही सीमित नहीं रहती । हमारी वर्तमान संस्कृति भी पश्चिम को आदर्शवत् ग्रहण करती है । शिक्षा का क्षेत्र भी पश्चिमी पाटर्न को स्वीकार करता है । स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में अंग्रेज़ी का अभी महत्वपूर्ण स्थान है । यद्यपि प्रादेशिक भाषाओं के विकास का समर्थन सर्वत्र किया जाता है । तथापि अंग्रेज़ी का प्रमुत्व अक्षय रहता है । अभिजात वर्ग पश्चिमी सभ्यता की रक्षा और प्रचार अपनी प्रतिष्ठा केलिए आवश्यक मानता है । इस मनोवृत्ति का, अशिक्षित बहुसंख्यक भारतीय समाज अनुकरण करता है । इस स्थिति में परिवर्तन की संभावना बहुत दूर दिखाई पड़ती है ।

हमारा साहित्य भी पश्चिमी अनुकरण का समर्थक है । काव्य, नाटक इत्यादि के क्षेत्र में जो नये नये प्रयोग पश्चिम में किये जा रहे हैं उनका अन्धाधुन्ध अनुकरण किया जाता है ।

आर्थिक परिस्थिति

स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभिक वर्षों में भारत की आर्थिक स्थिति अत्यंत बिगड़ी हुई थी[1]। शरणार्थी समस्या, खाद्यान्न की कमी, बढ़ती हुई आबादी, पिछड़ी हुई कृषि व्यवस्था आदि ने आर्थिक विकास पर अवरोध डाला था। इससे देश को बचाने केलिए सरकार ने अनेक उपाधियाँ ग्रहण की।

खाद्यान्न की समस्या

स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर देश की आबादी करीब पैंतालीस करोड़ थी[2]। इसके अतिरिक्त करोड़ों की संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान से आये। उनके खान-पान, आवास इत्यादि का भार सरकार को उठाना पड़ा। आवश्यक खाद्यान्न का उत्पादन इस देश में नहीं होता था। पंजाब और सिन्ध जो गेहूँ के उत्पादन केलिए मशहूर थे, पाकिस्तान में मिला दिये गये। अतः 1947 के पश्चात् भारत में खाद्यान्न की समस्या गंभीर हो उठी[3]। इसको सुलझाने केलिए सरकार ने अमेरिका जैसे संपन्न राष्ट्रोंसे आर्थिक सहायता ले ली[4]।

पंचवर्षीय योजनाएँ

देश के आर्थिक विकास को लक्ष्य में रखते हुए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की[5]। मार्च 1950 में प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में

---

1. Asok Mehtha — India Today — P.42
2. Eugene Fodor — Fodor's India — P. 128
3. R D. Cornwell — world history in the 20th century
4. B M Bhatia — famines in India — P. 343
5. B. S. Minhas — planning and the poor

योजना - आयोग का गठन हुआ और जुलाई 1951 में आयोग ने पहली पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार की[1]। पंचवर्षीय योजनाओं ने कृषि, सिंचाई, ग्रामोद्योग यातायात शिक्षा, स्वास्थ्य, दलितोद्धार, मजदूरों की प्रगति आदि पर विशेष ध्यान दिया[1]। इन योजनाओं की उपलब्धि ग्राम जीवन में दृष्टिगोचर होती है

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) में कृषि की ओर अधिक ध्यान दिया गया[2]। इसके अन्तर्गत गाँवों को अनेक ब्लाकों में विभक्त किया गया। गाँव की सफाई, ग्रामीणों में शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य सुधार आदि बातों को प्रमुखता दी गई। यातायात, उद्योग, खनिज, सामाजिक कल्याण आदि पर भी प्रस्तुत योजना ने ध्यान दिया। इससे देशीय आय में 18 प्रतिशत वृद्धि हुई[3]।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में मूल और वृहद् उद्योगों के विकास को लक्ष्य बनाया गया[4]। इसके फलस्वरूप इस्पात और लोहे के उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि हुई। बेकारी की समस्या सुलझाने पर प्रस्तुत योजना में प्रथम बार ध्यान दिया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) में सर्वाधिक महत्व दिया गया उत्पादक वस्तुओं और मशीनी औजारों के निर्माण को[5]। फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना की परिसीमा सन् 1966 है। हमारे अध्ययन के क्षेत्र की सीमा 1965 है अतएव शेष पंचवर्षीय योजनाओं की चर्चा छोड़ दी जाती है।

योजनाबद्ध आर्थिक विकास हमारे इतिहास में एक नया कार्यक्रम है। इसके द्वारा देश का बहुमुखी विकास संभव हुआ। इनके खेती के क्षेत्र में विकास के चिह्न दृष्टिगत हुए[6]। औद्योगिक प्रगति धीरे धीरे संभव होने लगी

---

1. B.N. Puri — A Study of Indian History p 272
2. M.L. Jhingan — Economics of Development and planning P 5
3. V.B Kulkarni — British Dominion in India and After – P 328
4. India — A Reference Annual – 1974 – P 228
5. Ibid — Ibid

जमीन्दारी की समाप्ति

भारतीय कृषक शताब्दियों से सरकारी अफसरों और जमीन्दारों के शोषण सह रहे थे। स्वातंत्र्य संग्राम के अवसर पर देश के प्रबुद्ध नेताओं ने कृषक वर्ग को कृषि भूमि के स्वत्वाधिकारी बनाने का प्रण किया था। कांग्रेस ने घोषणा की थी कि जमींदारी प्रथा समाप्त की जाएगी। सरकार ने जमीन्दारी प्रथा के उन्मूलन का कानून बनाया। सन् 1950 में उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश में जमीन्दारी उन्मूलन संबंधी विधान पारित किये गये।[1] फिर भी जमीन्दार अपनी तरफ से अपने अधिकारों की रक्षा केलिए प्रयत्नवान रहे। नई व्यवस्था से मेल नहीं खाने के कारण वे एक प्रकार का आतंकमय जीवन बिताने लगे[2]।

जमीन्दारी समाप्ति के शुभ-परिणाम बहुत जल्दी ही कृषकों पर दृष्टिगत होने लगे। पिछड़ी हुई जातियों के विकास की अनेक योजनाएँ सरकार ने कार्यान्वित की। इससे कृषक ही अधिकतर लाभान्वित हुए। निरक्षरता निवारण का प्रयत्न भी जारी था। स्त्रियों के उद्धार की योजना भी बनाई गई। सबके फल स्वरूप भारतीय किसानों के जीवन में नवजागृति लक्षित होने लगे।

औद्योगिक विकास

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के समय में देश के उद्योग धन्धों की दशा बहुत गिरी हुई थी। अतः औद्योगिक विकास केलिए पंचवर्षीय योजनाओं में पर्याप्त राशि खर्च की गई। वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के भी कदम उठाए गए।

---

1. कृष्ण बिहारी मिश्र - आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.236

2. विवेकी राय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन प्रथम सं. पृ.185

हु.

अनेक प्रांतों में यंत्र-विज्ञान की संस्थाएं स्थापित हुईं। मशीन विज्ञान में प्रशिक्षण का प्रबंध[1] किया गया। सन् 1950-51 में इस्पात का उत्पादन 1.4 करोड टन था जो 1960-61 में 3.5 करोड टन हो गया[2]।

देश के कोने कोने में फैक्टरियां खोली गईं। ये आर्थिक विकास में अत्यन्त सहायक हुईं। सरकार का ध्यान केवल भारी उद्योगों तक ही सीमित नहीं रहा। बहुत से छोटे छोटे कारखाने खोले गए और कुटीर उद्योगों के विकास का कार्य भी शुरू हुआ[3]।

प्रबुद्ध श्रमिक वर्ग

स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व ही भारतीय मजदूर वर्ग का एक सुगठित संगठन बन चुका था। औद्योगिक विकास के साथ मजदूर संगठनों की संख्या में वृद्धि हुई[4]। इस विषय का प्रतिपादन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। संविधान ने मजदूरों को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान किए हैं[5]। आधुनिक मजदूरों को अपेक्षाकृत अधिक जीवन-सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

पूंजीपति वर्ग

आधुनिक अर्थ में पूंजीवाद का आविर्भाव भारत में प्रथम विश्वयुद्ध के समय से ही माना जाता है। औद्योगिक प्रगति ने एक ओर जहां श्रमिक वर्ग को विकसित किया तो दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग को। पूंजीपतियों का शोषण उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है।

---

1. K. M. Panikar – A Survey of Indian History – P. 244
2. M. L. Jhingan – The Economics of Development and Planning – P. 550
3. V. B. Kulkarni – British Dominion in India & After – P. 329
4. 1965- तक आते ही रेजिस्टर्ड ट्रेड यूनियनों की संख्या 12801 हो गई। (G. K. Sharma – Labour movement in India – Its Past and Present – P. 148
5. Ibid – Ibid P. 148

भूदान आन्दोलन

विनोबा भावे द्वारा संचालित यह आन्दोलन, भूमि समस्या के परिहार की दिशा में एक सत्प्रयत्न अवश्य था । यह काफी जनप्रिय हो सकता था । भूमिहीन कृषकों की क्रान्ति की अग्नि में बड़े बड़े भूस्वामी स्वाहा हो सकते थे । पर इस आन्दोलन ने उस क्रान्ति को रोका । यह आशा की गई कि अहिंसात्मक ढंग से भूमि का बंटवारा किया जाएगा । भूदान का प्रमुख ध्येय शान्तिपूर्ण तरीकों से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाना था ।[1] सरकार की ओर से भी इसे समर्थन प्राप्त हुआ ।[2] सन् 1966 तक भूदान आन्दोलन द्वारा चार करोड़ एकड़ भूमि का संचयन किया गया ।[3] इसने जनता में आशा अंकुरित की । लेकिन अपनी लक्ष्य सिद्धि में वह सफल नहीं हुआ ।

बेकारी

भारत की सबसे भीषण समस्याओं में से एक है बेकारी । केवल अशिक्षित, निरक्षर जनता ही नहीं, बल्कि उच्च शिक्षित युवक युवतियाँ भी बेकारी के शिकार हैं । इसके परिहारके सरकारी प्रयत्न प्रायः असफल ही रहते हैं । शिक्षित बेकारों की संख्या भयानक रूप से बढ़ती रहती है । इस कारण नवयुवकों के मानसिक ढांचे ही बदल गए हैं । शासन के विरुद्ध वे विद्रोह करने लगे हैं । बेकारी की समस्या वर्तमान सामाजिक जीवन में गतिरोध उत्पन्न कर रही है ।

अकाल और अनावृष्टि

हमारे देश में भुखमरी अकाल, अनावृष्टि आदि कोई असाधारण घटना नहीं है । सन् 1943 के बंगाल के दुर्भिक्ष में लाखों की संख्या में लोग मर मिटे ।

---

1. Jagadish Sharma – Encyclopedia of Indian Struggle for Freedom – P. 33
2. R. D. Cromwell – World History in the 20th Century – P. 238
3. Jagadish Sharma – Encyclopedia of Indian Struggle for Freedom –

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अकाल अनेक हुए । सन् 1965 में देश के अधिकांश भाग अकाल और अनावृष्टि के शिकार हुए । सेकडों गांव जनशून्य हो गए । गाय, बैल, बकरी आदि पशुधन को नष्ट हो गया । अकाल पीड़ितों की सहायता की सरकार ने चेष्टा की । लेकिन उससे कहने लायक कोई प्रयोजन नहीं हुआ ।[1]

महंगाई

अत्यावश्यक चीज़ों की मूल्य वृद्धि के कारण जनता को बहुत सहना पड़ा है । सन् 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के कारण खाद्यान्न महंगे हो गए ।[2] भावों में नियंत्रण और वितरण में रेशनिंग लाया गया ।

भारत की परंपरागत, कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था स्वतंत्र्य के साथ उद्योगाधिष्ठित हो गई । पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास चिह्न लक्षित होने लगे हैं । कृषि के क्षेत्र में नये नये वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग के कारण अभूतपूर्व उन्नति हुई । आर्थिक विकास की दिशा में इस देश ने पर्याप्त उन्नति की है । फिर भी विश्व के आर्थिक मान चित्र पर भारत अब भी पिछड़ा ही रहता है । गरीबी, बेकारी, आबादी, महंगाई जैसी समस्याएं अब भी पूर्ववत् बनी रहती है ।

धार्मिक परिस्थिति

मानव जीवन की निष्ठा और आचार व्यवहार में धर्म का स्थान महत्वपूर्ण है । मनुष्य को बदलने में सहायता देनेवाला अनुशासन धर्म कहलाता है[3] । भारतीय समाज और धर्म का संबंध अति पुरातन और अविच्छेद्य है । हमारी

---

1. A. M. Bhatia - Famines in India - P 342
2. Ibid Ibid - P 355
3. डो॰ पुरु॰ राधाकृष्णन — भारतीय संस्कृति - कुछ विचार - पृ॰ 13

सामाजिक प्रगति में धर्म का अपना योगदान है[1]। स्वातंत्र्योदय से भारत का धार्मिक वातावरण परिवर्तित नहीं हुआ। उसकी धर्मप्रवणता लेश मात्र भी कम नहीं हुई। इसका अर्थ यह नहीं कि लोगों के धार्मिक दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

धर्म का अभिनव रूप

अभिनव धर्म कर्मकांड के मायाजाल से अपने को मुक्त रखना चाहता है। वैज्ञानिक दृष्टि का प्रभाव जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान धर्म पर भी पड़ा है। विश्वास के साथ वैयक्तिकता का सम्मिश्रण होने लगा है। फलतः कठोर रूढ़िवादिता में शैथिल्य आता। इस तथ्य की अवहेलना नहीं हो सकती है। हमारे शिक्षित युवकों के बीच नास्तिकता पनप रही है। धर्म के प्रति उपेक्षा दृष्टि आत्मिक जीवन की महत्ता को समाप्त कर देने वाली है[2]। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख योग्य है कि धर्म के परंपरागत रूप को सबकुछ माननेवाले परंपरावादी लोग भी स्वतंत्र भारत में कम नहीं।

धर्म-निरपेक्षता

धर्म निरपेक्षता से तात्पर्य धर्म हीनता से नहीं। सभी धर्मों को विकास का समान समान अवसर देनेवाली राज्य व्यवस्था धर्मनिरपेक्ष शासन व्यवस्था कहते हैं। स्वतंत्र भारत धर्म पिरपेक्ष राष्ट्र है। भारत में विभिन्न धर्मों का समान स्थान है। धर्म के क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप नहीं। एक धर्म को छोड़कर दूसरे को ग्रहण करने की स्वतंत्रता सबको प्राप्त है। यह धर्म निरपेक्षता ही भारत के जनतांत्रिक संगठन का मूल आधार है।

T. B Bottomore - Sociology - P 22

1. ~~सीताराम झा श्याम - भारतीय समाज का स्वरूप - पृ-129~~

धर्म, राजनीति और साम्प्रदायिक संघर्ष

राजनीति ने धर्म को भी अपना प्रभाव क्षेत्र बना लिया। धर्म की ओर में राजनीतिक फायदा उठाया जा रहा है। इस स्थिति ने अनिवार्य रूप से धर्मान्धता को बढ़ावा दिया है। फलतः अनेक साम्प्रदायिक दंगे बढ़ गए हैं। हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिक वैमनस्य का परिणाम रहा - भारत विभाजन। हिन्दु-मुसलमानों के बीच ही नहीं बल्कि हिन्दुओं की अन्यान्य जातियों के बीच भी दंगे होते रहते हैं। साम्प्रदायिकता के विष से भारत का जनहृदय अब भी कलुषित है।[1]

वसुधैव कुटुम्बकम्

आधुनिक समाज और साहित्य में मानवतावादी दृष्टि बद्धमूल दिखाई पड़ती है। यह युग की अनिवार्यता है। प्रकृति को मानव ने प्रायः जीत लिया है। आज मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन मनुष्य ही है। संसार के विनाश की सामग्री आज मनुष्य के हाथ में ही वर्तमान है। ऐसी स्थिति में मानवतावाद ही एकमात्र सहारा है।

यूरोप में ही आधुनिक अर्थ में मानवतावादी विचारों का उदय हुआ। वहाँ 18वीं 19वीं शताब्दी में व्यक्ति की महिमा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास हुआ जिसे मानववादी विचारधारा का नाम दिया गया।[2] इससे वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को भी व्याप्ति मिली है। स्वतंत्रता

---

1. डॉ॰ एस॰ राधाकृष्णन - धर्म और समाज - पृ॰29।

2. डॉ॰ देवेश ठाकुर - आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानववादी भूमिकाएं पृ॰2

प्राप्ति के पहले ही महात्मा गांधी रवीन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानन्द, अरविन्द जैसे समाज सुधारकों ने मानवतावादी दृष्टिकोण का अत्यधिक विस्तार किया था[1] वर्तमान भारत में गांधीवाद, सर्वोदयवाद जैसे दर्शन मानवतावाद की महिमा गा रहे हैं। आज की जनता धर्म, जाति, वर्ग, संप्रदाय राष्ट्र आदि की सीमाओं को तोड़कर विश्वबन्धुत्व का अनुभव कर रही है। विनाश की विभीषिकाओं से दुनिया की रक्षा मानवतावाद से ही संभव दीख पड़ती है। साहित्यकारों ने इस अनिवार्यता को सहज ही समझ लिया है। आधुनिक नाटक, कविता, उपन्यास सब इस के प्रमाण है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - एक दृष्टि

संघर्षमय परिवेश में ही स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य रचा गया। वर्तमान सामाजिक जीवन की जटिलता का सच्चा दर्पण है स्वातंत्र्योत्तर साहित्य पुरानी प्रवृत्तियों से सर्वथा भिन्न है आधुनिक साहित्यक प्रवृत्ति। परतंत्र भारत के साहित्यकारों का महान लक्ष्य था विदेशी दासता और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति प्राप्त करना[2]। एक ही स्वर में वे उसकेलिए बोल उठते थे। पर वर्तमान युग में लक्ष्य का आयाम बहुत बढ गया है। आज की परिस्थिति में वैयक्तिकता प्रमुख है। यह सही है कि स्वतंत्रता ने देश और व्यक्ति के सामूहिक विकास में सहायता दी। यह भी सही है कि व्यक्ति में "मैं स्वतंत्र हूँ ऐसे व्यक्तित्व बोध को भी उसने उजागर किया। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य जगत की सही स्थिति है[3]।

---

1. सीताराम झा श्याम - भारतीय समाज का स्वरूप - पृ॰83
2.
3. डा॰ रामगोपाल सिंह चौहान - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य प्रथम सं॰ 1965, पृ॰30

देश-विभाजन और उसकी अनुवर्ती विभीषिका प्रथम दशक के स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की मुख्य प्रतिध्वनि थी[1]। सामाजिक और राजनीतिक अराजकता भ्रष्टाचार, नैतिक उच्छृंखलता, निराशा, कुंठा आदि भी आधुनिक साहित्य में अभिव्यक्ति पाती है। देश के नवीन परिदृश्यों और संघर्षों के बीच में पड़कर साहित्यकार नई समस्याओं, उत्तरदायित्वों, साहित्यक धारणाओं और विचारों का सामना कर रहे हैं। ऐसी जटिल परिस्थिति में ही स्वतंत्र भारत का साहित्य अपनी नई दिशा खोज रहा है[2]।

आदर्शवाद यथार्थवाद, प्रयोगवाद जैसे साहित्यक सिद्धांतों से तथा गांधीवाद विनोबा दर्शन, अरविन्द दर्शन, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद जैसे जीवन दर्शनों से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकार प्रभावित है। पाश्चात्य जीवन दर्शन और विचार धारा के अनुकरण की प्रवृत्ति अत्यन्त सशक्त है[3]। ऐसे लेखक भी कम नहीं जो भारतीय समाज और जीवन को अपने साहित्य का मूलाधार स्वीकार करते हैं। विदेशी सिद्धांतों का प्रचार करनेवाले साहित्यकार भी भारत की संस्कृति और विचार परंपराओं को स्वीकार करने को उद्यत दीख पड़ते हैं[4]।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य तत्वतः सामाजिक क्रान्ति का समर्थक है। राजनीतिक क्षेत्र में वह एक नया मोड़ लाना चाहता है। आर्थिक समानता का वह जोरदार शब्दों में समर्थन करता है। मंगलमय सामाजिक आदर्श की स्थापना केलिए वह कटिबद्ध है। अनेक नये प्रयोगों के प्रवृत्त है आज के साहित्यकार। फलतः साहित्य के शिल्प और शैली, कथ्य और कथन, प्रतिपाद्य और प्रतिपादन सबमें नवीनता दृष्टिगत होने लगी है।

---

1. डा॰ नगेन्द्र - आस्था के चरण - पृ॰307
2. रामगोपाल सिंह चौहान - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - पृ॰29
3. विष्णु कान्त शास्त्री - कुछ चन्दन की कुछ कपूर की - पृ॰237
4. रामकुमार वर्मा - साहित्य चिन्तन - पृ॰141

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप मानवीय मूल्य बोध में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया जन जीवन में निराशा, कुंठा और संत्रास छा गए है । इस विषम स्थिति की अभिव्यक्ति साहित्य की सारी विधाओं में हुई है । नाटक पर भी इस स्थिति का गहरा प्रभाव पड़ा है[1] ।

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत पश्चिमी नाट्य साहित्य के प्रदीप ये बेकेत, जान आस्बर्न, सार्त्रे, कामू, आर्थर मिलर आदि । इनकी रचनाओं और प्रयोगों ने नाट्यवादी पर एक क्रान्ति ही पैदा कर दी । सारी दुनिया की नाट्यवेदी इनसे प्र भावित हुई । हमारे नाटककार भी स्पष्ट इनके प्र भावक्षेत्र में आ गए । वर्तमान जीवन की व्यर्थता, विसंगति और जटिलताओं का यथार्थ चित्रण इनकी रचनाओं में मिलता है । व्यापक दृष्टि रखने वाले हिन्दी नाटककार अपनी परिस्थिति के अनुरूप प्रभाव ग्रहण करने में कभी संकोच नहीं करते नाट्य क्षेत्र में नए युग का आविर्भाव इस ग्रहणशीलता का परिणाम है । चिन्तन और शिल्प की नवीनता ग्रहण करते हुए हमारे नाटककारों ने अपनी सृजन शक्ति का सदुपयोग किया[2] ।

विषयवस्तु के चयन में भी नवीनता प्राप्त होती है । समाज के सभी पक्ष इस में प्रतिनिधित्व पाते हैं । अपनी परंपरागत रीति का विरोध करते हुए नव्यतम प्रयोगों को अपना रहा है[3] । विविध प्रयोगों के द्वारा एक नवीन नाट्यचेतना को स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है[4] ।

1· सं· डॉ· महेन्द्र भटनागर - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - पृ·95

2· डॉ· लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ·281

3· डॉ· दशरथ ओझा - नाट्य निबन्ध - पृ·106

4· सं· वेदप्रकाश शर्मा अमिताभ - ले· रामकुमार गुप्त समकालीन हिन्दी साहित्य - पृ·113

"नाटक युग का बारोमीटर है" - यह उक्ति स्वतंत्र्योत्तर नाटक के संबंध में सार्थक है । समस्या संकुल वर्तमान जीवन से रस ग्रहण करके ही आज का नाट्यसाहित्य स्थापित होता है । युगीन संवेदना को अभिनयात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में ही आज का नाटककार अपनी सफलता मानता है । इसका सद् परिणाम यह हुआ कि सर्जक की हृदय वीणा की झंकृति से रंगमंच गूंज उठा । उसी स्वर लहरी के मधुर गान का इतिहास है स्वातंत्र्योत्तर नाटक का इतिहास[1] ।

स्वातंत्र्योत्तर नाटक वैविध्य-विकसित है । उनमें वर्तमान सामाजिक जीवन की विभीषिकाएँ प्रतिफलित हैं । तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है । उसमें द्वन्द्वों व संघर्षों के अवसर बढ़ते जा रहे हैं । यही कारण है कि वर्तमान नाटकों में जीवन की संघर्ष संकुलता का निरूपण किया जाता है ।

हमने यथास्थान स्थापित किया है कि सामाजिक नाटकों की परंपरा बहुत पुरानी है । लेकिन आधुनिक सामाजिक नाटककार पुरानी परंपरा से अपने को मुक्त रखते हैं । वे नाट्य रचना को एक नूतन रूपविधान में बांध लेना चाहते हैं । यथार्थ जीवन के चरित्रों और उनके कार्यकलापों को गहरे जीवन सन्दर्भों से जोड़ने का सार्थक प्रयास भी करते हैं । पुराने सामाजिक नाटकों में घटनाओं को प्रमुखता दी जाती थी । लेकिन आधुनिक नाटककार संवेदना के चित्रण को अधिक महत्व देते हैं ।

वर्तमान युग में ऐतिहासिक नाटक भी काफी मात्रा में लिखे गए हैं । इनमें इतिहास को नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास है । स्वतंत्रता संघर्ष काल में जनता को आत्मबल देना पुराने ऐतिहासिक नाटकों का लक्ष्य था ।

---

1. दशरथ ओझा - नाट्य निबन्ध - प्रथम सं० 1972, पृ०204

लेकिन आज का साहित्यकार देश के नव निर्माण में दिशा निर्देश और आत्मबल प्रदान करना ही अपना लक्ष्य मानता है । वह इतिहास के आदर्शों को आलोचक की दृष्टि से देखता है । आज का प्रबुद्ध लेखक नये युग के नये प्रतिमानों पर इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करता है[1]।

इनके अतिरिक्त पौराणिक व सांस्कृतिक नाटक भी आधुनिक युग में रचे गए हैं । पुराने कथानक को इनमें आधुनिक परिवेश में ग्रहण किया जाता है । वर्तमान जीवन की निराशा, कुंठा और विभीषिका को वाणी दी जाती है । ये असल में युग बोध की व्याख्या करने वाले हैं । यही इनकी प्रासंगिकता

विचार और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी नाट्य जगत में नूतन प्रयोग प्राप्त होते हैं । इनका स्पष्ट प्रमाण है गीति नाट्य । आधुनिक गीति-नाट्य पश्चिम से प्रभावित है । पर उसमें काव्य तत्व सुरक्षित है । रेडियो नाटक प्रतीकात्मक नाटक आदि भी आधुनिक नाट्य साहित्य के टैकनीक की नूतन उपलब्धियाँ है ।

निष्कर्ष

1. यद्यपि भारत स्वतंत्र हुई तो भी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विकास की दृष्टि से वह अब भी पराधीन महसूस होता है इस पराधीनता को दूर करने का दायित्व समाज के सदस्यों का है ।

---

1. राम गोपालसिंह चौहान - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.172

2. समकालीन साहित्यकार इस उत्तरदायित्व के प्रति सचेत होने के कारण आधुनिक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक दुरवस्था के प्रति समाज को भी सचेत बनाने की चेष्टा उनकी साहित्यिक रचनाओं में दृष्टव्य है । इस क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक की सेवाएं बहुमूल्य हैं ।

3. स्वातंत्र्योत्तर नाटककार वर्तमान राजनीति, समाज, धर्म और आर्थिक स्थिति के अच्छे अध्येता हैं ।

4. पूर्ववर्ती नाट्यकारों की अपेक्षा स्वातंत्र्योत्तर नाटककार और अधिक क्रान्तिकारी दिखाई पड़ते हैं ।

5. ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक, सांस्कृतिक और धार्मिक रचनाओं के द्वारा आधुनिक नाट्यकारों ने सामाजिक क्रान्ति का आह्वान किया है ।

6. स्वातंत्र्योत्तर नाटककार पुराण और इतिहास की पुरातन घटनाओं में आधुनिक युग के अनुरूप परिवर्तन की स्वतंत्रता चाहते हैं ।

विभिन्न प्रकार के नाटकों मेंसे कोई भी प्रमुख सामाजिक पक्ष ऐसा नहीं छोड़ा गया है जिसपर नाटककार की दृष्टि न पड़ी हो ।

8. स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा नाटक ही आधुनिक समाज के साथ सर्वाधिक निकट संबंध स्थापित रखता है और सामाजिक कला के तौर पर समाज पर अपना प्रभाव स्थायी रखता है ।

!!!!!!!!!!!!

अध्याय - 7

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों का राजनीतिक परिवेश

1948 - 1965

सप्तम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों का राजनीतिक परिवेश 1948–1965

राजनीति, समाज का अभिन्न अंग है । अतएव सामाजिकता के अध्ययन के संदर्भ में राजनीतिक गतिविधियों का उल्लेख भी आवश्यक है ।

सन् 1948 से 1965 तक के अठारह वर्ष का समय हमारे राजनीतिक इतिहास का एक अत्यंत गौरवमय अध्याय है । वर्षों का स्वतंत्रता संग्राम 1947 में, स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ समाप्त हो जाता है ।

स्वातंत्र्योपलब्धि के साथ देश का विभाजन भी हो गया । बंटवारे ने सचमुच भारतीय जीवन को कठोर आघात पहुंचाया । लूट, हत्या और अपहरण से सारा देश त्रस्त और आतंकित हो गया । असंख्य लोग घरबार छोड़कर भागने के लिए विवश हुए । हज़ारों की संख्या में मुसलमान भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये । पाकिस्तान के विस्थापित हिन्दू लोग भारत भाग आये । इन शरणार्थियों के पुनर्निवास और आजीविका का दायित्व भारत सरकार ने अपने ऊपर ले लिया । देश भर शरणार्थी केम्पें खोली गयीं । इस दायित्व ने देश की आर्थिक स्थिति पर बड़ा धक्का लगाया ।

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का परिहार देश के विभाजन के द्वारा नहीं हो सका । वस्तुतः साम्प्रदायिक संघर्ष विभाजन के उपरांत इतना बढ गया कि इसके दल दल से भारत भूखंड का बचना असंभव प्रतीत हुआ । महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक सद्भावना की स्थापना केलिए दिन रात प्रयत्न जारी रखा । एतदर्थ उन्होंने आमरण अनशन करने की घोषणा की । इससे यद्यपि साम्प्रदायिक संघर्ष के प्रसार में थोड़ी से मन्दता पड़ी तथापि उसकी ज्वालामुखी निरन्तर धधकती ही रही । उसीके विस्फोट के परिणाम स्वरूप महात्मा गांधी हुतात्मा हुए । जनवरी 30, 1948 को गांधी जी की हत्या की गई ।

1950 में भारतीय संविधान पारित किया गया । भारत लोकतंत्रात्मक राष्ट्र घोषित हुआ । सभी नागरिक धर्म और जाति के भेद भाव के बिना समान मान लिये गये । स्वतंत्र भारत में विभिन्न राजनैतिक दल अस्तित्व में आये । यद्यपि यह लोकतांत्रिक दृष्टि से राष्ट्र सत्ता केलिए उपयोगी है तथापि इन दलों ने धीरे-धीरे उन उच्च आदर्शों का परित्याग किया जिन्हें स्वतंत्रता संग्राम में मार्ग दर्शक मान लिया गया था । परिणाम स्वरूप राजनीति का क्षेत्र अवसरवाद तथा भ्रष्टाचार का अड्डा हो गया त्याग और बलिदान की भावना एकदम समाप्त हो गई । राजनैतिक कार्यकर्ता स्वार्थपूर्ति के प्रयत्न में लग गये । अधिकार के स्थानान्तरण से जनजीवन में कोई व्यापक परिवर्तन नहीं हुआ । गरीबों का शोषण यथापूर्व जारी रहा ।

इस युग में एक केन्द्रीय शासन सत्ता के अधीन रहने का प्रथमतः अनुभव भारत ने पाया । इससे अवश्य राजनैतिक दृष्टि से एकता आ गई पर सामाजिक दृष्टि से वह उतना ही विश्रृंखल रहा जितना कि विदेशी शासन में । इतिहास यह बता देता है कि भौतिक जीवन की एकता ही राष्ट्र जीवन की एकता है । भौतिक परिस्थिति के ऐक्य के अभाव में कोई कोई राष्ट्र मजबूत नहीं हो सकता इस अवस्था का अनुभव भारत को भी प्राप्त हुआ । आलोच्य युग में उसने तीन बार विदेशी आक्रमण का सामना किया । पाकिस्तान से दो बार उसे लड़ना पड़

और एक बार चीन से । एक पृथक केन्द्रीय शासन सत्ता के कायम रहने के कारण ही भारत अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित रख सका ।

ये सारी परिस्थितियाँ भारत जैसे विशाल देश के इतिहास में बिलकुल स्वाभाविक ही कही जा सकती हैं । हमारी जनता ने एक से अधिक बार यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझकर अपने स्वत्व अस्तित्व को बचाने की क्षमता उसमें वर्तमान है ।

देश की राजनैतिक तथा सामाजिक अस्तव्यस्तता का जीता जागता चित्रण हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होता है विशेषकर उसके नाट्य साहित्य में । सुगमता को ध्यान में रखते हुए हम छोटे छोटे शीर्षकों में नाट्य प्रतिबिंबित राजनैतिक परिस्थिति का विश्लेषण करेंगे ।

देश विभाजन

जनमानस को सर्वाधिक धक्का पहुँचानेवाली घटना है देश-विभाजन । इससे भीषण नरसंहार हुए, स्त्रियों पर बलात्कार किया गया संपत्ति लूट ली गई । धर्मान्धता की आड में मनुष्य ने जो पाशविक व्यवहार किए, उनका मर्मस्पर्शी चित्रण स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों में मिलता है ।

इस प्रसंग में प्रथमतः उल्लेखनीय हैं उपेन्द्र नाथ अश्क । आपकी अंधी गली में निम्न और मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण है । विभाजन ने अनेक लोगों को अनाथ बना दिया । इस संबंध में नाटक का त्रिपाठी कहता है - "ऐसे ही बच्चे हैं, जो छोटे उम्र में ही अनाथ हो गये, विभाजन की इस आग ने जिनके सभी सगे - संबंधियों को निगल लिया"[1] ।

1· उपेन्द्रनाथ अश्क - अंधी गली - प्रथम सं· पृ·5।

पाकिस्तान केवल मुसलमानों का ही स्थान रहा । वहाँ से बहुत से हिन्दू शरणार्थी बनकर भारत आये । राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की "धर्म की धुरी" [1953] में इन निराश्रय हिन्दुओं की करुण कथा है[1] । शरणार्थी लड़की कमला पाकिस्तान के धर्मांधों के जाल से भाग आती है । उसकी स्थिति पर चिन्ता प्रकट करते हुए, धर्मांधता का विरोध करते हुए संतराम कहता है कि जब लोग पीड़ा का अनुभव करते हैं तब निकम्मे होकर नाम जपते रहने से भगवान तृप्त नहीं होंगे[2] ।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की नाट्य कृतियों में भी यह स्थिति चर्चित होती है । उनकी न्याय की रात इसका उदाहरण है । इसमें देश विभाजन के कुपरिणामों का जीता जागता विवरण है । विभाजन ने अनेक सामाजिक तथा मानवीय समस्याओं को जन्म दिया । अनेक परिवारों की नींव ही ढह गई । जीवन के भविष्य के संबंध में हमारी आशा ही धूमिल हो गयी । जनता तथा सरकार के सामने शरणार्थी समस्या कुशल रूप धारण कर उठ खड़ी हो गई । इसकी प्रतिकृति आधुनिक नाटकों में मिलती है[3] ।

शरणार्थी समस्या

यह देशविभाजन से जनित सबसे भीषण समस्या है । लाखों हिन्दू पाकिस्तान छोड़कर भारत भाग आए । इनके सम्मुख समस्याएँ असंख्य थीं, जैसे खाना, कपड़ा, आवास, नौकरी आदि । स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने इसका ईमानदारी के साथ प्रतिपादन किया है ।

---

1. राजाराधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी, पहला अंक, पहलादृश्य पृ.5
2. वही तीसरा अंक, दूसरा दृश्य 5 पृ.77
3. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात - तीसरा सं. 1968, दूसरा अंक - पृ. 68

न्याय की रात [चन्द्रगुप्त विद्यालंकार] की शरणार्थी लड़की कमला नौकरी केलिए घूमती रहती है । हेमन्त के सामने वह अपना आंचल पसारती है "मैं तो नौकरी की तलाश में आपके पास आई हूं । मुझे नौकरी चाहिए और कुछ भी नहीं । मैं अपना काम पूरी मेहनत और ईमानदारी से करूंगी।[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की "पत्र ध्वनि [1952] में शरणार्थियों की अधिवास-समस्या उभरती है । इसकी दुरन, विस्थापितों के पुनरधिवास की चर्चा करके अपने पति शहाबुद्दीन से कहती है - हमें अपने मुल्क के सब भाई बहनों के साथ भाई बहन बनकर रहना होगा । .... भागे हुए भाइयों को वापस बुलाना है, उनकेलिए मकान बनवाना और उन्हें फिर से बसाना है"[2] ।

"अश्क" की अन्धी गली में शरणार्थी समस्या के परिहार केलिए भारत सरकार द्वारा किये गए कार्यक्रमों का वर्णन है[3] । शरणार्थियों के पुनरधिवास केलिए बड़ी बड़ी रकमें सरकार ने खर्च की । पर सरकारी कर्मचारियों ने उस राशि से अपने स्वार्थ की पूर्ति भी की । इस दुरवस्था का भी चित्रण मिलता है "अन्धी गली" में[4] ।

हमारे कलाकार जन जीवन की समस्याओं के जागरूक चितेरे हैं । यह इन रचनाओं से व्यक्त है । वे निरन्तर जनहित का समर्थन कर रहे हैं । अफसरों के शोषणों का अनावरण करते हुए वे जनता को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाना चाहते हैं ।

---

1. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात - पहला अंक - पृ.47
2. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - पत्र ध्वनि - विद्यार्थी सं. - पृ.77
3. उपेन्द्रनाथ अश्क - अन्धी गली - दूसरा अंक - पृ.38-39
4. वही पृ.37-38

प्रजातंत्र का समर्थन

प्रजातंत्र भारतीय शासन व्यवस्था में एकदम नया कार्यक्रम है। इसमें अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। जनता को इसके लिए सुशिक्षित करने की आवश्यकता है। अनेक नाटककारों ने इसका गौरव समझ लिया। उनकी रचनाएं इसकी साक्षी हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'हंस मयूर', 'पूर्व की ओर' आदि नाटकों में प्रजातंत्र के दायित्वों का प्रतिपादन है। 'हंस मयूर' का चन्द्रसेन (मल्लपुर जनपद का नायक) प्रजातंत्र शासन के महत्व को इस प्रकार उद्बोधित करता है - "सबको अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वाधीनता होगी, जनमार्ग सुरक्षित रखे जावेंगे जिससे कृषि और उद्योगों की उपज दूर तक आ जा सके। किसी से भी बलात् काम, धन या अन्न नहीं लिया जावेगा।"[1] 'पूर्व की ओर' में भी गणराज्य के विधान को श्रेष्ठ माना गया है। इसमें अगस्त्य द्वारा वारुण द्वीप में गणतंत्र स्थापित किया जाता है। उस अवसर पर वह गणतंत्र राष्ट्र में नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जनता को सचेत बना देता है।[2]

'नाना फड़नवीस' (1962) रामकुमार वर्मा का नाटक है। फड़नवीस प्रजातंत्र शासन का समर्थन करते हैं। उनकी राजनीति स्वार्थ के पैरों नहीं चलती जनता के पैरों चलती है।[3]

'शपथ', 'शतरंज के खिलाड़ी', बान का मान, कीर्ति स्तंभ जैसे नाटकों में हरिकृष्ण प्रेमी प्रजातंत्र शासन की भावना से प्रभावित दिखाई

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - हंसमयूर - चौथा अंक, चौथा दृश्य - पृ.130
2. वही पूर्व की ओर - पृ.184
3. रामकुमार वर्मा - नाना फड़नवीस - 1962, तीसरा अंक - पृ.80

पड़ते हैं। "शपथ" ‖1951‖ का विष्णुवर्धन राज-सत्ता से बढ़कर प्रजा सत्ता को अधिक शक्तिशाली स्वीकार करता है[1]। गणतंत्र राष्ट्र के व्यक्तिगत अधिकारों पर प्रकाश डाला गया है "शतरंज के खिलाड़ी" ‖1955‖ नाटक में[2]। आन का मान[3] और कीर्ति स्तंभ[4] में भी प्रजातंत्र का समर्थन पाया जाता है।

"प्रियदर्शी" ‖1962‖ में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रजातंत्र शासन पर बल देते हैं। इसका उपगुप्त कहता है कि गणतंत्र शासन में अधिकार जनता का है[5]।

सेठ गोविन्द दास के "महात्मा गांधी" में ऐसे रामराज्य का संकल्प है जिसमें बिना ऊँच-नीच भाव के, बिना अमीर-गरीब भाव के सबको समान अधिकार प्राप्त है। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की उद्घोषणा महात्मा गांधी इस प्रकार करते हैं - "स्त्री और पुरुष के समान हक हों। गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह देश मेरा है और इसके संगठन में मेरे मत की भी कीमत है। ....
.... अस्पृश्यता नाम की कोई चीज़ न रहे"।

"पक्षध्वनि" नामक अपनी रचना में आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्रजातंत्र शासन का समर्थन करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामन्ती शासन समाप्त हो गया है। आज का समय प्रजातंत्र का है। इस अवस्था को नाटक का पात्र गुरुदेव सहर्ष स्वीकार करते हैं[6]।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - शपथ - पृ. 116-117
2. हरिकृष्ण प्रेमी - शतरंज के खिलाड़ी - पृ. 104-105
3. हरिकृष्ण प्रेमी - आन का मान - पहला अंक, पृ. 20
4. हरिकृष्ण प्रेमी - कीर्ति स्तंभ - दूसरा अंक, दूसरा दृश्य - पृ. 73
5. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी - पहला अंक, पृ. 2-3
6. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - पक्षध्वनि - पहला अंक - पृ. 8

उदयशंकर भट्ट के "शक विजय" में मालव का वीर राजकुमार वरद, देश की सारी शक्तियों को एकत्रित करके आक्रमणकारी शकों को परास्त कर,ता देश की सुरक्षा के लिए केन्द्रीय शक्ति को वह आवश्यक मानता है[1]।

"नये हाथ" (1953) में विनोद रस्तोगी का अभिमत यह है कि स्वतंत्र भारत का शासन केवल नाम मात्र के लिए जनतंत्र है। उनकी मान्यता है कि जहाँ अधिकतर लोग अशिक्षित हैं, अभावग्रस्त हैं वहाँ जनतंत्र पनप नहीं सकता[2]।

इन रचनाकारों की दृष्टि जनतंत्र तथा जनता के अधिकारों की ओर सदा जागरूक रहती है। इनका मन तभी विक्षुब्ध होता है जब जनतंत्र के तत्वों की उपेक्षा देखी जाती है। यह शुभ सूचक है। क्योंकि विचारकों, कवियों तथा कलाकारों की जागरूकता पर ही देश का जनतंत्र कायम रह सकता है।

पंचशील तत्त्व

आधुनिक भारत के इतिहास में पंचशील तत्वों का अपना महत्त्व है। इनका आविष्कार स्व० जवाहरलाल नेहरू तथा स्व० चो एन लाइ दोनों ने मिलकर किया (195) में। इन शीलों के अनुशीलन से आजकल के संघर्षात्मक विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है, इनके आविष्कर्ताओं का विश्वास यही था। वस्तुतः ये तत्त्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं और विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों के नियामक हो सकते हैं। परन्तु इतिहास की यह विडम्बना है कि जिस चीन ने पंचशील के आविष्कारों में भारत का साथ दिया था उसी ने 1962 में भारत पर आक्रमण किया।

1• उदयशंकर भट्ट - शक विजय

2• विनोद रस्तोगी - नये हाथ - तृतीय अंक - पृ•100

3•

पंचशीलों का साहित्यकारों ने हार्दिक स्वागत किया । हमारा नाट्य साहित्य इसका ज्वलंत प्रमाण है । इन शीलों का समर्थन ज्ञानदेव अग्निहोत्री, देवदत्त अटल, कौशल्या, सब्बरवाल आदि की रचनाओं में मुख्यतया प्राप्त है ।

प्रथम उल्लेखनीय कृति है ज्ञानदेव अग्निहोत्री की नेफा की एक शाम । किसी दूसरे राष्ट्र के मामले में हस्तक्षेप न करना, पंचशील का प्रमुख तत्व है । प्रस्तुत रचना में भारत सरकार की इस नीति का प्रतिपादन है । इसमें एक भारतीय फौजी का कथन है - "हम खुद किसी की कोई चीज़ नहीं छीनते हैं । हम सिर्फ छीनी हुई चीज़ें वापस लेते हैं[1] ।

युद्ध की विभीषिका, दुष्परिणाम, निरर्थकता, शान्ति-स्थापना आदि बातों पर देवदत्त अटल रचित शान्ति दूत (1952) प्रकाश डालता है । ग्रामों को अरण्य में परिणत कर देनेवाले, नगरों को निर्जर खंडहर बना देनेवाले वसुधा को विधवाओं और अनाथ बालकों के आर्त क्रन्दन से भर देनेवाले युद्धों को मानव जाति का चिर वैरी माना गया है[2] । युद्ध का विरोध और शान्ति का प्रचार इस रचना में किया गया है । श्रीकृष्ण[3], गान्धारी[4], युधिष्ठिर[5] आदि पात्र शान्ति - स्थापना का समर्थन करते हैं ।

कौशल्या सब्बरवाल, अनन्ता में युद्ध का विरोध करती हैं । लेखिका पंचशील तत्वों से प्रभावित हैं । इस नाटक का कथानक गुप्त काल से संबंधित है । इसकी अनन्ता महाबलाधिकृत की पुत्री है । उसका अभिमत है कि युद्ध किया जाता है अन्याय से, मानव को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से

---

1. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - नेफा की एक शाम, प्रथम सं. 1967, पहला अंक पृ.37
2. देवदत्त अटल - शान्ति दूत - प्रथम अंक दूसरा दृश्य - पृ.10
3. वही पंचम दृश्य - पृ.27
4. वही तीसरा अंक - पृ.95
5. वही प्रथम अंक, दूसरा दृश्य - पृ.12

किन्तु जिस युद्ध का ध्येय केवल राज्य विस्तार ही हो .... जिस युद्ध के द्वारा केवल शक्ति संचय ही किया जा सके, वह मानव हत्या ही तो है"[1]। मालव राजा महासेन गुप्त का पुत्र माधव गुप्त भी युद्ध का विरोधी है[2]।

पंचशील, विश्वराज नीति के क्षेत्र में अपनी आशा चिरस्थायी रखने में सफल नहीं हुए। भारत पर चीन का जो आक्रमण हुआ उसने यह स्पष्ट कर दिया है कि सिद्धान्तों की श्रेष्ठता शक्तिशाली के मार्ग मे 'प्रतिबन्ध नहीं प्रस्तुत करती। उसने पंचशील तत्वों के चारों तरफ जो प्रभामण्डल था उसे निरर्थक कर दिया।

विदेशी आक्रमण

विदेशी आक्रमणों से मतलब भारत पर चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमणों से है। इन दोनों आक्रमणों (1962 में और 1964 में) ने सुप्त भारतीय आत्मा को पुनः जागृत कर दिया। वह एक व्यक्ति के रूप में शत्रुओं से जूझने केलिए तैयार हो गया। इन युद्धों ने प्रमाणित किया कि भारत की आत्मा अमर है और सब प्रकार के बाह्य उत्पीड़नों से वह अपने को बचा सकती है।

देश पर जो विदेशी आक्रमण हुए उनसे आलोच्य युगीन साहित्यकार बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी रचनाओं में विदेशी आक्रमण का विरोध करते हुए राष्ट्र-स्वातंत्र्य की रक्षा पर बल दिया। विदेशी आक्रमण से संबद्ध प्रमुख रचनाएं हैं - नेफा की एक शाम, तस्वीर उसकी, अपनी धरती और जय जवान जय किसान"।

"नेफा की एक शाम" (ज्ञानदेव अग्निहोत्री) चीनी आक्रमण पर आधारित रोमांचकारी नाटक है। देश की रक्षा केलिए गुरिल्ला दल ने भी अपना पूरा

---

1. कंचनलता सब्बरवाल - अनन्ता - प्रथम अंक, तीसरा दृश्य - पृ.13
2. वही दूसरा अंक, छठवाँ दृश्य - पृ.60

सहयोग दिया था। इसका प्रतिपादन इस नाटक में है। गुरिल्ला दल का सरदार है गोगो। चीनियों पर अपनी विजय कथा वह यों कहता है - "इस चीनियों का एक फौज-दस्ता सियांग नदी के पुल पर बैठा खा-पी रहा था अंधेरे में सरकते हुए हम सब उनके ठीक पीछे जा पहुंचे - और सबको गोलियों से भून डाला। तमाम हथियार और गोला बारूद हमारे हाथ लगा है।[1]

चिरंजीत की "तस्वीर उसकी" भी चीनी आक्रमण पर प्रकाश डालनेवाली कृति है।[2] देश की सुदृढ मनःशक्ति जो चीनी आक्रमण के अवसर पर प्रकट हुई थी, अपनी धरती (रेवती सरन शर्मा) में अभिव्यक्ति पाती है। इसका बसवन्त भारतीय सेना का सिपाही है। उसकी ब्याह अभी अभी हुई। इसी अवसर पर भारत पर चीनी आक्रमण होता है। वह अपनी छुट्टी कैंसिल करके रणक्षेत्र पहुंचता है। नाटककार का कथन है कि आपत्ति के समय देश भक्त अपना सब कुछ न्योछावर करने को तैयार होते हैं। अपनी जन्म भूमि केलिए, अपने फौजी भाईयों केलिए वे रक्त दान करते हैं। अर्थ तथा सोना संचय करके देश की प्रतिरक्षा में सरकार की सहायता करते हैं।[3]

श्याम लाल मधुप के जय जवान जय किसान (1965) नाटक में भी भारत पर चीनी आक्रमण की चर्चा की गई है। स्वतंत्र भारत में पंचशील तत्वों के परिपालन का प्रयास हो रहा था। विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों में संघर्ष को दूर करने के उपाय सोचे जा रहे थे। इसी बीच 1962 में भारत पर चीन ने आक्रमण किया। प्रस्तुत रचना का विजयसिंह यही बात देवी सिंह से कह रहा है - "राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के सिद्धान्तों पर हम चले हैं, अब भी चल रहे हैं। .... नेहरू जी ने इस दुनिया में शान्ति बनाये रखने की जो कोशिशें कीं उन्हें सभी जानते हैं, लेकिन सन् उन्नीस

---

1. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - नेफा की एक शाम - चतुर्थ सं॰प्रथम अंक - पृ॰23
2. चिरंजीत - तस्वी उसकी
3. रेवती सरन शर्मा - अपनी धरती - तृतीय अंक-पहला दृश्य - पृ॰71

सौ बासठ में, चीन ने हमसे दोस्ती करके जो विश्वासघात किया वह तो तुम्हें याद होगा"[1]।

प्रस्तुत नाटक भारत पर पाकिस्तानी आक्रमण (1965) पर भी प्रकाश डालता है। सैनिक विजय सिंह की शादी के दिन ही उसे तार मिलता है कि देश पर पाकिस्तान आक्रमण कर रहा है। वह अपनी छुट्टी कैंसिल करके तुरन्त मोर्चे पर पहुँचता है।

इन रचनाओं से यह विदित होता है कि हमारी सरकार, सेना और सामान्य जनता देश की रक्षा केलिए सब कुछ न्योछावर करने केलिए तैयार थी। और जब तक यह तत्परता कायम रहेगी तब तक हमारी स्वाधीनता सुरक्षित रहेगी, इसमें संदेह नहीं।

देश-प्रेम और स्वातंत्र्य-सुरक्षा

विदेशी आक्रमण के दिनों में देश प्रेम और स्वातंत्र्य-सुरक्षा की भावना को जागृत रखना नाटककारों ने अपना कर्तव्य माना। देशकेलिए सब कुछ न्योछावर करने का आह्वान अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने दिया।

हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में देश प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति की है। इसके प्रमाण हैं, उद्धार, प्रकाश स्तंभ, शीशदान, शतरंज के खिलाड़ी, रक्तदान आदि नाटक। [illegible]

"उद्धार" (1949) की नायिका कमला की दृष्टि में जन्मभूमि जननी से बढ़कर गरिमायुक्त है[2]।

---

1. श्याम लाल मधुप जय जवान जय किसान - प्रथम सं. तीसरा दृश्य-पृ.20.
2. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - चतुर्थ सं. तीसरा अंक, पाँचवाँ दृश्य - पृ.109

'प्रकाश स्तंभ' [1954] में शारीत के चरित्र द्वारा 'प्रेमी' ने देश प्रेम जगाने का प्रयत्न किया है - "देश को माँ समझने की भावना ही वह आधार है जिसका अवलंब लेकर भारत के संपूर्ण मानव समाज को संगठन में बाँधा जा सकता है"[1]।

'शीशदान' का तांत्या टोपे, भारत माता के प्रति अपने दिव्य प्रेम को व्यक्त करते हुए कहते हैं - "पता नहीं मुझे किस दिन अपना शीश माँ के चरणों पर चढ़ा देने पड़े, इसलिए संसार के नातों में से ऊपर उठकर रहना चाहता हूँ"[2]।

मातृभूमि से प्रेम न रखनेवालों को 'शतरंज के खिलाड़ी' की प्रभा कायर मानती है[3]।

'रक्तदान' [1962] का कथानक अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर से संबद्ध है। वे देश के प्रेम से इतने अधिक आविष्ट हैं कि मरते दम तक पराधीनता का सहन नहीं कर सकते।

उदयशंकर भट्ट की रचना 'क्रान्तिकारी' देश प्रेम की भावना से भरी हुई है। इसकी वीणा देश प्रेम की ज्वाला से जलनेवाली युवती है। उसका पति मनोहरसिंह सी॰आई॰डी॰ अफसर है। वह अपनी पदोन्नति लक्ष्य करके क्रान्तिकारियों की सूचना सरकार को देने का प्रयत्न कर रहा है। सोते हुए पति की हत्या करके वीणा क्रान्तिकारियों की सहायता करती है और इस प्रकार राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य निभाती है[4]।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - प्रकाश स्तंभ - दूसरा अंक, पहला दृश्य - पृ॰51
2. वही शीशदान - पहला अंक, पहला दृश्य - पृ॰31-32
3. वही शतरंज के खिलाड़ी - तीसरा अंक, दूसरा दृश्य - पृ॰93
4. उदयशंकर भट्ट - क्रान्तिकारी

"अपनी धरती" भी इस कोटि की रचना है । इसका पात्र मास्टरजी, देश भक्तों की यों प्रशंसा करता है[1] ।

"आषाढ़ का एक दिन" में मोहन राकेश ने कालिदास को मातृभूमि का परम अनुरागी चित्रित किया है । राजधानी उज्जैनी में समस्त सुखों की उपलब्धि होने पर भी कालिदास का चित्त अपनी जन्म भूमि केलिए तड़पता है - "मैं अनुभव करता हूं कि यह ग्राम - प्रान्त मेरी वास्तविक भूमि है । मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हुआ हूं[2] ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के "जगद्गुरु" मृत्युंजय" आदि नाटकों में यही भावना अभिव्यक्त है । "जगद्गुरु" में शंकराचार्य, भारत देश के प्रति अपनी श्रद्धा एवं प्रेम व्यक्त करते हैं - "हम सबकी यह मातृभूमि मेरेलिए पार्वती का पार्थिव रूप है । इस भूमि पर जब मैं चलता हूं श्वास से अपना भार ऊपर खींचे रहता हूं कि कहीं मेरे चरण माता की देह पर क्लेश न उत्पन्न करें[3] । "मृत्युंजय में महात्मा गांधी बार-बार भारत भूमि पर ही जन्म लेने का भाग्य प्रदान करने की विनती भगवान से करते हैं[4] ।

वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक नाटकों के प्रणयन में विशेष विचक्षण हैं । उनके नाटकों में स्वभावतया राष्ट्र की महिमा का वर्णन पाया जाता है । उनकी एक प्रसिद्ध नाट्य कृति है, "झांसी की रानी" जिसमें स्वतंत्रता संग्राम का एक अत्युज्वल पर्व सजीव हो उठता है ।

"मेवाड़ की एक शाम" में देश प्रेम की भावना संश्लिष्ट है। उसमें केवल सरकार या जनता का ही देश प्रेम व्यंजित नहीं होता बल्कि देश रक्षा केलिए

---

1. रेवती सरन शर्मा - अपनी धरती - तीसरा अंक, पहला दृश्य - पृ.72
2. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन - पहला अंक - पृ.46
3. लक्ष्मी नारायण मिश्र - जगद्गुरु - पृ.55
4. वही मृत्युंजय - पहला अंक, पृ.41

सर्वस्व अर्पित करनेवाले सैनिकों की त्याग भावना भी प्रदर्शित होती है । इसका एक सैनिक कहता है कि उसकी केवल एक ही माता है और वह है भारत माता ।[1]

चिरंजीत की तस्वीर उसकी भी देश प्रेम की उज्ज्वल तस्वीर खींचती है । यह चित्र विशेष मर्मस्पर्शी है । इसमें एक बालक के देश प्रेम का परिचय भी दिया गया है । पन्द्रह साल का सुशील अपने भविष्य के स्वप्न का यों विवरण देता है कालेज की पढ़ाई समाप्त होते ही मैं सेना में भर्ती हो जाऊंगा और इन धोखे-बाज शत्रुओं के साम्राज्यवादी पंजों से अपने देश की पावन धरती का चप्पा-चप्पा मुक्त कराऊंगा"[2] । इसी नाटक की अंजना भी जन्म भूमि केलिए प्राण त्याग करने में अपना शान मानती है[3] ।

'जयजवान जय किसान- का सैनिक विजयसिंह देश रक्षा केलिए अपने को न्योछावर करना चाहता है । उसकी माँ यह पसन्द नहीं करती । वह अपने पुत्र से प्रार्थना करती है कि वह नौकरी छोड़ कर घर लौट आवे । लेकिन विजयसिंह नहीं मानता[4] । उस वीर जवान की पत्नी मालती में भी देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है[5] ।

आधुनिक साहित्य में देश प्रेम की भावना जिस शक्ति मत्ता के साथ प्रतिपादित हुई है उसी रीति से स्वातंत्र्य सुरक्षा की आवश्यकता भी अभिव्यक्ति पाती है । ये दोनों भावनाएं समवेत रूप में नाटकों उभर आती हैं । जहाँ जहाँ देश प्रेम का महत्व स्थापित हुआ है, अनिवार्य रूप से देश रक्षा की भावना भी ।

---

1. ज्ञानदेव अग्नि होत्री - मेवा की एक शाम - चतुर्थ सं॰दूसरा अंक, पृ॰89
2. चिरंजीत - तस्वीर उसकी - प्रथम सं॰ पहला अंक - पृ॰16
3. वही तीसरा अंक पृ॰ 47
4. श्याम लाल मधुप - जय जवान जय किसान - दूसरा दृश्य - पृ॰15
5. वही पांचवां दृश्य- पृ॰41

हरिकृष्ण प्रेमी प्रमुख रूप से राजनैतिक विषयों को नाट्य सामग्री के रूप में ग्रहण करनेवाले हैं । "उद्धार" की स्थापना यह है कि स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है और उसकी प्राप्ति और सुरक्षा केलिए युद्ध करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है[1] ।

अपने किसान भाइयों को संबोधित करते हुए जय जवान जय किसान का किशन सिंह कहता है कि देश की रक्षा केलिए जी - जान की बाजी लगाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है । जवान मोर्चे पर दुश्मनों से जूझते हुए देश की रक्षा करता है और किसान खेतों में हल से जोतते हुए[2] ।

कृष्ण बहादुर चन्द रचित "उजाला" की पतली कहती है कि लंबी गुलामी के बाद ही हमें आज़ादी मिली है और उसकी सुरक्षा करना प्रत्येक नौजवान का कर्तव्य है[3] ।

इन रचनाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि हिन्दी नाटक साहित्य तत्कालीन सामाजिक गति विधियों का प्रतिबिंब विधायक है । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में नाना सामाजिक परिवर्तनों का चित्रण हुआ है । यह परिवर्तन बहुमुखी इसमें राजनैतिक जागरण स्वतंत्रता की रक्षा, देश-प्रेम आदि सामाजिक चेतना की सभी बहि:स्फूर्तियाँ समान रूप से सक्रिय लक्षित होती हैं । यह चेतना तब अधिक स्पष्ट होती है जब देश पर कोई सामूहिक विपत्ति आ पड़ती है । यही कारण है कि चीन तथा पाकिस्तानी आक्रमणों के सन्दर्भ में जनता का देश-प्रेम और स्वातंत्र्य सुरक्षा की त्वरा अधिक उद्ग्र हुई ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - दूसरा अंक, पाँचवाँ दृश्य - पृ.62
2. श्यामलाल मधुप - जय जवान जय किसान - चौदहवाँ दृश्य - पृ.82
3. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला - प्रथम अंक - पृ.21

राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता की अनिवार्यता पर ही नहीं, बुद्धिवादी साहित्यकार भी निरंतर बल देते आ रहे हैं। उसी ने स्वतंत्रता प्राप्ति को सुगम बनाया था। लेकिन स्वतंत्रता के उपरान्त हमारे सामाजिक जीवन में विघटन की प्रवृत्तियाँ जड़ पकड़ने लगीं। दीर्घदृष्टि रखनेवाले जन नेता ऐक्य का निरन्तर सन्देश देते रहे हैं। इसकी परिस्फूर्ति साहित्य में पायी जाती है। नाटककार विशेषकर राष्ट्र की एकता पर बल देते हैं। यह प्रवृत्ति निरंतर विकस्वर हो रही है।

इस प्रकार के नाटकों की संख्या कम नहीं है। सबका सर्वेक्षण असंभव होने के कारण हमने प्रतिनिधि रचनाओं को ही चुन लिया है।

राष्ट्रीय एकता का समर्थन हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों की प्रमुख प्रवृत्ति है। वे विभिन्न धर्मों के समन्वय में राष्ट्र तथा जनता का कल्याण माननेवाले हैं। इनके नाटक अतएव हिन्दू - मुस्लिम ऐक्य के समर्थक हैं। इतिहास के पन्नों से सामग्री ग्रहण करते हुए प्रेमी यह प्रमाणित करते हैं कि हमारी परम्परा में धार्मिक संघर्ष की अपेक्षा समन्वय के ही तत्व अधिक वर्तमान हैं। परिमाण की दृष्टि से देखने पर हरिकृष्ण प्रेमी का योगदान इस दिशा में सबसे अधिक है[1]। इन की स्थापना यह है कि हिन्दू तथा मुसलमानों के सौहार्द तथा सामंजस्य पर ही राष्ट्र की एकता निहित है।

"प्रेमी" के "शाम का मान" नाटक का दुर्गादास, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की समाप्ति के लिए संकुचित भावनाओं का परित्याग आवश्यक समझता है। उसका अभिमत है कि हमें पहले इन अनावश्यक संकीर्ण और हानिप्रद सीमाओं को तोड़ना होगा तब कहीं एक बलवान हिन्दू समाज का निर्माण होगा। उसके परचात् हिन्दू और मुसलमान के बीच की सामाजिक दीवार तोड़ी जा सकेगी[2]।

---

1. डॉ० रमासेन गुप्त - हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
प्रथम सं० 1971 - पृ० 10[illegible]

एकता के बल पर राष्ट्र की रक्षा का सन्देश हरिकृष्ण प्रेमी ने "उद्धार" में दिया है[1]।

"रक्तदान" (हरिकृष्ण प्रेमी) का नायक बहादुर शाह ज़फर, अपनी जनता के सामने राष्ट्रीय एकता की बात कहता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों भारत की सन्तान हैं, दोनों भाई-भाई हैं .... इस समय जब कि भारत के स्वतंत्रता के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने मस्तक कटा रहे हैं, हमें अपनी राष्ट्रीय एकता हर कीमत पर कायम रखनी है[2]।

देशी राज्यों के बीच के अनैक्य की ओर संकेत करते हुए "प्रेमी" "कीर्ति स्तंभ" में राष्ट्रीय एकता का सन्देश देते हैं[3]।

"शपथ" की मन्दाकिनी व्यक्तिगत मानापमान और हानि लाभ को भूलकर, संपूर्ण राष्ट्र के हितार्थियों को ध्यान में रखकर एक राष्ट्र-पताका की छत्र-छाया में खड़े होकर एकता का गीत गाने का सन्देश देती है[4]।

"शतरंज के खिलाड़ी" का अलाउद्दीन इस बात पर दुःख प्रकट करता है कि भारत में एकता की बहुत कमी है। जाति-भेद ने एकता को मिटा दिया है। "प्रेमी" के इस नाटक का रत्न सिंह कहता है "हम एक दूसरे की जड़ें खोदने का प्रयत्न कर अपने ही आपको निर्बल बना रहे हैं"[5]।

लक्ष्मी नारायण मिश्र "वितस्ता की लहरें" में यह मानते हैं कि भारत की सारी शक्तियाँ एक झण्डे के नीचे एकत्रित हो जाय तो विदेशी शक्ति का हम आसानी से मुकाबिला कर सकते हैं[6]।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - दूसरा अंक, पांचवां दृश्य - पृ. 65
2. वही रक्तदान पृ. 116
3. वही कीर्तिस्तंभ पृ. 113
4. वही शपथ पृ. 83
5. वही शतरंज के खिलाड़ी पृ. 73
6. लक्ष्मी नारायण मिश्र - वितस्ता की लहरें - चतुर्थ सं. 1962, पहला अंक, पृ

"नाना फड़नवीस" [ले॰रामकुमार वर्मा] के नायक फड़नवीस का मन्तव्य है कि भारत की आपसी फूट ने ही देश की एकता को नष्ट कर दिया है। एकता का अभाव विदेशी आक्रमणों केलिए सहायक रहा है। इसलिए जनता के बीच एकता स्थापित करना परम आवश्यक है[1]।

प्रान्तीयता, जातिवाद जैसी क्षुद्र भावनाओं ने राष्ट्रीय एकता को नष्ट कर दिया है। इस स्थिति की चर्चा लक्ष्मी नारायण लाल के "रक्तकमल" में की गई है। नाटक का इन्द्रजीत सिंह, देश-सुरक्षा केलिए आन्तरिक एकता को अत्यंत आवश्यक मानता है[2]।

कृष्ण बहादुर चन्द्र अपनी रचना "उजाला" में एकता की स्थापना का स्वप्न देखते हैं[3]। एकता के अभाव में देश प्रगति नहीं कर सकता ये ही आपकी सम्मति है। राधिका रमण प्रसाद सिंह कृत "मज़ूर बदली बदल गए मज़ारें" में भी यही बात व्यक्त पाई जाती है[4]।

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव का प्रतीकात्मक नाटक है "नींव की दरारें" इसमें संयुक्त परिवार के विघटन के चित्रण है। एकता के अभाव में आपस में लड़ने वाले भारतीयों की अधोगति इस में अंकित है। परिवार की माता अपने बेटों के बीच एकता स्थापित करना चाहती है[5]।

इन नाटककारों ने हमारी राष्ट्रीय एकता के अभाव की ओर विशेष संकेत दिया है। हमारा देश अनेक प्रान्तों में विभक्त है। भाषा और संस्कृति

---

1. रामकुमार वर्मा - नाना फड़नवीस - पृ॰87
2. लक्ष्मी नारायण लाल - रक्तकमल पहला अंक, दूसरा दृश्य पृ॰48-49
3. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला - पृ॰22
4. राधिकारमण प्रसाद सिंह - मज़ूर बदली बदल गए मज़ारें - दूसरा दृश्य पृ॰41
5. कृष्ण किशोर श्रीवास्तव - नींव की दरारें - तीसरा अंक - पृ॰102

की दृष्टि से भी इसमें पर्याप्त विभिन्नता है । इस विभिन्नता के बावजूद राष्ट्र की रक्षा केलिए हमें एक साथ प्रयत्न करने की आवश्यकता है । यही बात इन कलाकारों की रचनाओं से स्पष्ट होती है ।

स्वतंत्रता और समान-अधिकार

भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता और समान अधिकार दिया गया है । यद्यपि ये मानवीय अधिकार संविधान द्वारा सुरक्षित हैं तथापि व्यावहारिक क्षेत्र में इनका प्रयोग पूर्णतया हो रहा है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । इसीलिए जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागृत रखना कलाकार का कर्तव्य हो गया । इसी कारण नाटककार इस दिशा में सतत जागृत दिखाई देते हैं ।

कालिदास कपूर की रचना "धर्मविजय" इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । इसमें लेखक यह घोषित करता है कि प्रत्येक भारतीय समान भौतिक सुगमताओं का अधिकारी है । प्रस्तुत नाटक के पात्र बौद्ध भिक्षु नागसेन, राजकुमार कौण्डिन्य, और उसका दोस्त अशोक बौद्ध धर्म के प्रचारक हैं । उन्हें बन्दी बनाकर इन्द्रप्रस्थ के राजा आदित्ययश के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । अन्य राज्यों में वहाँ के धर्म के विरुद्ध प्रचार करने के औचित्य पर राजा प्रश्न करते हैं । नागसेन उत्तर देता है "मेरे विचार से सारा संसार एक है और प्रत्येक मनुष्य को निर्वाण प्राप्त करने का अधिकार है"[1] ।

"उजाला" [ले॰ कृष्ण बहादुर चन्द्रा] की पत्नी अपने स्वप्न के भारत का उल्लेख करती है जिसमें सबका अपना घर होगा, अपना खेत होगा और सब लोग आज़ाद होंगे[2] ।

---

1. कालिदास कपूर - धर्म विजय - प्रथम अंक, दूसरा दृश्य - पृ॰27
2. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला - प्रथम अंक, पृ॰21

हमारे संविधान ने सारे नागरिकों को शिक्षा - प्राप्ति का समान अधिकारी घोषित किया है। सैय्यद कासिम अलि अपने नाटक "निर्माण" में इस समानता के अधिकार का अभिनन्दन करते हैं। इसका पात्र राघु "भारत सेवक समाज" का कार्यकर्ता और ग्रामोद्धार केलिए प्रयत्नशील है। उसका कथन है - "शिक्षा में कोई भेद भाव है ही नहीं, चाहे हरिजन हो, चाहे मुसलमान, चाहे ब्राह्मण - सब समान रूप से होगा"[1]।

इस विषय से सीधा संबंध रखनेवाले नाटकों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। प्रकारान्तर से जनता के मौलिक अधिकारों का समर्थन प्रायः सभी नाटककार किया ही करते हैं।

संकीर्णता का विरोध

किन्तु प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता स्वतंत्र भारत में तीव्रता होती रही भाषाओं के आधार पर प्रान्तों का पुनर्गठन किया गया। प्रान्तीयता और जातीयता का समर्थन करनेवाले अनेक राजनीतिक दल अस्तित्व में आए। देश की इस अस्त-व्यस्त परिस्थिति का प्रतिपादन किया है। वे चाहते हैं कि यह देश सभी संकीर्णताओं का अतिक्रमण करके स्वतंत्र और शक्तिशाली बना रहे। ऐसी देश हित साधक नाट्य रचनाओं का यहाँ विवेचन किया जाता है।

प्रथम उल्लेखनीय रचना है चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की न्याय की रात। इसका हेमन्त देश की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपने बहनोई राजीव से कहता है कि हमारे देश की सबसे बड़ी मानसिक बीमारी है भेद भावना। इससे कोई भी मुक्त नहीं हो सकता[2]।

---

1. सैय्यद कासिम अलि - निर्माण - प्रथम अंक, चौथा दृश्य - पृ.17
2. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात - तीसरा सं.तीसरा अंक, पृ.119

लक्ष्मी नारायण लाल का 'रक्तकमल' भी इसी बात की चर्चा करता है।[1] आज़ादी के बाद मुल्क में जितना जागरण होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। प्रान्तीयता जातिवाद, साम्प्रदायिकता और अराष्ट्रीयता के तत्वों ने देश को आ घेरा है।[2] जाति, भाषा, धर्म और प्रान्त के नाम पर सब कहीं संघर्ष है।[3]

हरिकृष्ण प्रेमी अपनी नाट्य रचनाओं में जातीयता और प्रान्तीयता का विरोध करते हैं। 'उद्धार' में वे मानते हैं कि हमारे पतन का एक मात्र कारण जातीय विभाजन और पारस्परिक वैमनस्य है। 'प्रकाश स्तंभ' प्रेमी के गुरु हारीत जातीय भेद भाव को त्यागने का उपदेश देते हैं - "यह आर्य है, यह द्रविड है, यह यवन इस प्रकार सोचने की मनोवृत्ति हमें त्यागनी होगी[4]। 'ममता' में प्रेमी का दृढ विश्वास यह है कि जातीयता की कृत्रिम सीमाएं ही मनुष्य को दुर्बल बनाती है और मनुष्यता को टुकडा कर देती है[5]। कृष्ण बहादुर चन्द्र रचित 'सरहद' के शराफत के प्रति पठान के शब्द हैं - "हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, तुर्किस्तान, बलुचिस्तान और ही कितना नाम देखा लेकिन किसी का नाम आपस में नहीं मिलता। कोई मजहब का नाम पर सकता ....[6]।

राष्ट्र भाषा और खादी

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में महात्मागांधी ने हिन्दी तथा खादी के प्रचार को अपने कार्यक्रमों का अभिन्न अंग माना था। इसलिए भारत की सरकारों ने अतएव हिन्दी और खादी के प्रचार को प्रश्रय दिया।

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रक्तकमल - दूसरा सं० पहला अंक, दूसरा दृश्य-पृ०
2. वही
3. वही तीसरा अंक, पहला दृश्य - पृ०10
4. हरिकृष्ण प्रेमी - प्रकाश स्तंभ - दूसरा अंक, पहला दृश्य - पृ०49
5. वही ममता पृ० [illegible]
6. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - सरहद - 1958 दूसरा अंक पृ०58

संविधान में हिन्दी के विकास के साथ प्रान्तीय भाषाओं के विकास को भी आवश्यक माना गया है । हिन्दी तथा खादी हमारे राष्ट्रीय जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू हैं । साहित्यकारों ने इन दोनों की महत्ता स्वीकार करते हुए अपनी रचनाओं उनको उचित स्थान दिया । इस क्षेत्र के प्रमुख नाट्यकार हैं लक्ष्मी नारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के "मृत्युंजय" नामक नाटक का एक पात्र है महात्मा गांधी । खादी और राष्ट्र भाषा उनके कर्म रथ के दो चक्के हैं[1] । हिन्दी का विरोध करनेवालों को वे राष्ट्र-द्रोही मानते हैं[2] ।

मिश्र जी के जगद्गुरु और कवि भारतेन्दु में भी हिन्दी भाषा का सशक्त समर्थन पाया जाता है ।

जगद्गुरु में योगी शंकर संपूर्ण राष्ट्र की एकता केलिए एक राष्ट्र-भाषा का प्रचार करते हैं[3] । हिन्दी का कट्टर समर्थक भारतेन्दु [कवि भारतेन्दु] उसकी महिमा का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं - "नागरी हमारी मिट्टी का सोना है । आर्थिक भारत की हाय हाय छटपटाहट के आगे जनता के जीवन केलिए जब जन साहित्य माँगा जायेगा, उर्दू की नाजुक कमर उस भार से टूट जाएगी[4] । यह उल्लेखनीय है कि मिश्र जी का भारतेन्दु उर्दू का निराकरण करते हुए हिन्दी का समर्थन करता है ।

उदयशंकर भट्ट की रचना है "पार्वती" । इसमें हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार करते हुए उसके प्रति आस्था प्रकट की गई है[5] । इसकी रीटा, हमेशा खादी ही पहनती है[6] ।

---

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र - मृत्युंजय दूसरा अंक - पृ.73-74
2. वही पृ.73
3. वही जगद्गुरु
4. वही कवि भारतेन्दु, प्रथम सं.1955 दूसरा अंक, पृ.68
5. उदयशंकर भट्ट - पार्वती

"मंगल सूत्र" [ले॰ वृन्दावनलाल वर्मा] के आचार्य की सभा में स्त्रियाँ खादी का वस्त्र पहनकर उपस्थित होती है[1]।

"पगध्वनि" में आचार्य चतुरसेन शास्त्री खादी का जयघोष करते हैं। इस नाटक की विशेषता यह है कि खद्दर को ही इसमें एक पात्र बनाया गया है। अपने लक्ष्य के संबंध में खद्दर कहता है - "ग्रामोद्योग और घरेलू धन्धों का पुनरुज्जीवन मेरा ध्रुव ध्येय है और सरल सादा जीवन मेरा व्रत है"[2]।

"नूर बदली बदल गये नज़ारे" [राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह] का ठाकुर साहब स्वतंत्र भारत में खादी का यथेष्ट प्रचार न होने के कारण निराशा का अनुभव करता है[3]।

इन रचनाओं से व्यक्त है कि गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों के प्रति साहित्यकार की आस्था अब भी अक्षुण्ण रहती है। फिर भी यह सूचित करना पड़ता है कि आज़ादी की उपलब्धि से इस प्रकार के विषयों के संबंध में लोगों का आवेश मन्द पड गया है। खादी पहननेवालों के प्रति लोगों के मन में अब वह श्रद्धाभाव नहीं रह गया जो पहले वर्तमान था। इसका कारण यह है कि पहले खादी त्याग और बलिदान का प्रतीक थी और अब वह अवसरवादिता का प्रतीक हो गयी है। हिन्दी भाषा के संबंध में भी बहुत कुछ यही बात सही है। स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों में हिन्दी राष्ट्रीयता का चिन्ह मानी जाती थी देश के कोने कोने में उसके प्रचार प्रसार का प्रयत्न होता रहा। लेकिन 1947के बाद वह स्थिति बदल गई और हिन्दीतर प्रदेशों में यह फरियाद सुनाई पडने लगी कि हिन्दी उनपर थोपी जा रही है। ऐसी संकीर्ण परिस्थिति में जनता का पथ प्रदर्शन करना कलाकारों का कर्तव्य है। उपर्युक्त नाटककारों ने यथासंभव अपना कर्तव्य निभाया है।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मंगल सूत्र
2. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - पगध्वनि - छठा अंक - पृ॰99
3. राधिकारमणप्रसाद सिंह - नूर बदली बदल गए नज़ारे - दूसरा अंक पाँचवाँ दृश्य - पृ॰61

सर्वोदय

स्वाधीन भारत मे राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में गांधीवाद का अनुसरण किया है यह नहीं कहा जा सकता। तथ्य तो यह है कि गांधी जी के अधिकतर आदर्श केवल कागजीय विषय रह गए। लेकिन विनोबा भावे जैसे कुछ आदर्शवादी गांधी-शिष्यों ने उनके सिद्धान्तों के आधार पर समाज के नव निर्माण की चेष्टा जारी रखी। गांधीजी का सामाजिक आदर्श सर्वोदय नाम से अभिहित किया जाता है जिसमें उदय या उत्कर्ष सबका होता है, निरास या निराकरण किसी का नहीं होता। इस विचार धारा को ध्यान में रखते हुए कुछ नाटक रचे गए हैं। इनमें "भूदान यज्ञ", "महात्मा गांधी [ले॰सेठ गोविन्द दास] आदि प्रतिनिधि स्वरूप उल्लिखित हो सकते हैं।

"भूदान यज्ञ" नाटक में विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण जैसे गांधी शिष्य ही पात्र हैं। सर्वोदय के आदर्शों की व्याख्या करते हुए विनोबा भावे कहते हैं "ऐसा राज जहां मज़दूर, किसान, मंत्री आदि सब यह समझे कि हमारेलिए कुछ हुआ है। ऐसे समाज का नाम सर्वोदय है"[1]।

सर्वोदय दर्शन का मूल तत्व प्रेम है। अपने महात्मा गांधी में सेठ गोविन्द दास ने इस मूल तत्व का प्रतिपादन किया है। बिड़ला भवन की प्रार्थना सभा में गांधीजी कहते हैं - "सर्वोदय में वही संलग्न हो सकता है जिसके हृदय पर प्रेम का साम्राज्य हो"[2]।

गांधीजी के विचारों और सिद्धान्तों के प्रचार को लक्ष्यवद् ग्रहण करनेवाले नाटक हिन्दी में बहुत कम हैं और जो हैं वे भी जनमानस को आकर्षित करने में समर्थ नहीं हुए हैं। स्वयं सत्ताधारियों ने अपने आचरण तथा व्यवहारों से यह प्रमाणित कर दिया कि गांधीवाद व्यावहारिक क्षेत्र में विफल हो गया है।

1• सेठ गोविन्द दास - भूदान यज्ञ - दूसरा सं॰दूसरा अंक, पहला दृश्य-पृ॰

2• वही महात्मा गांधी - 1959, पांचवां अंक, पांचवां दृ

गांधीवाद के प्रति आधुनिक समाज की यह उपेक्षा नाटककारों को अच्छी नहीं लगी। इसलिए गांधीवाद की पुन: प्रतिष्ठा का प्रयास, उपेक्षा भाव के प्रति खेद, दोनों कुछ नाटकों में अभिव्यक्त हुए हैं।

गांधीवाद का समर्थन

गांधीजी के सिद्धांत ही नहीं उनका अनुपम व्यक्तित्व भी हमारे जन जीवन को प्रमोदित कर रहे थे। हमारे साहित्य पर भी उनका प्रभाव कम नहीं है। स्वातंत्र्य के संग्राम को प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करनेवाले न जाने कितने लेखक और कवि हुए हैं। संपूर्ण भारतीय साहित्य गांधीवाद से बहुधा प्रभावित है। लेकिन स्वातंत्र्य की उपलब्धि के साथ स्थिति बदल गई है। अब गांधीवाद उतना सशक्त प्रेरणा स्रोत नहीं रहा जितना ही पहले था। फिर भी यह कहना गलत होगा कि गांधी-प्रभावापन्न नाट्य रचनाएं स्वातंत्र्योत्तरान्त हुई ही नहीं। निम्न लिखित नाटक इस दिशा में, विशेष उल्लेखनीय हैं - "हवा का रुख" (नील), कर्मपथ (दयानाथ झा) तीन युग (विमला रैना), पत्र ध्वनि (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) धरती माता (रघुवीर शरणमित्र) अशोक (सेठ गोविन्द दास) और विजय पर्व (डॉ रामकुमार वर्मा)।

कर्मपथ का शिवगोविन्द साथ जिला कमेटी का अध्यक्ष है। यह एक पक्का गांधी भक्त है[1]। वह खद्दर का धोती-कुर्ता और गांधी टोपी धारण करता है।

"तीन युग" का मुन्ना भी गांधीवादी आदर्शों का परिपालन करता है।

---

1. दयानाथ झा - कर्मपथ

"पक्षध्वनि" के लेखक हैं आचार्य चतुरसेन शास्त्री । इस में गुरुदेव का अभिमत है कि तोपों की भयानक गर्जना के ऊपर, अणु महास्त्र के घोर विनाश से भी ऊपर विश्व भर की जनता, गांधी जी सत्य रथ का कट-घोष सुन रही है । इस आवाज़ से घातक युद्ध के कारण आहत, भूखा, नंगा और असहाय विश्व का मन आनंद विभोर हो जाता है"[1] ।

"धरती माता" [रघुवीर शरणमित्रा] का पात्र यज्ञदत्त भी गांधीवादी है । वह अहिंसात्मक क्रांति से समाज का नवनिर्माण करना चाहता है[2] ।

सेठ गोविन्द दास और डॉ॰ रामकुमार वर्मा दोनों अहिंसावाद से प्रभावित हैं । "अशोक" [सेठ गोविन्द दास] और विजय पर्व" [डॉ॰ रामकुमार वर्मा] इसके निदर्शन हैं । अशोक कलिंगा-युद्ध में विजयी होता है, पर युद्ध की विभीषिकाओं और भीषण दृश्यों से उसका मन पिघल जाता है । फलतः वह अहिंसा का मार्ग अपनाता है । उसका अटल विश्वास है कि अहिंसा के मार्ग को अपनाने से ही विश्व का कल्याण संभव है[3] ।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा के "विजय पर्व" में भी यही बात कही गई है । कलिंग युद्ध के पश्चात् सम्राट अशोक का मन आत्म ग्लानि से भर उठता है । अहिंसा-मार्ग को अपनाते हुए वह उपगुप्त से अपने अटल निश्चय की उद्घोषणा करता हैं - "आज से मैं हिंसा किसी भी रूप में नहीं करूँगा । आज से मेरा महान कर्तव्य होगा कि मैं सब जीवों की रक्षा का अधिक से अधिक प्रबन्ध करूँ" ।

----

1. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - पक्षध्वनि - पहला अंक, पृ॰13
2. रघुवीर शरण मित्र - धरती माता - चौथा सं॰ पहला दृश्य - पृ॰9
3. सेठ गोविन्द दास - अशोक 1961, चौथा अंक, तीसरा दृश्य - पृ॰107
4. डॉ॰ रामकुमार वर्मा - विजय पर्व, दूसरा सं॰1957, तीसरा अंक,पृ॰137

"बुझता दीपक" [भगवती चरण वर्मा] का राधेश्याम शर्मा इस बात पर आश्चर्य प्रकट करता है कि बापू के उपासक उनके सन्देश को इतनी जल्दी कैसे भूल देते हैं।[1] आज के राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीवादियों की संख्या बहुत कम है। सत्य एवं अहिंसा आज की राजनीति में सिर्फ जल-रेखा बन गई है। प्रस्तुत नाटक की सुषमा, इस स्थिति पर निराशा प्रकट करती हुई पूछती है - "आज कांग्रेस में कितने आदमियों के पास सत्य है? कितने आदमियों के पास अहिंसा है?"[2]

गाँधीवादी आदर्शों के प्रति आधुनिक[3] समाज के उपेक्षा भाव पर असन्तुष्ट है "तीन युग" [विमला रैना] का मुन्ना।

उपर्युक्त नाटकों की उपादेयता इस बात में निहित है कि इन्होंने एक ऐतिहासिक सन्दर्भ का पुनः प्रतिपादन किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय समाज में गाँधीवाद के मूल्यों की सम्पूर्ण च्युति हो गई है। वह विद्वानों और विचारकों के मस्तिष्क मन्थन की सामग्री रह गया है। उसका सामाजिक पक्ष उपेक्षित है। इन नाटककारों ने इस अवस्था से दुःखी होकर ही गाँधीवादी आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा की चेष्टा की है। ये ये रचनाएँ प्रमाणित करती हैं कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी गाँधीवाद की संगति अवश्य है।

<u>राजनीति की दाव पेंच</u>

भारत का वर्तमान राजनैतिक वातावरण अत्यंत अस्त-व्यस्त और जटिल है। स्वाधीनता ने जनता को अपने अधिकारों से अवगत कराया।

---

1. भगवती चरण वर्मा - मेरे नाटक - प्रथम सं॰ बुझता दीपक, प्रथम दृश्य पृ॰58

2. वही

3. विमला रैना - तीन युग - चौथा दृश्य - पृ॰114

परन्तु जीवन की व्यर्थ समस्याओं के परिहार में सरकार के असफल हो जाने के कारण जनता के मन में क्रोध, कुंठा और नैराश्य की भावना छा गई है। राजनैतिक अवसरवादियों ने इस अवस्था से खूब लाभ उठाया। दर्जनों राजनैतिक दल उठ खड़े हुए। सब अपने को जनता का एकमात्र हितकारी घोषित करते हैं। चुनाव के समय मतदान की प्रार्थना करते हुए ये गांव-गांव में घूमते हैं। इन दलों ने सच्चाई और नैतिकता को हमेशा केलिए तिलांजली दे दी। नेताओं के चारित्रिक पतन ने जनता को किंकर्तव्यविमूढ़ बनाया। परिणाम स्वरूप जनता के नैतिक जीवन का स्तर बहुत निम्न हो गया। हमारे साहित्यकारों की कृतियों में इस अवस्था का प्रतिबिंब पाया जाता है।

दलों में मुठ भेड़

राजनैतिक दलों की संख्या अत्यधिक बढ़ जाने के कारण स्वभावतया उनकी आपसी स्पर्धा भी बढ़ गई। इस का चित्रण स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्राप्त है।

वृन्दावनलाल वर्मा केवट में स्वाधीन भारत के राजनैतिक दलों के पारस्परिक संघर्ष की ओर संकेत देते हैं। स्वार्थ-लाभ केलिए झगड़ने वाले ये दल सामाजिक प्रगति में बाधक हैं। नाटक का पात्र किन्नर इस दल-गत मुठ भेड़ समाज केलिए विनाशकारी मानता है। संघर्ष को समाप्त करके समाज-सेवामें रत होने का उपदेश वह लोगों को देता है - "आप लोग अपनी दलबन्दी को धक्का कर क्या समाज सेवा केलिए तैयार नहीं हो सकते? सभी भेद भाव दूर करिये और मिल जाइये, समाज को ऊपर उठाइये, आपकी बड़ी जिम्मेदारी है।"[1]

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - केवट - चतुर्थ सं. पहला अंक, पहला दृश्य - पृ.45

"रक्तकमल" [लक्ष्मी नारायण लाल] का पात्र इन्द्रजीत राजनैतिक दलों की बहुलता से असन्तुष्ट है । वह कहता है "हर पार्टी में भी कई पार्टियाँ बनी हैं और इससे देश की एकता नष्ट हुई है"[1] । ध्वजा फहराना प्रत्येक दल का लक्ष्य है । इसे उद्धार [हरिकृष्ण प्रेमी] की कमला भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य मानती है[2] ।

सुयोग्य नेताओं की कमी

आजकल राजनैतिक क्षेत्र में सुयोग्य नेताओं का अभाव है । आजकल के नेता लोग असमर्थ और अयोग्य हैं । जीविकोपार्जन उनका लक्ष्य है । उन्हीं के कारण आज की राजनीति दूषित हो गई है । अयोग्य नेताओं की चर्चा आलोच्य युग के कई नाटकों में मिलती है ।

"तीन युग" का रचनाकार विमला रैना स्वतंत्र भारत की राजनीतिक अस्त-व्यस्तता पर चिन्तित है । कांग्रेसी नेताओं का जोश, उत्साह एवं उमंग आज नष्ट हो गई है । स्वार्थसाधन के पीछे वे हमेशा भटकते रहते हैं । जन-कल्याण की ओर वे बेफिक्र रहते हैं । इस नाटक का मुन्ना मानता है, योग्य नेताओं के अभाव में देश का उद्धार असंभव है[3] ।

"मिरतार" में वृन्दावनलाल वर्मा की भी यह स्थापना है कि देश की अविकसित अवस्था का कारण योग्य नेताओं का अभाव है[4] ।

"उद्धार" नाटक में हरिकृष्ण प्रेमी का यह अभिमत है कि जो व्यक्ति गरीब देशवासियों के सुखदुःख का साझीदार हो, अपनी जन्मभूमि की पीड़ा से

---

1. लक्ष्मीनारायणलाल - रक्तकमल - तीसरा अंक, दूसरा दृश्य - पृ.113
2. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - पहला अंक, दूसरा दृश्य - पृ. 17
3. विमला रैना - तीन युग - चौथा दृश्य - - पृ.115
4. वृन्दावनलाल वर्मा - मिरतार - दूसरा अंक, तीसरा दृश्य - पृ.57

परिचित हो, जिसके साहस पर जनता का पूरा विश्वास हो ऐसा व्यक्ति ही देश के नेता बनने योग्य है"[1]।

सुयोग्य नेताओं की कमी की चर्चा भगवती चरण वर्मा करते हैं, अपने बुझता दीपक नाटक में। कांग्रेस कमेटी का सभापति राधेश्याम शर्मा योग्य और चरित्रवान है। वह सादा वस्त्र पहनता है और सरल जीवन बिताता है[2]। उसकी प्रेमिका सुषमा उससे कहती है कि आज योग्य, चरित्रवान और ईमान्दार आदमी का राजनीति में कोई स्थान नहीं है। चरित्रहीन एवं अयोग्य नेता ही आज महलों में रहते हैं, हवाई जहाज़ों पर सफर करते हैं[3]।

इन नाटकों में यह सूचित किया गया है कि वर्तमान जन नेता सभी दृष्टियों से अयोग्य हैं। राष्ट्र के भविष्य को उज्ज्वल बनाने केलिए सुयोग्य नेताओं की परम आवश्यकता है।

नेताओं का चारित्रिक पतन

स्वार्थ लिप्सा, दलबन्दी, भ्रष्टाचार पदलिप्सा आदि आज के नेताओं की चारित्रिक विशेषता है। गांधी युग में त्याग और बलिदान से ही नेतृत्व प्राप्त हो सकता था। लेकिन अब उन गुणों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।

वृन्दावनलाल वर्मा के "खिलौने की खोज" नाटक का प्रमुख पात्र है डॉ॰ सलिल। उसकी शिकायत यह है कि नेता लोग अकाल के समय लोगों की सेवा केलिए प्रस्तुत नहीं होते। पर सार्वजनिक चुनाव के अवसर पर मतों की मांग करने में संकोच नहीं करते[4]।

1• हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार पहला अंक, सातवाँ दृश्य - पृ॰ 41
2• भगवती चरण वर्मा - मेरे नाटक - बुझता दीपक - प्रथम दृश्य - पृ॰55
3• वही
4• वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज - छठवाँ सं॰ पहला अंक, दूसरा दृश्य पृ॰17

जनकल्याण केलिए सरकार द्वारा बनायी गई योजनाओं से कुछ लाभ उठानेवाले नेताओं की चर्चा तीन युग का मुन्ना भी करता है[1] ।

'उद्धार' [हरिकृष्ण प्रेमी] के गंभीर सिंह की मान्यता है कि प्रभुता और सत्ता का उपभोग करने केलिए ही क्षत्रिय का जन्म हुआ है[2] । यह इस बात की सूचना देता है कि वर्तमान भारत में शोषण को न्यायोचित माननेवाले अभिजातवर्ग विद्यमान है । इस धारणा का विरोध करनेवाला पात्र है सुजान सिंह । वह कहता है - "हम लोग व्यक्तिगत आकांक्षाओं को देश, जाति और धर्म के प्रेम के छद्म वेश में उपस्थित करके जनता को मूर्ख बनाते रहे हैं"[3]

शील ने अपने "तीन दिन तीन घर" नाटक में समाज-कल्याण केलिए नेताओं द्वारा आयोजित पद-यात्रा की हंसी उड़ाई है[4] । सर्वोदय के नाम पर भी ये लोग ग्रामीणों की आंखों पर धूल झोंकते हैं । इसका प्रतिपादन करते हुए इस नाटक का पात्र प्रभात कहता है - "इस युग में भी सर्वोदयवाद के पुरोहित, ग्रामीण जनता की आंखों पर पट्टी बांधना चाहते हैं"[5] ।

उदयशंकर भट्ट के "क्रान्तिकारी" में नेताओं की ढोंग का घोर विरोध किया जाता है । इसका दिवाकर क्रान्तिकारी है । उसका कथन है कि देश भक्ति सचमुच आजकल एक पेशा है जो प्लाट फार्म से पैदा होकर बैंक बैलेंस में समाप्त होता है[6] । नाटककार का मंतव्य है कि स्वतंत्र भारत के राजनैतिक नेताओं का संबंध प्लाट फार्म और बैंकों से मात्र है ।

---

1. विमला रैना - तीन युग - चौथा दृश्य - पृ. 114
2. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - तीसरा अंक, पहला दृश्य - पृ. 87
3. वही
4. शील - तीन दिन तीन घर - तीसरा अंक, प्रथम दृश्य - पृ. 130
5. वही
6. उदयशंकर भट्ट - क्रान्तिकारी - पहला दृश्य - पृ. 11

नेता लोग प्लाटफार्म पर जनता के सामने जो आदर्श उपस्थित करते हैं, उन्हीं को प्लेटफार्म पर ही छोड़ देते हैं । उनकी कथनी एक है तथा करनी और एक । इस प्रवृत्ति का परिचय नये हाथ [विनोद रस्तोगी] का विजय प्रताप देता है[1] ।

उपर्युक्त रचनाओं द्वारा देश की वर्तमान राजनैतिक अवस्था पर प्रकाश डाला जाता है । हमारे देश में ज्ञान-विज्ञान की कमी नहीं है । कमी है उद्बुद्ध और उदात्त चरित्र की । यदि हमारा समाज यथेष्ट विकास पाने में सफल नहीं है तो उसका कारण यह चारित्रिक अधःपतन है ।

पुलिस का अत्याचार

स्वतंत्रता जनता के मन में नया उत्साह भर देती है । अस्वतंत्र अवस्था में व्यक्ति तथा समाज के अधिकारों की अवहेलना हुआ करती है । स्वाधीनता विशाल अर्थ में अधिकारों का अवबोध है । भारत के स्वतंत्र होते ही दलित जनता अपने अधिकारों के प्रति अधिक बोधवान हो गई । उनकी उपलब्धि के लिए संघर्ष करना उसे आवश्यक महसूस हुआ । लेकिन अधिकारी वर्ग जनता का दमन अपना कर्तव्य समझता आ रहा है । इसके लिए केलिए सरकार पुलिस की सहायता लेती है । पुलिस दमन नीति से जन आन्दोलन को मिटा देना चाहती है । इस अवस्था का अंकन साहित्यकार निरंतर किया करते हैं । हमारे नाट्य साहित्य में पुलिस के अत्याचारों के अत्यंत हृदय स्पर्शी चित्र प्राप्त होते हैं ।

इस दृष्टि से दो नाटक उल्लेख योग्य हैं । वे हैं - क्रान्तिकारी और किसान । इन नाटकों का उल्लेख अन्य प्रकरणों में भी हुआ है । "क्रान्तिकारी" [उदयशंकर भट्ट] का दिवाकर सरकार का विरोधी है । पुलिस दमन नीति ही जानती है । वह यह नहीं देखती कि दमन का पात्र स्त्री है, बच्चा है या रोगी वह सबको समान रूप से दण्डनीय मानती है[1]। इस नाटक में पुलिस के अत्याचारों का शिकार बनता है दिवाकर की माता और पत्नी ।

---

1. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - तीसरा अंक - पृ.100

ये दोनों महिलाएं अन्याय को सहन करनेवाली नहीं । दिवाकर की माँ दयामयी थानेदार से पूछती है - "पराई स्त्रियों पर हाथ उठाकर, उनकी बेइज्जती करके कुछ टुकड़ों केलिए अपने धर्म को बेचनेवाले सरकार को कब तक बनाये रख सकेंगे, यह भी कभी सोचा है तुमने" ?[1]

जमीन्दारों धनिकों और मिल मालिकों की सहायता करनेकेलिए पुलिस निहत्थे लोगों पर टूट पड़ती है । इस प्रकार का एक दृश्य "किसान" (शील) में पाया जाता है ।[2] पुलिस की सहायता से जमीन्दार किसानों की भूमि पर अपना अधिकार जमाता है ।[3] पुलिस के अत्याचारों का कड़ा विरोध भी इस नाटक में किया गया है ।[4]

इन रचनाओं में उपलब्ध राजनैतिक परिस्थिति से एक बात विशेष सन्तोषदायक महसूस हो रही है । वह यह है कि हमारी जनता अब अन्यायों को आँख मूंदकर सहने केलिए तैयार नहीं है । वह अपने अधिकारों केलिए लड़ती है स्वाधिकार के लिए सबकुछ सहने को तैयार है । अन्यायकारी को पराजय करने का प्रयत्न भी जारी रखती है ।

टूटे हुए सपने

गुलामी की शृंखला में बद्ध भारतीय जनता आशा करती थी, आज़ादी के अरुणोदय से हमारे सारे कष्ट मिटेंगे , सपने साकार होंगे । स्वाधीनता संग्राम की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए जनता विश्वास रखती थी कि बलिदान के परिणाम स्वरूप समस्त बन्धनों से मुक्ति प्राप्त होगी । गांधी जी ने रामराज्य का वादा देकर लोगों को बलिदान केलिए प्रेरित किया था ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - क्रान्तिकारी - दूसरा दृश्य - पृ.54
2. शील - किसान - 1962, प्रथम अंक, पृ.27
3. वही
4. वही पृ.24

लेकिन वर्षों के अनुभवों ने यह प्रमाणित कर दिया कि जनता के सारे सपने व्यर्थ हो गए हैं। निराशा, कुंठा और अवसाद के दिन आ गए हैं। इसका प्रतिफलन कई नाटकों में उपलब्ध है।

उपेन्द्र नाथ अश्क की अन्धी गली के श्याम के निम्न शब्दों में यह नैराश्य साकार हो उठता है 'जब हम आज़ादी किसान मजदूर की होगी, बड़े बड़े कारखाने सरकार ले लेगी, बोलियों के अनुसार सूबे बनाये जाएंगे, ज़मींदारियां नष्ट कर दी जाएंगी। अब हर बात के लिए बहाने बनाये जा रहे हैं।

वही बहाने बनाये जा रहे हैं, जो अंग्रेज बनाते थे'[1]।

बुझता दीपक (भगवतीचरण वर्मा) के राधेश्याम शर्मा (कांग्रेस कमेटी का सभापति) का वक्तव्य यह है कि अब भी हमारा देश आर्थिक दृष्टि से परतंत्र है और इस देश के आर्थिक स्वतंत्रता और जनता की सुख समृद्धि के लिए त्याग और बलिदान की कुछ आहुति भी आवश्यक है[2]।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का नाटक है, न्याय की रात। स्वतंत्र भारत की सामाजिक व राजनैतिक स्थिति अभीप्सित परिमाण में आशाजनक नहीं हो सकी। यह बात प्रस्तुत नाटक के जुगल किशोर के वचनों से व्यक्त होती है - 'यहाँ देश की चिन्ता किसी को नहीं। सबको अपनी अपनी चिन्ता है। .... यहाँ काम को और योग्यता को कोई नहीं देखता। बस यही देखा जा रहा है कि किसकी पहुँच कहाँ तक है'[3]।

इसी बात का समर्थन तीन दिन तीन घर (शील) की नीलिमा भी करती है। उसका मत है कि अभी हमारे देश को कई मंजिलें पार करनी है।

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क - अन्धी गली - प्रथम सं॰ दूसरा अंक, पृ॰39
2. भगवतीचरण वर्मा - मेरे नाटक - बुझता दीपक - प्रथम दृश्य - पृ॰55
3. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात - दूसरा अंक, पृ॰82

अभी बाहि हमारी पहुँच के बाहर है[1]। इसी नाटक का दास नामक पात्र हमारी पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता पर क्षोभ प्रकट करता है[2]।

"नये हाथ" नाटक में एक नये समाज का सपना देखा गया है। इसका महेन्द्रपाल, देश में समाजवाद की स्थापना को आवश्यक समझता है - "सामन्तवादी युग गया। जमीन्दारी खत्म हुई, बड़ी बड़ी रियासतें खत्म हुई और एक दिन पूंजीवाद भी खत्म होगा। तभी देश में सच्ची समानता और स्वतंत्रता के दर्शन होंगे"[3]।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के नाटक "विश्वास" में सूचित किया गया है कि इस स्वतंत्र देश में अब भी जनता का मानस अधूरा है, स्वतंत्र नहीं[4]।

देश की स्थितियों से हमारे आलोच्य काल के नाटककार बहुत ही असन्तुष्ट हैं। इसलिए अपने नाटकों में वर्तमान स्थिति का वास्तविक चित्रण करते हुए वे समाज को उद्बुद्ध बनाना चाहते हैं। इस लक्ष्य में वे बहुत सीमा तक सफल भी हुए हैं। हिन्दी क्षेत्र के अनेकों स्थानों पर उपर्युक्त नाटकों का मंचन सफलता पूर्वक किया गया है। जनता उनको सहर्ष स्वागत करती दिखाई पड़ी। इससे नाट्यकला की समाज सापेक्षता और उपादेयता असंदिग्ध हो गई है।

प्रत्यवलोकन

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनैतिक गतिविधियों का नाट्य साहित्य में कहाँ तक प्रतिफलन हुआ है, यह इस अध्याय में निर्धारित किया गया है।

---

1. शील - तीन दिन तीन घर - तीसरा अंक, पहला दृश्य - पृ.140
2. वही पृ.142
3. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - तृतीय अंक, पृ.99
4. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी - विश्वास , दूसरा अंक - पृ.40

हमारे नाट्य साहित्य में राजनीतिक परिस्थिति स्पष्टता के साथ प्रतिबिंबित हुई है। सरकार की नीति का समर्थन और आलोचना दोनों प्राप्त होते हैं। दलों की बहुलता, नेताओं के चारित्रिक पतन आदि पर लेखकों का मानसिक क्षोभ इस युग की रचनाओं में प्राप्त होता है। आधुनिक राजनीति के कलुषित पहलुओं का विरोध इस युग की रचनाओं की विशेषता है। जनता के न्यायोचित अधिकारों का समर्थन और शोषकों के अत्याचारों का विरोध शक्तिमत्ता के साथ किया गया है। समाजवादी शासन और व्यवस्था का प्रायः सर्वत्र समर्थन है। नेताओं की स्वार्थपरता और आदर्शहीनता पर क्षोभ प्रकट किया गया है। ये सारी प्रवृत्तियाँ एक नये युग के उत्थान की सूचक हैं। इन्हीं से हिन्दी के नाट्य साहित्य का समुचित विकास संभव हो सका है।

निष्कर्ष

1. साहित्य की अन्य विधाओं की भांति नाट्य साहित्य भी राजनीति को प्रमुख सामाजिक प्रक्रिया स्वीकार करता है।

2. राजनीतिक क्षेत्र की विविधता और गतिशीलता यथार्थबोध के साथ स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य में प्रस्तुत की गई है।

3. सामाजिक परिवर्तन और प्रगति के जो जो चिन्ह इस युग में उभरे हैं उन सबको कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न आधुनिक नाटककारों ने किया है।

4. यह युग संक्रान्ति का युग है। नाना प्रकार की सामाजिक शक्तियाँ और प्रतिक्रियाओं का पारस्परिक संघर्ष इसकी विशेषता है। इन सबको उचितता के साथ चित्रित करने का प्रयत्न नाटककारों ने किया है

5. राजनीतिक गतिविधियों के चित्रण में लेखकों ने युग चेतना को निकट से पहचानने का प्रयत्न किया ।

6. जड़ शक्तियों के विघटन तथा सृजनात्मक शक्तियों के समर्थन में प्रायः सभी नाटककारों ने अपना योगदान दिया है ।

7. इस युग के अधिकतर नाटक रंगमंचोपयोगी हैं । प्रतिपादन के प्रति ईमानदारी इनकी निजी विशेषता है ।

8. यद्यपि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति नाटककार कठोर दृष्टिकोण अपनाते हैं तथापि वे निराशावादी नहीं है ।

9. उनका निष्कर्ष है कि वर्तमान विषम परिस्थिति का संतरण करते हुए भारत उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ेगा ।

अध्याय - 8

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्रस्फुटित सामाजिक विचार धाराएं

1948 - 1965

अष्टम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्रस्फुटित सामाजिक विचारधाराएं 1948-1965

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही हमारे सामाजिक जीवन में परिवर्तन के चिह्न लक्षित होने लगे थे । स्वातंत्र्य-लब्धि के साथ नूतन सामाजिक व्यवस्था की त्वरा सब कहीं अनुभूत होने लगी । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि रूढ़िवादिता का तिरोधान हो गया । नवीन विचारों और पुरानी परिपाटियों के बीच संघर्ष के लक्षण दिखाई पड़ने लगे । जनता अपनी पुरातन जीवनचर्या को एकदम छोड़ देने केलिए तैयार नहीं थी । यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र के जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन तब तक संभव नहीं, जब तक जनता स्वयं क्रान्ति केलिए तैयार नहीं होती । दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि स्वातंत्र्य की उपलब्धि के बाद भी हमारे देश में सामाजिक क्रान्ति नहीं हो सकी । सचमुच निम्न मध्य वर्ग के लोग ही

सामाजिक क्रान्ति के अनुकूल हो सकते हैं । श्रमिक वर्ग बौद्धिक क्रान्ति का नियामक नहीं बन सकता । उनको प्रेरित करने का कार्य निम्न मध्यवर्ग के बुद्धि जीवी तथा नेता गणों के द्वारा ही किया जाता है । जहाँ तक भारत की बात है, यहाँ के निम्न मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी तथा नेता लोग अपेक्षाकृत अधिक सुखमय जीवन बिताने में ही तत्पर दिखाई पड़े । यही कारण है, जैसा कि अन्य अनेकों देशों के इतिहास से ज्ञात होता है, भारत में सामाजिक क्रान्ति अधूरी ही रह गई ।

यह अवस्था विचारशील लेखकों और कलाकारों को निरन्तर व्यथित करती रही । हमारे साहित्यकार सामाजिक क्रान्ति के पक्षधर थे । पर उनकी क्रान्ति भावना व्यक्ति तक ही केन्द्रित रह गई । उसका प्रयोग सामाजिक स्तर पर नहीं हो सका । कारण यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही उन नेताओं ने अपने को चरितार्थ माना और वे यह भूल गए कि आर्थिक तथा सामाजिक आत्मनिर्भरता के अभाव में राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है । यही कारण है कि इस पुरातन देश की जीर्ण जर्जरित सामाजिक व्यवस्था में इतने वर्षों के उपरान्त भी अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो सका और यहाँ की दलित जनता अब भी गरीबी और अभाव के गर्त में गिरी हुई है ।

यह संतोष की बात है कि हमारे साहित्यकार इस अवस्था को भली-भाँति जानते थे । उन्होंने अपनी रचनाओं में देश की इस विपन्नता को अभिव्यक्ति देना अपना कर्तव्य समझा । काव्य, कथा आदियों में इसके स्वर अवश्य मुखरित है पर नाट्यरचनाओं में ही इसके स्पष्ट और मर्मस्पर्शी चित्रण दृष्टिगत होते हैं । स्वातंत्र्य प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी में जो नाटक प्रणीत हुए हैं उनमें यह सामाजिक चेतना कैसे प्रस्फुटित होती है, इसका निरूपण यहाँ किया जाएगा ।

प्राय: समस्त सामाजिक समस्याओं का निरूपण स्वातंत्र्योत्तर नाट्य रचनाओं में उपलब्ध है । पर जिन तथ्यों को प्रमुखता प्राप्त है उन्हीं का यहाँ पर विवेचन होगा ।

नारी जागरण

स्त्रियाँ समाज में अपने स्थान के संबन्ध में पूर्णतया अनभिज्ञ थी । पुरुषों की सेवा करना उनके जीवन का उच्चतम लक्ष्य था । अपने अलग अस्तित्व का बोध तक उन्हें नहीं था । आधुनिक सामाजिक क्रान्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि इस परिस्थिति के विघटन में निहित है । नवयुग के आविर्भाव का यह शुभ परिणाम है कि नारी वर्ग स्वातंत्र्य का अर्थ जानने लगा । वह स्वयं अपने उत्कर्ष का मार्ग ढूँढने लगा । दलित जन अब दूसरों के मुँहताज नहीं है । वह अपने भाग्य का स्वयं विधान करना चाहते हैं । धार्मिक, जातिगत तथा आर्थिक बन्धनों से अपने को मुक्त करना चाहता है ।

सामाजिक क्रान्ति, नारी जागरण के साथ जुड़ी रहती है । स्त्रियाँ अगर उत्बुद्ध नहीं है तो सामाजिक क्रान्ति संभव नहीं । क्रान्ति की सफलता पतितों के उद्धार में ढूँढी जानी चाहिए । हमारे देश में नारी तथा दलित जाति अनेक कारणों से शोषण का पात्र रही है । अतएव नाटकों में प्रतिबिंबित स्त्री जागरण की चर्चा हम प्रथमतः करते हैं । हमारे आलोच्य काल के उल्लेखनीय नाटकों की कुल संख्या लगभग 80 है । इनमें से अधिकतर नाटकों में नारी जागरण को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है ।

नारी - स्वातंत्र्य

नारी का स्वातंत्र्य और उसके अपना अस्तित्व की रक्षा का प्रयत्न संसार भर में आधुनिक युग की एक प्रवृत्ति है । अब तक जीवन के अनेक क्षेत्रों में नारी अस्वतंत्र थी । पुरुष के विचारानुसार जीवन बिताने की व्यग्रता, संतानों का पालन पोषण आदि तक महिला का जीवन सीमित था आधुनिक युग ने इस परिस्थिति को बदल दिया और प्रमाणित किया कि इसके अतिरिक्त भी नारी का अस्तित्व है ।

भारत की नारी एक विलक्षण सत्ता है । उसका जीवन शताब्दियों तक अपरिवर्तित ही रहा । आधुनिक युग ने उसको गार्हिक वातावरण से अलग जीवन के विशाल क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर दिया । हमारे नाट्य साहित्य में नारी के इस नवीन जीवन का प्रतिफलन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है ।

नारी मुक्ति से हमारा मतलब पुरुष की गुलामी से उसकी मुक्ति ही नहीं है । भारत की आधुनिक नारी पुरुष के खिलाफ संग्राम क्षेत्र में नहीं उतरती है । उसकी कामना यह है कि वह अपने पैरों पर खड़ी रह सके । सामाजिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में और वैचारिक क्षेत्र में भी । आज भी नारी अपने जीवन-यापन केलिए पति का सहारा लेती है पुत्रों का अवलंबन पाती है । जब तक यह स्थिति जारी रहेगी, नारी मुक्ति की कल्पना व्यर्थ ही रहेगी । साहित्यकारों ने इस बात को पहचाना और अपनी रचनाओं में नारी की सर्वतोन्मुख मुक्ति केलिए आवाज़ उठाई । आधुनिक नाटककारों ने प्रधानता के आधार पर प्रश्न का विवेचन किया । कुछों ने वैवाहिक जीवन और उसकी समस्याओं को ग्रहण किया और अन्यों ने दहेज के अभिशापों को ।

कुछ लेखकों ने विधवाओं की दयनीय स्थिति का चित्रण किया तो औरों ने वेश्याओं की खिन्नता का । बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि आजकल कोई बड़ी सामाजिक समस्या प्रस्तुत नहीं करते । पर स्वच्छन्द प्रेम और विवाह से जटिलता अब भी नारी जीवन को अशान्त बना रही है । इसलिए साहित्यकारों ने स्त्री की तत्संबन्धी हृदयवेदना को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । नारी समस्या की विविधताओं को ध्यान में रखकर ही उन्होंने नाटकों की रचना की है ।

राजनीति से संबद्ध नारी जीवन का अंकन स्वाभाविक रूप से कुछ नाटकों में प्रथम स्थान पाता है जैसे वृन्दावनलाल वर्मा आदि के नाटकों में । पर शीघ्र ही लेखकों का ध्यान अधिक गंभीर तथा गहरे प्रश्नों की तरफ मुड़ जाता है ।

वृन्दावनलाल वर्मा की झांसी की रानी {1914} में कथानक तो राजनैतिक है ही पर उसमें झांसी रानी के माध्यम से नारी के जिस उज्वल तथा उदात्त चरित्र का चित्रण पाया जाता है वह एकदम आश्चर्य कारी है । उसमें स्त्री वीरता का प्रतीक है । झांसी रानी के पति गंगाधरराव का विश्वास है कि अंग्रेजों की अधीनता से स्वराज्य की प्राप्ति असंभव है । पर वीरवनिता लक्ष्मीबाई उसका प्रत्याख्यान इस प्रकार करती है - "मर्दों को चूड़ियाँ पहना दीजिए और हम स्त्रियों के हाथ में दीजिए तलवार फिर देखिए हम स्त्रियाँ अंग्रेजी सेना को झांसी में कितने दिन टिकने देती हैं"[1] ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी - सोलहवाँ सं० प्रथम अंक सातवाँ दृश्य - पृ०38

और एक दृश्य में जब मोतीबाई रानी से प्रार्थना करती है कि हमें भी देश सेवा के योग्य बनाओ । तब रानी की वीरोचित सुनिए - "इसलिए मैं ने स्त्रियों की सेना बनानी आरंभ की । स्त्रियाँ पुष्ट और बलिष्ट बनें, अपनी रक्षा करना सीख लें, नयी पुरुष बन सकते हैं और तभी स्वराज्य मिल सकता है और बना रह सकता है"[1] ।

ये दोनों दृश्य बहुत ही रोमांचकारी हैं । परन्तु स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में ऐसे ओजपूर्ण दृश्यों का पुनर्दर्शन अपेक्षित मात्रा में प्राप्त नहीं होता । वीर रमणियों के चित्रण की परंपरा को कायम रखना आवश्यक था । लेकिन नाटककारों ने उस ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया ।

वर्मा के दूसरे नाटक मंगलसूत्र में नारी की स्वतंत्रता की भावना निखर उठती है । उसमें वातावरण और प्रकरण भिन्न है । फिर भी नारी का दुर्दम्य वीर रूप ही प्रस्तुत किया जाता है । नाटक का नायक कुन्दनलाल अपनी पत्नी अलका को बहुत कष्ट देता है । उसको शारीरिक दण्ड देता है । लेकिन वह सब कुछ सह लेती है । वह क्षमा की प्रतिमूर्ति चित्रित की गई है । लेकिन उसकी क्षमा धीरे धीरे असहिष्णुता के रूप में परिणत होती है । पति का परित्याग करके वह भाग जाती है ।

अलका की सहेली है कान्ता । कान्ता भी स्वाभिमानिनी और धैर्यशालिनी है । अलका पर किये जानेवाले अत्याचार उसकेलिए असह्य है । उसमें से प्रतिशोध के स्फुलिंग फूट पड़ते हैं । वह कुन्दनलाल से कहती है - याद रखना, हम अबलाओं का भी कोई है । हम लोग भी स्त्री समाज बना रही है । वह जब खड़ा होगा, तब तुम सरीखों की मरम्मत करके ही छोड़ेगा[2] ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झाँसी की रानी - छटवाँ सं॰ दूसरा अंक पहला दृश्य पृ॰47

2. वृन्दावनलाल वर्मा - मंगल सूत्र चतुर्थ सं॰ पहला अंक छटवाँ दृश्य - पृ॰53

यही बात नारी की साधना (लेखक - अभयकुमार यौधेय) में भी द्रष्टव्य है। इसमें करुणा नामक नारी का जीवन चित्रित है जो पति से प्रपीड़ित होती हुई भी पतिव्रत धर्म का पालन करती है। वह पुरानी भारतीय नारी का प्रतिनिधि है।

सुषमा और रेवती दोनों करुणा की सहेलियाँ हैं। वे करुणा की दुर्दशा पर शोक प्रकट करती हैं। सुषमा कहती है कि इस सामाजिक अन्याय का (पति का पीड़न) अन्त होना चाहिए और नारी को चण्डी का रूप धारण करके समाज को जगा जाना चाहिए।[1]

निश्चित रूप से इसमें नारी जागरण का एक अभूतपूर्व दृश्य उभर आता है। अब तक भारतीय नारी समझती थी कि पारिवारिक तथा सामाजिक अन्याय का क्षमापूर्वक सहन करना ही उसका धर्म है। लेकिन अब वह समझने लगती है कि अन्याय का विरोध करना ही उसके जीवन का धर्म होना चाहिए, वह अन्याय चाहे पतिदेव द्वारा किया ही क्यों न गया हो।

आधुनिक नारी घर के अन्दर ही बन्द रहना नहीं चाहती। वह समाज के वैविध्यपूर्ण जीवन में अपना हिस्सा अदा करना चाहती है। कुछ पुरुष, स्त्री की इस स्वच्छन्दता को सह नहीं सकते। ऐसे लोगों की उपेक्षा आज की नारी करना चाहती है।

रेवती सरन शर्मा की चिराग की लौ में रानी (मिल मालिक जयन्त की पत्नी) बहुत सोशियल है। वह अपनी सहेली तारा (इन्कमटैक्स अफसर किशोर की पत्नी) को अपने साथ बाहर ले जाती है और उसे स्मार्ट बना देती है।

---

1. अभयकुमार यौधेय - नारी की साधना - प्रथम सं० प्र०अंक प्रथम दृश्य पृ० 32

लेकिन किशोर यह पसन्द नहीं करता । रानी पुरुष के इस अतिवाद की निन्दा करती है"[1] ।

नारी को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिए , इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता । अनेक नाटकों में इसका समर्थन द्रष्टव्य है ।

सम्राट अशोक के काल से संबद्ध है "प्रियदर्शी" [लेखक जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द] इसमें स्थापित किया जाता है कि शासन व्यवस्था में नारी को उचित स्थान प्राप्त होना चाहिए । युवकों की सहायता से युद्ध में अपने सौतेले भाई सुमन को पराजित करनेवाले सम्राट अशोक गृह नीति का जब निर्धारण करते हैं तब युवक महिला सरला देवी से भी परामर्श लेते हैं[2] । नारी की महत्ता की स्वीकृति इसमें पाई जाती है ।

जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री पुरुष की बराबरी पर सकती है । सामाजिक परिवर्तन में उसका सहयोग परम आवश्यक है । आधुनिक नाटककारों ने इस तथ्य का प्रतिपादन अपने नाटकों में किया है ।

शील के "हवा का रुख की वन्दना इसका निदर्शन है । वह एम॰बी॰बी॰एस॰ है, एक नर्सिंग होम खोलना चाहती है । उसका विश्वास है कि सामाजिक समस्याओं के परिहार केलिए बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन अनिवार्य है । इसकेलिए स्त्रियों में भी जागरण अत्यंत आवश्यक है[3] ।

1॰ बेकली शरण शर्मा - चिराग की लौ - प्रथम सं॰ दूसरा अंक तीसरा दृश्य पृ॰59

2॰ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी - प्रथम सं॰ तीसरा अंक - पृ॰80-81

3॰ शील - हवा का रुख - प्रथम संस्करण - दूसरा अंक - पृ॰54

राजनीति तथा प्रतिरक्षा के क्षेत्र में भी स्त्री, पुरुषों के समान देश की सेवा कर सकती है । इसका उदाहरण चिरंजीत के 'तस्वीर उसकी' नाटक में पाया जाता है । चीनी आक्रमण के अवसर पर देश की रक्षा केलिए अंजना अपनी सहेली के साथ रानी झांसी समाज की स्थापना करती है । इस संस्था की ओर से स्त्रियों को रायफिल ट्रेनिंग देने का इंतजाम किया जाता है ।[1]

इस युग में महाभारत, रामायण आदि की कथा के आधार पर भी कुछ नाटक प्रणीत हुए हैं जिनका प्रत्यक्ष संबन्ध वर्तमान जीवन से है । शान्तिदूत [देवदत्त अटल] उर्मिला [पृथ्वीनाथ शर्मा] आदि उदाहरण है ।

शान्तिदूत में भगवान श्रीकृष्ण के शान्ति दौत्य का प्रतिपादन है । कृष्ण कुरु पांडव संग्राम हटाना चाहते हैं । फलतः वह स्वयं पाण्डवों का दूत बनकर वे कौरव सभा में प्रस्तुत होते हैं । पर उनके सब प्रयत्नों का कोई प्रभाव कौरवों पर नहीं पड़ता । दुर्योधन उनका अपमान करता है । अन्त में युद्ध अनिवार्य हो जाता है ।

इसकी द्रौपदी क्रान्ति का प्रतीक है और गान्धारी शान्ति का । द्रौपदी, अंजन किशोरियों को युद्ध केलिए तैयार करती है और उनको समर कला सीखने की आह्वान देती है - 'बहनों, आज मैं तुम से कहने केलिए आई हूँ कि अब नारियों को भी युद्ध की शिक्षा लेनी पड़ेगी ।[2]

---

1. चिरंजीत - तस्वीर उसकी - प्रथम संस्करण प्रथमा अंक - पृ.5
2. देवदत्त अटल - शान्ति दूत - 1952 प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य - पृ.18

नारी राजनीति में अछूत नहीं है[1]। श्रीकृष्ण की यह उक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। वे योगीश्वर है और राजनीतिज्ञ भी। ऐसे व्यक्ति के द्वारा ही राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों के प्रवेश का समर्थन कराया जाता है। इससे धार्मिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से स्त्री की महिमा की स्वीकृति हुई है।

विमला रैना के "तीन युग" नाटक में भी नारी के वीरतापूर्ण चरित्र का चित्रण किया गया है। यह नाटक 1920 से लेकर 1957 तक की प्रमुख राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक घटनाओं का दर्पण है। इसका केलाश राष्ट्रीय विचारधारा का प्रबल समर्थक है। उसकी पत्नी चांद राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाली है। वह दो बार कारावास का दंड भी भोगती है।

आधुनिक महिला पुरुष का गुलाम नहीं रह सकती। वह विश्वास करती है कि पुराने बन्धनों को तोड़कर उन्मुक्त सामाजिक वातावरण में प्रवेश करने से ही उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व अनुभवगम्य हो सकता है। भारत के समस्त सामाजिक राजनैतिक आन्दोलनों ने नारी की इस न्याय संगत मांग का समर्थन किया। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे जननायकों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में स्त्री को प्रमुख स्थान दिया। गांधीजी का आह्वान मानकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़नेवाली स्त्रियों की संख्या कम नहीं। पुलिस के अत्याचारों को स्त्री सधैर्य सह लेती थी। स्वदेशी व्रत का आचरण करती थी। अपनी असुलभ शक्ति और क्षमता का उसने अनेक बार परिचय दिया। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य ऐसी नारियों के वीर चरित्रों से भरा हुआ है। नाट्य साहित्य में भी उसका अंकन कम नहीं है।

---

1. देवदत्त अटल - शान्ति दूत 1952 द्वितीय अंक चतुर्थ दृश्य - पृ.52-53

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का नाटक है 'पग ध्वनि' [1952] । इसमें नोआखाली के हिन्दू मुस्लिम संघर्ष का चित्रण है । जमीन्दार शहाबुद्दीन की पत्नी है हुस्नुजहाँ । वह गांधीजी के आदर्शों से प्रभावित है । वह हिन्दू मुस्लिम दंगी के शिकारों की मदद और सेवा करती है । इसकेलिए वह नसीबन बीवी को भी बुलाती है । नसीबन बीवी सन्देह प्रकट करती है कि इस झमेले में औरतों का क्या काम ? तब उसको समझाते हुए हुस्नुजहाँ कहती है - "औरत मर्द की गुलाम नहीं है, नैतिक शक्ति औरत में मर्द से अधिक है । बापू का कहना है "औरत मर्द की गुलाम नहीं, नैतिक शक्ति औरत में मर्द से अधिक है । बापू का कहना है, जब तक स्त्रियों में असाधारण चरित्र का विकास न होगा, वे आगे न बढ़ेंगी, उनका उद्धार नहीं होगा"[1] ।

बिना दीवारों के घर [लेखिका मन्नु भंडारी] नामक नाटक मुख्य रूप से मध्यवर्गीय परिवार में स्त्री पुरुष के टूटते हुए संबन्धों का चित्रण करता है, फिर भी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की व्यग्रता भी इसमें प्राप्त है । इसकी नायिका शोभा कालेज की अध्यापिका है । उसका पति है अजित । दफ्तर से लौटने पर घर में पत्नी की अनुपस्थिति उसे असह्य है । पत्नी की नोकरी वह बच्ची के पालन पोषण में बाधक मानता है । पर शोभा नोकरी छोड़ने को तैयार नहीं । उसका कथन है - मेरी अपनी भी कुछ आकांक्षाएं है, अपने जीवन का कोई स्वप्न है । इस घर के चहारदीवारी के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्यक्तित्व है[2] ।

यहाँ नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व का समर्थन है, बदलते युगबोध की अभिव्यक्ति है ।

---

1. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - पगध्वनि - विद्यार्थी सं. पाँचवाँ अंक - पृ.82
2. मन्नु भंडारी - बिना दीवारों के घर द्वितीय सं. द्वितीय अंक पहला दृश्य पृ.50

स्वतंत्र अस्तित्व कामना कभी कभी अभिमान और अस्वाभाविक भी हो जाती है। "नए हाथ" [ले॰ विनोद रस्तोगी][1] की शालिनी इसका उदाहरण है। शालिनी [राजा नरेन्द्रपाल सिंह की बेटी] वैवाहिक संबंध को भी नारी की स्वतंत्रता केलिए बाधक मानती है। उसकी शिकायत है कि पत्नी पति की दासी है। अतएव वैवाहिक जीवन के जंजीरों में बंधने को वह तैयार नहीं होती। वस्तुतः स्त्री के जीवन की सफलता उसके मातृत्व में है। उसका विरोध केवल समाज केलिए ही नहीं स्वयं नारी केलिए भी हितकारक नहीं हो सकता।

आधुनिक नारी पुरुष के सामने झुकना नहीं चाहती। वह पुरुष को झुकाना चाहती है। पृथ्वीनाथ शर्मा की उर्मिला में लक्ष्मण उर्मिला से कहे बिना ही राम के साथ वन जाने लगता है। पर अभिमानिनी उर्मिला लक्ष्मण से मिलने को तैयार नहीं होती[2]।

इससे स्पष्ट है कि आधुनिक नारी किसी भी दशा में आत्मसम्मान खोना नहीं चाहती। पति के सामने भी झुकना वह पसन्द नहीं करती।

पुराने ज़माने में स्त्री अबला मानी जाती थी। समय के बदलने से यह विचार बदल गया। जीवन के हर क्षेत्र में अब नारी पुरुष की बराबरी कर सकती है। स्त्री शक्ति स्वरूपिणी है, उसको अबला कहना असंगत है। स्त्री की महिमा की मुक्त कंठ से स्वीकृति आधुनिक नाटकों में पाई जाती है।

---

1. विनोद रस्तोगी -नए हाथ - द्वितीय संस्करण द्वितीय अंक - पृ॰40
2. पृथ्वीनाथ शर्मा - उर्मिला - पृ॰9

"चायपार्टियाँ" [लेखक सन्तोष नारायण नौटियाल] में कृत्रिम और आडंबरपूर्ण आधुनिक जीवन का अनावरण है । समाज में स्त्री का क्या स्थान होना चाहिए । उसकी प्रतिष्ठा कैसे हो सकती है, इन बातों पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है ।

केवल एक कंपनी का मैनेजिंग डायरेक्टर है । उसके दफ्तर में इन्स्पेक्टर की खाली जगह केलिए आनेवाले उम्मीदवारों में एक महिला भी है नाम है मालकानी । उसका मत है कि जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री को पुरुष के समान अधिकार और पद मिलना चाहिए । आजकल भारतीय नारी, कितनी आगे बढ चुकी है इसका प्रतिपादन मालकानी यों कर रही है - "लडकियाँ अब पढने में किसी प्रकार लडकों से पीछे नहीं, लडकियाँ भी अब अधिकाधिक संख्या में कम्पिटीशन में भाग लेकर वकील, डाक्टर, शिक्षक, डिप्टी कलक्टर मजिस्ट्रेट आदि बनने लगी है. । और तो पुलिस और सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करने लगी है"[1] ।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के प्रियदर्शी में समाज में नारी के सम्मान का समर्थन किया गया है । इसमें सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा शासन संबन्धी कार्यों पर किसान वर्ग क' प्रतिनिधि के रूप में महादेवी के परामर्श को महत्व देने की आवश्यकता पर बल देती है[2] ।

इससे व्यंजित यह होता है कि किसानों के मत का शासन कार्य में समावेश होना चाहिए । और यह माँग एक महिला के द्वारा ही प्रस्तुत की जाती है । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

---

1. संतोष नारायण नौटियाल - चाय पार्टियाँ - प्रथम सं॰ दूसरा अंक - पृ॰68
2. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी तीसरा अंक पृ॰76

संघमित्रा यह भी कहती है कि राज्य शासन जैसे लौकिक कार्यों में ही नहीं, बल्कि प्रव्रज्याग्रहण जैसे आध्यात्मिक कार्यों में भी स्त्री को पुरुष की समानता प्राप्त होनी चाहिए, भगवान बुद्ध ने भी इसका समर्थन किया था।[1]

लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाटक है "मृत्युंजय"। यह गांधी जी के जीवन पर आधारित है। इसके पात्रों, प्रकरणों तथा घटनाओं का संबन्ध आधुनिक जीवन से है। गांधी युग को आधुनिक अर्थ में क्रान्तियुग कहा जा सकता है। इसी समय भारतीय समाज में अभूतपूर्व परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगे। गांधीवाद संयत् क्रान्ति का समर्थक है। नारी जागरण इस तीव्र क्रान्ति का एक प्रमुख चरण है।

प्रस्तुत नाटक के पात्र महात्मागांधी, मौलाना आज़ाद, सरदार पटेल, सरोजनी नायडू, नरेन्द्र देव जैसे राष्ट्र नेता है। उन्हीं के मुख से राष्ट्र की समस्याओं का प्रतिपादन और परिहार प्रस्तुत किया गया है।

अनेक समस्याओं की चर्चा के सिलसिले में मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद नारी जागरण की चर्चा छेड़ देते है। वे कहते हैं कि क्रान्तियों और युद्धों के मूल में नारी ही वर्तमान है।[2] सरोजनी नायडू स्वभावतया इसका विरोध करती है।[3] वे नारी की महत्ता का समर्थन करती है। इस पर गांधी जी अपना मन्तव्य यों प्रकट करते है - नारी शक्तिस्वरूपिणी है ...... युद्ध की मूल शक्ति है यह तो सीधी बात है। युद्ध के मूल में ही नहीं सृष्टि के मूल में भी वही आदि शक्ति है। बिना उसके कहीं कोई सत्ता नहीं।[4]

---

1. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी - तीसरा अंक - पृ.76
2. लक्ष्मी नारायण मिश्र - मृत्युंजय - तृतीय संस्करण दूसरा अंक - पृ.93
3. 3. वही पृ.94
4. वही

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में नारी के स्वाभिमान तथा आत्मगौरव के अत्यन्त उज्ज्वल चित्र पाये जाते हैं। प्रसाद युगीन नाटकों में नारी का जो त्यागोज्ज्वल रूप दर्शाया गया था, बहुधा उसपर आरोपित था, उसका स्वार्जित स्वरूप न था। उसमें अवास्तविक आदर्शपरता ही दिखाई पड़ती थी। पर अधुनातन नारी आदर्श का बाना छोड़कर अपने असली व्यक्तित्व की गरिमा प्रतिष्ठित करना ही चाहती है। इसके निदर्शन है 'डाक्टर [ले॰विष्णु प्रभाकर] और नया रूप [ले॰ पृथ्वीनाथ शर्मा]

डाक्टर नाटक मनोवैज्ञानिक है जिसमें एक डाक्टर की कर्तव्य परायणता का चित्रण है। डा॰ अनिला का पहला नाम मधुलक्ष्मी था। उसका विवाह सतीश चन्द्र शर्मा से होना है। अफसर बन जाने पर सतीश चन्द्र शर्मा कम पढ़ी लिखी मधुलक्ष्मी का परित्याग करके दूसरी शादी कर लेता है। आत्माभिमान को आहत पाकर अबला मधुलक्ष्मी सबला बन जाती है। वह खूब प्रयत्न करके पढ़ती है और डा॰ अनिला बन जाती है। वही सतीशचन्द्र शर्मा की पत्नी का जीवन बचा लेती है।

यही बात पृथ्वीनाथ शर्मा के "नया रूप" में भी प्रस्तुत है। इसका रोशनलाल एक क्लर्क है जिसकी सगाई अनपढ़ रानी के साथ होती है। लेकिन मजिस्ट्रेट बन जाने पर रोशनलाल रानी को अपनी जीवन संगिनी स्वीकार करना पसन्द नहीं करता। वह अपनी राधिका से विवाह कर लेता है। डाक्टर की मधुलक्ष्मी की तरह रानी का आत्माभिमान भी आहत होता है। वह भी प्रयत्नपूर्वक पढ़-लिखकर ऐ॰ए॰एस॰ प्राप्त करती है। रोशनलाल का उच्च पदाधिकारी बनती है।[2]

---

1. विष्णु प्रभाकर - डाक्टर - तृतीय संस्करण 1963 तीसरा अंक - पृ॰130
2. पृथ्वीनाथ शर्मा - नया रूप - 1962 तीसरा अंक - दूसरा दृश्य पृ॰70

दोनों नाटकों के लेखकों ने यह दिखाया है कि अपने आत्माभिमान के आहत होने पर स्त्री कितनी सबल बन जाती है और पुरुष से वह कैसे प्रतिशोध ले सकती है ।

आज की भारतीय नारी, पुरुष की गुलाम रहना नहीं चाहती । स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता उसके जीवन का लक्ष्य है । वह जानती है कि आर्थिक विवशता ही उसकी अस्वतंत्रता का मूल कारण है । अतः जीवन यापन के नाना उपायों को स्वीकार करके आर्थिक दृष्टि से वह स्वतंत्र बनना चाहती है । पिता केलिए ही नहीं, पति केलिए भी भार बनना इसे असह्य है । बहुत से नाटकों में स्त्री की इस आर्थिक आत्मनिर्भरता का प्रयत्न चित्रित हुआ है ।

हरिकृष्ण प्रेमी की "ममता" की युवा नायिका है लता । वह एक धनिक की पुत्री है । उसका पति वकील है । उसके पिता का मैनेजर है विनोद । लता के पिता की संपत्ति को हड़प लेने के उद्देश्य से वह लता को ले जाता है और कहीं गुप्त स्थान पर छिपाकर रखता है । वहाँ से लता बच जाती है और अध्यापिका का काम स्वीकार करती है । वह कहती है "मैं ने सोचा अपमानित और उपेक्षित जीवन व्यतीत करने से तो श्रेष्ठ है अपने पैरों पर खड़े होकर स्वाभिमान की रक्षा करना"[1] । इससे स्त्री के स्वाभिमान की ही नहीं स्वावलंबन की भी भावना व्यंजित होती है ।

नरेश मेहत्ता की रचना खंडित यात्राएं का शशांक नामक पात्र अपनी पत्नी नन्दिनी से कहता है कि अब स्त्री अपनी जीविका के उपादान का प्रयत्न करें । औरों के सहारे जीवन बिताने का तरीका छोड़ दें"[2] ।

1• हरिकृष्ण प्रेमी - ममता - दूसरा अंक, पाँचवाँ दृश्य - पृ•107

2• नरेश मेहता - खंडित यात्राएं - प्रथम सं• प्रथम अंक - पृ•30

इसी बात का समर्थन "रात रानी" [लक्ष्मीनारायण लाल] में भी किया गया है । जयदेव की पत्नी कुन्तल घर को नारी के उद्योग क्षेत्र की सीमा मानती है । लेकिन जयदेव इसका विरोध करता है । पति और पत्नी दोनों की नौकरी करने की बात पर वह बल देता है[1] । परिणामतः कुन्तल, यूनिवर्सिटी के संगीत विभाग में अध्यापिका बन जाती है ।

विनोद रस्तोगी के "नए हाथ" में भी नारी के आर्थिक स्वावलंबन का समर्थन प्राप्त है । इसकी शालिनी समझती है कि वह जमाना गया जब औरत को रोटी केलिए पहले पिता, फिर पति और अन्त में पुत्र पर निर्भर रहना पड़ता था । आज वह आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र है[2] ।

वृन्दावनलाल वर्मा के "मंगल सूत्र"[3], सगुन[4] जैसे नाटकों में भी प्रासंगिक रूप से नारी के आर्थिक स्वावलंबन की आवश्यकता पर बल दिया जाता है ।

नौकरी करनेवाली स्त्रियों का आधुनिक समाज में बहुत बड़ा आदर है । काम करनेवाली नारी अपना जीवन सुखमय बनाती है और अपने संबन्धियों का भी । व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन की स्वस्थता आर्थिक सबलता पर अधिष्ठित है । इसी कारण समाज में ऐसी नारियों का विशेष आदर है जो स्वयं जीविका का उपार्जन करती है ।

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - रातरानी - पहला अंक - पृ.47
2. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - द्वितीय अंक - पृ.41
3. वृन्दावनलाल वर्मा - मंगल सूत्र - चतुर्थ संस्करण दूसरा अंक दूसरा दृश्य - पृ.50
4. वही सगुन चतुर्थ सं. पाँचवाँ दृश्य - पृ.27

चिराग की लौ में कमानेवाली स्त्री को ही आदर का पात्र बताया गया है । वैसा नहीं कमानेवाली स्त्रियों के प्रति समाज की अनुदार दृष्टि की शिकायत करते हुए तारा अपनी सहेली रानी से कहती है "जब औरत कमाकर नहीं लाती, तो उसकी कोई इज्जत नहीं होती । बात बात पर ताने सुनने पड़ते हैं, मन मारना पड़ता है, पैसे पैसे केलिए आदमी का मुँह देखना पड़ता है"[1] ।

मन्नु भंडारी के बिना दीवारों के घर की नायिका शोभा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर है । वह पहले कालेज की अध्यापिका थी । बाद में वह अपने परिश्रम से महिला विद्यालय की प्रिन्सिपल बन जाती है ।

नौकरी करके जीविका कमानेवाली स्वावलंबिनियों के दर्शन "रात रानी" [ले·लक्ष्मी नारायण लाल] नाटक में भी होते हैं । इसकी कुन्तल यूनिवर्सिटी के संगीत विभाग में अध्यापिका है । उसकी सखी सुन्दरम रेडियो स्टेशन में प्रोग्राम एक्जिक्यूटिव है ।

1· रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य पृ·59

इन नारी पात्रों के चित्रण द्वारा नाटककारों ने यह व्यक्त किया है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण ये स्त्रियाँ स्वयं अभिमान और गौरव का अनुभव करती हैं और उन्हें समाज श्रद्धा की दृष्टि से देखता है ।

दहेज भारतीय समाज का अभिशाप है । यह शताब्दियों से नारी जीवन को अकथनीय दुःख तथा अपमान का पात्र बनाता आ रहा है ।

ऐसी निरीह नारियों की संख्या कम नहीं जिनका संपूर्ण जीवन दहेज के कारण अभिशाप और अभिशप्त हो गया । भारतीय साहित्य इन मूक नारियों की करुण कहानी से संत्रस्त है । स्वातंत्र्य के पहले भी श्रेष्ठ कलाकारों ने इस सामाजिक अभिशाप का मार्मिक अंकन किया था । स्वातंत्र्योपरान्त तो दहेज हमारे रचनाकारों केलिए विशेष आकर्षण का विषय बन गई है । भारत सरकार ने 1959 के कानून से दहेज पर प्रतिबन्ध लगाया था । दहेज का विरोध करनेवाले नाटक संख्या में कम नहीं है । उपेन्द्र नाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर आदि हमारे प्रायः सभी नाटककारों ने अपनी रचनाओं में इस कुप्रथा के दुष्परिणाम का चित्रण किया है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क सामाजिक प्रगति के समर्थक हैं । उनके नाटक 'अलग - अलग' रास्ते में प्रेम और विवाह की समस्या मुख्य रूप से उठाई गई है । पर साथ ही दहेज की जटिलता को भी जोड़ दिया गया है । ताराचन्द की बेटी रानी का विवाह त्रिलोक के साथ होता है । एक मोटर कार और मकान

दहेज के रूप में मिलेगा, इस प्रतीक्षा से त्रिलोक, उसका वरण करता है। लेकिन उसकी प्रतीक्षा सफल नहीं होती। फलतः पतिगृह में जीवन बिताना रानी केलिए दुश्वार हो जाता है[1]। विवश होकर वह पिता के घर चली जाती है। पिता उसको समझा बुझाकर दहेज का वादा पूरा करने का आश्वासन देकर, पतिगृह भेजना चाहता है। वह अभिमानिनी लौट जाना पसन्द नहीं करती। अन्त में वह अपने पिता का घर छोड़कर निकल जाती है।

रानी के जीवन के इस दुःखद परिणाम का केवल एक ही कारण है। मकान और कार नारी की अपेक्षा हमारे समाज की दृष्टि में अधिक मूल्यवान है। इसीलिए निरपराध वधु को कष्ट पहुँचाया जाता है।

नाटककार इस सामाजिक कुरीति की ओर कटु दृष्टि से देखता है और पाठकों और दर्शकों के मन में सहानुभूति के साथ अन्याय के प्रति रोष भी उत्पन्न कर देता है।

हमारे समाज में अब भी दहेज की प्रथा जारी है। इसकी सामाजिक मान्यता में कमी नहीं हुई है। दहेज के अतिरिक्त अधिकाधिक आभूषणों की माँग भी अब वधु के जीवन को शोकमय बना रही है।

लक्ष्मी नारायण लाल की "रात रानी" में यह दिखाया गया है कि दहेज की कमी के कारण यथाविधि निश्चित विवाह-संबंध भी टूट जाता है। युनिवर्सिटी का असिस्टेंट प्रोफेसर है निरंजन। उसका ब्याह कुन्तल के साथ तय हो जाता है। विवाह की तारीख भी निश्चित की जाती है। निरंजन का पिता चाहता है कि अपने बेटे की शिक्षा केलिए जितने रुपये खर्च हुए वह सब उसे दहेज के रूप में मिले। लेकिन उतना देने केलिए कुन्तल का पिता तैयार नहीं होता। इसी कारण शादी टूट जाती है[2]।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - अलग अलग रास्ते - प्रथम सं. पहला अंक - पृ.35
2. लक्ष्मी नारायण लाल - रातरानी - प्रथम सं. पहला अंक - पृ.40

"गोदान" का नाट्य रूपान्तर है "होरी"। रूपान्तरकार है विष्णु प्रभाकर। किसान होरी और धनिया की बेटी है सोना। उसके ब्याह के बारे में माता - पिता के बीच चर्चा हो रही है। धनिया, कुल कन्या देने की बात कहती है तो उससे होरी का कथन है - "लेकिन मैं नहीं दे सकता। बहनों के विवाह में तीन तीन सौ बाराती द्वार पर आये थे। दहेज भी अच्छा ही दिया था। आज भी बिरादरी में नाम है। कुल कन्या देकर किसे मुँह दिखाऊँगा"[1]।

यहाँ प्रासंगिक रूप में दहेज की चर्चा छिड़ती है। नाटककार यह व्यक्त करता है कि गरीब किसानों को भी दहेज से मुक्ति मिलती ही नहीं।

दहेज की कठोरता प्रतिपादक सन्तोष नारायण नौटियाल की हास्य प्रधान रचना "चाय पार्टियाँ" में भी मिलता है। भारी दहेज देने पर ही विमला का विवाह रमेश के साथ संपन्न होता है। दहेज में इतना फर्नीचर और सामान दिया जाता है कि रमेश के घर में रखने की जगह नहीं बची थी[2]।

कुछ रचनाओं में दहेज को एक सामाजिक अनाचार के रूप में देखा जाता है। उसका विरोध करनेवाले नौजवान भी समाज में वर्तमान है। "समझौता" [चावलि सूर्यनारायण मूर्ति] के शर्मा जी की बेटी शारदा के साथ ब्रह्मानन्द का विवाह तय होनेवाला है। लड़की को देखने केलिए ब्रह्मानन्द अपने साथी रमेश के साथ शर्मा जी के घर आता है। दहेज के विषय में रमेश पूछता है तो उसके ब्रह्मानन्द का जवाब है यह - "दहेज! मैं दहेज लूँगा? .... कभी नहीं। इस विषय में मेरे विचार पक्के हैं"[3]। लड़की के पिता से भी वह अपना विचार यों प्रकट करता है कि शादी होगी लड़की के साथ दहेज के साथ नहीं"[4]।

---

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - चतुर्थ सं० तीसरा अंक - दूसरा दृश्य, पृ०93
2. सन्तोष नारायण नौटियाल - चायपार्टियाँ - प्रथम सं० प्रथम अंक - पृ०5
3. चावलि सूर्य नारायण मूर्ति - समझौता - प्रथम सं०पहला अंक-पहला दृश्य-पृ०
4. वही -पृ०

ब्रह्मानन्द के चित्रण द्वारा नाटककार ऐसे नवयुवकों का परिचय देता है जो इस सामाजिक अनाचार के विरुद्ध विद्रोह करने केलिए तैयार हैं ।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'मोल सुख' में भी दहेज प्रथा के दुष्परिणामों का अनावरण किया गया है । पीतांबर अपने बेटे कुन्दनलाल केलिए एक भारी रकम दहेज लेना चाहता है । क्योंकि उसने पुत्र की पढाई केलिए बडी रकम खर्च की थी । समाज सुधारक बुद्धामल के सामने पीतांबर अपना विचार प्रकट करता है । उसका विरोध करते हुए बुद्धामल कहता है कि दहेज लेना और देना बहुत बुरा है ।[1] इससे बडी बदनामी होगी । फिर भी कुन्दनलाल पांच हज़ार रुपया दहेज लेकर के ही अलका से शादी करता है ।

वैवाहिक जीवन की सफलता दहेज पर आधारित नहीं, यह भी इस नाटक से सिद्ध होता है । पति के घर पहुँचने पर अलका को दुःख सहना पड़ता है कुन्दन लाल उसे मोल ली गई वस्तु मान लेता है और उसे बात बात पर पीटने में भी संकोच नहीं करता । बेचारी अलका कहती है कि वास्तव में कुन्दनलाल का ब्याह अलका नामक युवति से नहीं पांच हज़ार रुपये से हुआ है ।[2]

नाटककार ने दहेज के दोषों का ही निरूपण नहीं किया । अनमेल के फलस्वरूप मृदुल मानवीय संबंध किस प्रकार शिथिल हो जाते हैं, इस पर भी वह ध्यान देते हैं । इससे सिद्ध यही होता है कि दहेज मानवीय संबंधों को तोड़नेवाला एक कुत्सित अनाचार है ।

वर्तमान साहित्य के अवलोकन से यह विदित होता है कि हमारा समाज यह महसूस करने लगा है कि दहेज अब स्थायी नहीं रह सकेगी । संभवतः उसका बन्धन शिथिल होने लगा है । वह दिन दूर नहीं जब उसका नाम तक जनता केलिए अपरिचित हो । यही कारण है कि इस विषय पर आधारित

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मोल सुख - चतुर्थ सं. - प्रथम अंक, पहला दृश्य-पृ. 9
2. वही छठवाँ दृश्य-पृ. 32

नाट्य रचनाएं कम प्रणीत होती हैं और इसका उल्लेख तक लुप्त प्राय हो रहा है ।

वेश्यावृत्ति, सामाजिक जीवन का बहुत दुःखद सत्य है । सारे संसार में यह सामाजिक रोग वर्तमान है, पर भारत में यह, कुछ हृदय भेदक अत्याचारों के साथ जुड़ा रहता है । बाल-विवाह, अनमेल-विवाह आदि सामाजिक कुप्रथाओं के परिणाम स्वरूप ही वेश्यावृत्ति उद्भूत हो गयी ।

स्वतंत्र भारत में कानून द्वारा वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाया गया है कलंकित जीवन से नारी के उद्धार का प्रयत्न भी जारी है । फिर भी खेद की बात यह है कि पूर्ण रूप से इस दुष्प्रवृत्ति की परिसमाप्ति नहीं हुई है । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में यह समस्या प्रमुख स्थान पाती है । हरिकृष्ण प्रेमी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जैसे नाटककारों ने इस प्रश्न को उठाया है ।

"प्रेमी" ने अपने तीन नाटकों द्वारा वेश्या प्रश्न पर प्रकाश डाला है । "कीर्तिस्तंभ" ( ) में प्रेमी ने दिल्ली की एक गणिका यमुना के जीवन के माध्यम से उन परिस्थितियों का अंकन किया है जिनमें विवशतावश स्त्रियों को कलुष जीवन बिताना पड़ता है ।

यमुना राजमहल की नर्तकी थी । स्वच्छन्द जीवन के परिणाम स्वरूप वह कोठिन बन गयी । अचानक राजकुमारी ज्वाला से उसका साक्षात्कार होता है । उसके हाथों में कुष्ठ के चिन्ह देखकर ज्वाला कह उठती है - "स्वर्ण के लिए शरीर बेचनेवाली ये नारियां समाज की छाती का कोढ है"[1] ।

यह केवल ज्वाला का ही मत नहीं, स्वयं लेखक का भी मत है । "स्त्रियां विशेष परिस्थितियों के शिकार होने पर ही पतित बनती हैं । वस्तुतः कोई भी अपने पतन का कारण स्वयं नहीं है । समाज ही नारी को

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - कीर्तिस्तंभ - विद्यार्थी सं० पहला अंक.पहला दृश्य-पृ०15

वेश्या बनाता है । अन्त में सबके द्वारा उपेक्षित होकर वह विस्मृति के गर्त में डूब जाती है । यह अवस्था प्रत्येक हृदयवान् को व्यथित बनाने में समर्थ है । प्रेमी जी ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है ।

प्रेमी के 'शीशदान' नाटक में भी एक ऐसी युवती का जीवन दृष्टिगत होता है । वह भी परिस्थितिवश गणिका का जीवन बिताने केलिए विवश बनती है । अजीमन खूबसूरत लड़की है । पर उसकी खूबसूरती उसकेलिए अभिशाप बनती है । फिरंगी सिपाहियों के दृष्टि पथ में पड़ने पर वह अपहृत होती है । उनके चंगुल से भागकर घर पहुँचनेवाली अजीमन को घरवाले स्वीकार नहीं करते । बचपन में उसने जो नृत्य, संगीत आदि सीखे थे उसी के सहारे वह जीवन यापन करती है । धीरे - धीरे उस अनिवार्य परिणति का वह शिकार बनती है जिसको समाज वेश्यावृत्ति कहता है । लेकिन समाज यह मानने केलिए तैयार नहीं कि उसी ने उसको वेश्या जीवन की तरफ ढकेल दिया । प्रस्तुत नाटक का नायक टोपे, स्त्री के इस पतित एवं दुःखद जीवन केलिए समाज को ही दोषी ठहराता है[1] ।

प्रेमी का 'शपथ' देश केलिए सर्वस्व बलिदान करने का आह्वान देता है । इसमें भी प्रसंगवश वेश्या समस्या पर भी प्रकाश डाला जाता है । उज्जैनी की प्रमुख नर्तकी - वेश्या है कंचनी । वह महा-मंत्री वत्स भट्ट की ओर आकृष्ट है । राजकुमारी मन्दाकिनी की भी यही हालत है । एक दिन मन्दाकिनी, कंचनी और वत्स भट्ट को एक शिविर में एक साथ देखती है । रुष्ट मन्दाकिनी कंचनी से पूछती है कि क्या तुम गृहिणी बनना चाहती हो ? कांचनी उत्तर देती है - 'कंचनी गृहिणी बनने का स्वप्न नहीं देखती । तुम्हारे भद्र समाज में इतनी उदारता कहाँ जो वेश्या को गृहिणी बनने का सम्मान पाने दे, वह तो पतित को रसातल में ढकेलता है[2] ।

1· हरिकृष्ण प्रेमी - शीशदान - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ·12-13
2· वही दूसरा सं·1954, तीसरा अंक,दूसरा दृश्य

इसमें भी लेखक का मंतव्य है कि मनिला के गणिका बन जाने का वह स्वयं कारण नहीं है । समाज यह समझता है कि पतित नारी का उद्धार कभी संभव नहीं है । स्वयं विशुद्ध जीवन बिताने का प्रयत्न करने पर भी समाज उसको अनुमति नहीं देता । परिणाम स्वरूप नारी का जीवन हमेशा केलिए शाप ग्रस्त हो जाता है ।

"ममता" में भी "प्रेमी" प्रासंगिक रूप से, पैसे केलिए अपने जीवन को पतित बनानेवाली स्त्रियों की चर्चा करते हैं । अपनी पत्नी मता के विरुद्ध जाने पर वकील रजनीकान्त मदिरा और बाजारू स्त्रियों में आनन्द पा लेता है क्या रजनीकान्त की प्रेमिका है । वह उसके इस व्यवहार का विरोध करती है उससे रजनीकान्त का कहना है - "इन्हें किसी से ईर्ष्या नहीं होती । इन्हें केवल पैसा चाहिए । जब चाहो तब ये आशा पालने को प्रस्तुत है - ये जीवन पर कोई बन्धन नहीं डालती"[1]।

नाटककार का यही पक्ष है कि स्त्री अपने जीवन - निर्वाह केलिए ही यह दुष्कर्म करती पड़ती है । अतः उनसे घृणा करना ठीक नहीं ।

उपेन्द्रनाथ अश्क "अलग-अलग रास्ते" में निर्लज्ज लड़की को वेश्या मान यद्यपि प्रोफेसर मदन का ब्याह ताराचन्द की बेटी राज से होता है फिर भी सुदर्शना की ओर ही प्रोफेसर साहब का आकर्षण है । अपनी पत्नी के रहते ! भी वह सुदर्शना के साथ घूमता फिरता है । ताराचन्द इस बात पर सुदर्शना को ही दोषी ठहराता है । उसका मत है कि जो लड़की एक विवाहित पुरु के साथ नंगे सिर, नंगे मुंह, बारीक कपड़े पहने, ओठ - मुंह रंगे, आवारा घूमती है, जिसे न अपना ध्यान है, न उसे ब्याहने की दूसरी लड़की का, वह वेश्या नहीं तो क्या है ?"[2]

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - ममता - पृ.98
2. उपेन्द्रनाथ अश्क- अलग अलग रास्ते - पृ.111

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह के "नज़र बदली बदल गए नज़ारे" में गणिकाओं के उत्थार की बात उठाई जाती है । इसकी मोहिनी एक नर्तकी है और पतित जीवन की मालिकिन" भी । संगीत में उसकी निपुणता देखकर[1] मजिस्टर साहब भरी सभा में उसकी तारीफ करते हैं। कला केन्द्र में शामिल होने का परामर्श भी रखते हैं जहाँ उसकी कलारुचि का विकास हो सके ।

नाटककार पतित स्त्रियों के उद्धार केलिए खोले गए रक्षा शेल्टरों का समर्थन भी करते हैं ।

उपर्युक्त नाटकों में स्त्रियों के घृणित जीवन केलिए समाज को ही दोषी ठहराया जाता है । यह बात ठीक ही है । स्वेच्छा से कोई भी स्त्री कलंकी नहीं बनेगी । आर्थिक पराधीनता ही मुख्यतया उसे अधम जीवन की ओर ढकेलती है । अतः नाटककारों का यह सुझाव है कि पतित नारियों के प्रति सहानुभूति की आवश्यकता है । तभी उनकी उद्धार संभव है ।

यह संतोष का विषय है कि विधवाओं के प्रति हमारी सामाजिक दृष्टि बहुत कुछ बदल चुकी है । विधवा - विवाह आधुनिक भारत में कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है । विधवाओं के उद्धार की बात आधुनिक नाटकों में सहर्ष स्वीकृत है । हरिकृष्ण प्रेमी और लक्ष्मी नारायण मिश्र जैसे नाटककार विधवाओं के अधिकार के पक्के समर्थक हैं । उनके "उद्धार" [हरिकृष्ण प्रेमी] "कवि भारतेन्दु" [लक्ष्मी नारायण मिश्र] जैसी कृतियाँ उदाहरण केलिए लिये जा सकते हैं ।

"उद्धार" एक सांस्कृतिक रचना है । मेवाड के महाराव मालदेव की बेटी है कमला । छोटी आयु में ही विवाहित कमला के जल्दी ही विधवा बनती है । मालदेव का शत्रु है हमीर । वह कमला को अपनी पत्नी बनाना

---

1. राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह - नज़र बदली गए नज़ारें - 1961
नज़ारा और नज़ारों भाग - पृ.73

चाहता है । उसकी राय में "बूढ़ मुंही बच्चियों का विवाह कराकर उनके विधवा हो जाने पर उनके जीवन के सारे सुखों से वंचित रखनेवाला समाज मनहूस और अन्याय ही जाता है[1] । समाज के पाखंडों से विद्रोह करने के उद्देश्य से हमीर कमला से विवाह कर लेता है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व का चित्रण करनेवाला नाटक है "कवि भारतेन्दु" [1950] । इसमें भी विधवा-विवाह का समर्थन मिलता है । इसकी अप्रिय कन्या माधवी और कौनानी युवती मल्लिका दोनों विधवाएं हैं । भारतेन्दु द्वारा दोनों का उद्धार होता है । कहा जाता है कि विधवोद्धार निरत ब्राह्मणकन्नी [कोनाम] से भारतेन्दु खूब प्रभावित थे[2] ।

हमीर और भारतेन्दु दोनों ने प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर सामाजिक क्रांति में त्वरा पहुँचाई ।

नारी-जागरण ने आधुनिक स्त्री समाज को पैतृक संपत्ति की अधिकारिणी बना दिया । पहले उसे यह अधिकार प्राप्त न था । इस बात की भी चर्चा स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में उपलब्ध है ।

कृष्ण किशोर श्रीवास्तव के "नींव के दरारें"[3] और शील के "हवा का रुख"[4] आदि नाटकों में नारी को पिता की जायदाद की अधिकारिणी घोषित है ।

भारतीय नारी युगान्तरों से जिन बन्धनों से संत्रस्त थी, वे सब खोल गए हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता । फिर भी उसे छुटकारा मिला है । अपने व वह आत्मनिर्भर मान सकती है । अपने जीवन को आनन्दमय बनाने की कोशिश सकती है । इन बातों का आभास आधुनिक नाटकों से मिलता है ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - चतुर्थ सं॰तृतीय अंक, पहला दृश्य - पृ॰85
2. लक्ष्मीनारायण मिश्र - कवि भारतेन्दु - प्रथम सं॰पहला अंक - पृ॰33
3. कृष्ण किशोर श्रीवास्तव - नींव की दरारें - दूसरा अंक - पृ॰67
4. शील - हवा का रुख - प्रथम सं॰ प्रथम अंक - पृ॰40

जाति - पाँति का विरोध

जाति-पाँति भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है । वह हमारी सामाजिक प्रगति में अवरोध भी डालती है । साहित्यकारों ने उसपर विशेष ध्यान रखा है । हिन्दी नाट्य साहित्य में इसके स्पष्ट चिन्ह द्रष्टव्य है ।

जाति-प्रथा के विरुद्ध सबसे अधिक रोष प्रकट करनेवाले नाटककार हैं - वृन्दावनलाल वर्मा और हरिकृष्ण "प्रेमी" । लक्ष्मी नारायण लाल, उपेन्द्र नाथ अश्क, विनोद रस्तोगी, उदयशंकर भट्ट, दयानाथ झा, विष्णु प्रभाकर राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह आदि ने भी इस पर पर्याप्त ध्यान दिया है

यह सही है कि वृन्दावनलाल वर्मा राजनैतिक नाटककार के रूप में अधिक विख्यात हैं । पर उनमें प्रबुद्ध सामाजिक दृष्टि का अभाव नहीं है । "निस्तार" नाटक में श्री• वर्मा वर्ण-व्यवस्था का कठोर विरोध करते हैं । रामदीन भगवान का सच्चा दर्शनेच्छु है । लेकिन हरिजन होने के कारण उसको मन्दिर प्रवेश का अधिकार प्राप्त नहीं । पुजारी भोगी लाल का मत है कि हरिजनों को दूर से भगवान का दर्शन करने से ही पुण्य मिलेगा । पुजारी के इस कथन से क्रुद्ध कादम्बिनी जो ऊँच जातवाली है, कहती है - "बापू ने कहा कि वर्णाश्रम, त्याग पर आधारित है और त्याग पर आधारित रहने से ही टिकेगा, अधिकार पर आश्रित नहीं है[1] । लेकिन पुजारी पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ता ।

रामदीन अच्छा गायक भी है । भजन गाने में इसको विशेष दक्षता प्राप्त है । लेकिन वह मन्दिर की ड्योढी के बाहर ही भजन गा सकता है उसकी जाति, मन्दिर-प्रवेश में बाधक है । यह अवस्था समाज लेकर सीमाओं

1• वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - पाँचवाँ सं• पहला अंक - चौथा दृ - पृ•27

[विधान सभा का एक हरिजन सदस्य] को क्षुब्ध बनाती है । वह रामदीन से कहता है कि उसे मन्दिर-प्रवेश निषिद्ध है तो द्वार पर गीत गाना ही अच्छा है[1]

यद्यपि मन्दिर प्रवेश - समस्या की संकीर्णता बहुत कुछ मिट चुकी है तथापि नाटक के रचनाकाल में स्थिति भिन्न थी । इसी कारण नाटककार ने अपनी रचना में उसको स्थान दिया है । उन्होंने देशोद्धार को हरिजनों के उद्धार केलिए परम आवश्यक माना । उनके विमोचन के नारे लगाये । उनके निस्तार के रास्ते ढूँढे ।

वर्मा का दूसरा नाटक है, "ललित विक्रम" । इसमें भी जाति-प्रथा का विरोध है । इसमें स्थापित किया जाता है कि जन्मगत जाति का कोई महत्व नहीं है । व्यक्ति का आचरण ही उसकी श्रेष्ठता का नियामक तत्व है विप्र जाति में जन्म लेकर भी अनाचार करनेवाला निकृष्ट है और सदाचारी, जाति का चण्डाल होता हुआ भी श्रेष्ठ है । इस नाटक में शूद्र जाति का कपिंजल तपस्या करके योगी बनना चाहता है । पर जातिवाद इसका विरोध करता है । तपस्या का अधिकार ब्राह्मण - प्रभाव के काल में केवल द्विजों को ही प्राप्त था । शूद्रों को राजा की अनुमति के बिना योग मार्ग में प्रवेश नहीं कर सकते थे । नाटक का आचार्य धौम्य, इस प्रथा का विरोध करते हैं । उनका विचार है कि साधना पथ में जात-पांत का कोई महत्व नहीं है । ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है[2] ।

शुद्ध चित्तवाले ब्राह्मण भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं । एक ब्राह्मण की स्वीकृति है कि शूद्र भी तपस्या कर सकता है, यहाँ तक कि वह ब्राह्मण भी हो सकता है[3] ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - चौथा सं॰ पहला अंक - तीसरा दृ॰ पृ॰22
2. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - तृतीय सं॰ - पृ॰25
3. वही तीसरा अंक- चौथा-दृश्य - ।

नाटक का नायक मल्लिक, नीतिवान और हरिभक्त चण्डाल को द्विज से बढ़कर श्रेष्ठ मानता है[1]।

नाटककार की स्थापना यह है कि मनुष्य का कर्म ही जन्म की अपेक्षा उसके महत्त्व का निर्णायक होना चाहिए। सदाचारी सब द्विज है और भ्रष्टाचारी चण्डाल। इस तथ्य का समर्थन इस नाटक में होता है। प्राचीन भारत में यह प्रथा वर्तमान थी। पीछे जटिल जातिवाद ने जड़ जमा ली। इसी कारण भारत वर्ष का पतन हुआ। स्वाभाविक है राष्ट्रीय चेतना रखनेवाले वृन्दावनलाल वर्मा ने देशोद्धार को ध्यान में रखते हुए उसका पुनःआख्यान अपने नाटकों में किया।

"हंसमयूर" [ले॰ वृन्दावनलाल वर्मा] में भी इसी विरोध का प्रतिपादन है। इसके कथानक का संबंध शक-काल से है। शकों का भारत-आक्रमण और शासन-स्थापन आदि बातें इतिहास प्रसिद्ध है। शक और यवन विभिन्न देशवाले हैं। दोनों ने भारत पर हमला किया। दोनों यहाँ बस गए। धीरे-धीरे वे परस्पर वैवाहिक संबंध करके एक हो जाते हैं।

उषवदात, शक जाति का अध्यक्ष है। बकुल, युवा यवन-साधु है। भूमक शक कुलोत्पन्न है। उसकी बेटी है तन्वी। उषवदात शकों [तन्वी] और यवनों [बकुल] के बीच का वैवाहिक संबंध बिलकुल स्वाभाविक और उचित मानता है। वह वर्ण-भेद और जात-पाँत का कोई विचार नहीं करता[2]।

शक और यवन भिन्नात्मक भिन्न परम्परावाले हैं। उनकी संस्कृति तथा सभ्यता भी भिन्न है। फिर भी मानवता के नाते उनका आर संयोग संभव है जो एक ही परम्परा के हिन्दुओं के बीच वैवाहिक संबंध क्यों नहीं

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - तीसरा अंक, चौथा दृश्य - पृ॰11
2. वृन्दावनलाल वर्मा - हंस मयूर - छठवाँ सं॰ दूसरा अंक, पाँचवाँ दृश्य पृ॰89

स्थापित हो ? नाटककार वर्मा इस प्रकार का अन्तर्जातीय विवाह समाज की भलाई केलिए आवश्यक मानता है और इस नाटक के माध्यम से उसका समर्थन भी करता है। इसकी रचना 1948 में हुई। इसकी सामाजिक दृष्टि सर्वथा क्रान्तिकारी कही जा सकती है।

"झांसी की रानी" में जाति-पाति के प्रति वृंदावनलालवर्मा का पूरा विद्वेष बल पकड़ता है। इसमें झांसी के सामन्त मोरोपन्त की बेटी की शादी, विधुर राजा गंगाधर राव से करा देने का प्रस्ताव रखा जाता है। प्रस्तावक है बाजी राव। मोरोपन्त और राजा गंगाधर राव दोनों भिन्न जाति के हैं। अतः मोरोपन्त यह आशंका रखता है कि राजा की बराबरी में कैसे करें ? इसका प्रतिवाद करते हुए बाजीराव का कथन है - "जाति में कोई बड़ा छोटा नहीं होता। गंगाधर राव नेवालकर है और तुम ताम्बे। कोई किसी से कम नहीं।"[1]

वर्मा के इन चारों नाटकों में प्रायः एक ही सामाजिक समस्या उठायी जाती है। जातिवाद हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या है, हमारे विकास में बाधक है। इसके निराकरण के बिना समाजोद्धार संभव नहीं है।

हरिकृष्ण प्रेमी ऐतिहासिक नाटककार के रूप में विख्यात हैं। इतिहास कदापि सामाजिक स्थिति की उपेक्षा नहीं कर सकता। वस्तुतः इतिहास तो सामाजिक स्थिति का आकलन ही करता है। इसलिए प्रेमी जी के नाटकों में हमारी तीव्रतर सामाजिक समस्याएं समुचित स्थान पाती हैं। इनके उल्लेखनीय पांचों नाटकों में प्रमुख प्रश्न यही है। उनके नाटक हैं - "उद्धार", "आन का "प्रकाशस्तंभ" "अमर बलिदान" और "ममता"।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी - छठवां सं., प्रथम अंक, दूसरा दृ पृ. 14

"उद्धार" में देश प्रेम सर्वश्रेष्ठ मानवीय गुण बताया गया है। देश का उद्धार तभी सुगमता से संभव होता है जब उसकी जनता संकीर्ण जाति-भावना से मुक्त हो जाय। लेखक का विश्वास है कि सैकड़ों जातियों में विभक्त रहने के कारण ही हमारा देश शताब्दियों तक अस्वतंत्र रहा है। इस नाटक में मेवाड़ का सामन्त गंभीर सिंह से मेवाड़ के महाराणा का पुत्र सुजान सिंह यही कहता है[1]।

नाटककार की दृष्टि में जातिगत संकीर्णता भारतवर्ष की पराजय का कारण है और जब तक यह संकीर्णता नहीं मिटेगी तब तक राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र होता हुआ भी देश, उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सकेगा।

"आन का मान" [1962] भी ऐतिहासिक धरातल पर रचित है। इसमें राजपूत दुर्गादास की कर्तव्य परायणता का प्रतिपादन है। साथ ही जात पाँत की भावना पर विरोध भी प्रकट किया गया। मारवाड़ का सेना नायक है, दुर्गादास राठौर। उसका विचार है कि जाति-धर्म की सीमा को लांघ कर हमें केवल मनुष्य बनना चाहिए। इसी आदर्श के लिए वह जीना और मरना चाहता है[2]।

औरंगज़ेब के पोते बुलन्द अख्तर के प्रति दुर्गादास के शब्द हैं - "हम बँटे हुए हैं, विभिन्न जातियों में, विभिन्न धर्मों में, विभिन्न धर्मों में। हम एक मन्दिर में पूजा नहीं कर सकते, हम एक कुएं से पानी नहीं भर सकते, तब प्रकृति बदला लेती है[3]। इस उक्ति में ऐक्य की कामना कितनी शक्ति मत्ता साथ प्रकट की गई है। इतिहास में ऐसे रोमांचकारी प्रकरण बहुत कम ही दृष्टिगोचर होते हैं। धर्म तथा जाति की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - चतुर्थ सं० तीसरा अंक, पहला दृश्य - पृ०89
2. हरिकृष्ण प्रेमी - आन का मान - दूसरा सं० तीसरा अंक, पृ० 96
3. वही पहला अंक, पृ० 19

विशुद्ध मानवता का समर्थन करनेवाला है दुर्गादास। हिन्दू संस्कृति तथा धर्म का उन्मूलन जिस औरंगज़ेब ने अपने जीवन का ध्येय मान लिया था उसी के पोते दुर्गादास की छत्र छाया में पलते हैं। दुर्गादास के आचरणों से यह सिद्ध होता है कि जाति-भेद देश की एकता केलिए बाधक है और एकता के अभाव में देश का विकास असंभव है।

प्रेमी के "प्रकाश स्तंभ" में मालदा नरेश की पुत्री पद्मा का ब्याह बाप्पा रावल के साथ इसलिए संभव नहीं होता कि बाप्पा निम्न कुलजात है बाप्पा के विचार में अस्वाभाविक, अन्याय पूर्ण तथा मानवता विरोधी परम्परा का अन्त करना प्रत्येक व्यक्ति का श्रेष्ठ कर्तव्य है[1]। वर्ण व्यवस्था को वह सामाजिक विनाश का मूल कारण मानता है[2]।

"ममता" [हरिकृष्ण प्रेमी] नाटक का संबंध वर्तमान समाज की कुछ जटिल समस्याओं से है। धन की इच्छा किस प्रकार मनुष्य को पशु से भी हीन बना देती है, किस प्रकार वह अर्थ-प्राप्ति केलिए अत्यंत घृणित आचरण करने में भी संकोच नहीं करता, यह सब हृदयहारी ढंग से इस नाटक में प्रतिपादित होते हैं। साथ ही, सतत-सजग जाति-प्रथा की चर्चा भी की जाती है।

रजनीकान्त, एक तरुण वकील अपने निम्न सामाजिक स्तर की युवती कला से शादी करना चाहता है। रजनीकान्त विजातीय है, इसलिए कला की माता इससे सहमत नहीं होती। इस संबंध में रजनीकान्त कहता है - "जातियों की सीमाएं कृत्रिम हैं, जो हमें दुर्बल बनानेवाली हैं। मनुष्यता के टुकड़े करनेवाली हैं। ....
यदि अपनी ही जाति में संबंध जोड़ना स्वाभाविक होता तो हृदय अन्य जाति के व्यक्ति के चरणों पर न्योछावर ही क्यों होता?"[3]

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी- प्रकाश स्तंभ - दूसरा सं० पहला अंक, पहला दृश्य-पृ०15
2. हरिकृष्ण प्रेमी- प्रकाश स्तंभ - पहला अंक पहला दृश्य - पृ०19
3. हरिकृष्ण प्रेमी- ममता - चतुर्थ सं० पहला अंक - पहला दृश्य - पृ०13-1

प्रेमी सजग-सामाजिक नाटककार है । वर्तमान सामाजिक जीवन के साथ उनके ऐतिहासिक नाटकों का गहरा संबंध है । वे जानते हैं कि इस देश में मानवीय गुणों की अपेक्षा जाति को अधिक महत्व दिया जाता है । उसी के आधार पर वैवाहिक संबंध को उचित माना जाता है । आज भी इस स्थिति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है । अतएव सामाजिक चेतना रखनेवाले कलाकार अपनी रचनाओं में उसका विवेचन करते हैं ।

उपेन्द्र नाथ अश्क की रचना "अलग-अलग रास्ते" का प्रमुख प्रतिपाद्य है वर्तमान समाज के वैवाहिक जीवन की जटिलता । पर जाति-व्यवस्था की आलोचना भी उसमें की गई है । इसका पूरन क्रान्तिकारी विचारों का समर्थक है । वह जाति-प्रथा का प्रबल विरोधी है । उसका विचार है कि जहाँ तक मनुष्यता का संबंध है, ब्राह्मण और चण्डाल में कोई अन्तर नहीं और फिर ब्राह्मण की लड़की का दिल चंडाल की लड़की से बड़ा नहीं होता ।[1]

"नया समाज" (ले॰उदयशंकर भट्ट) में जमीन्दारी की समाप्ति के बाद नई परिस्थिति से सुलह नहीं करनेवाले जमीन्दारों की जिन्दगी की पेचीदगी का अंकन है । लोलुप जीवन बितानेवाले जमीन्दारों को अन्यों के साथ मिल जुलकर काम करने में कठिनाई महसूस होती है । वे एक प्रकार से सोशल एलियनेशन का सामना करते हैं । साथ ही स्वच्छन्द प्रेम और तज्जनित समस्याएँ भी उठ खड़ी होती हैं । जाति की दीवार उनके स्वच्छन्द प्रेम व्यापार में बाधा उत्पन्न करती है । इन सामाजिक विषमताओं का प्रतिपादन इस नाटक में है ।

चन्द्रवदन सिंह इसका मुख्य कथापात्र है । वह जमीन्दार मनोहरसिंह का पुत्र है । वह स्वच्छन्द प्रेम पर विश्वास रखनेवाला है । पहले वहीलिन

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क - अलग अलग रास्ते - प्रथम सं॰ तीसरा अंक - पृ॰111।

रीटा से वह प्रेम करता था । अब वह आकृष्ट होता है नौकरानी रूपा की ओर । रूपा रूपवती है, पर है निम्नजातवाली । चन्द्र की बहिन कामना, जो पुरुष वेष धारी रूपा पर पहले ही मुग्ध हो चुकी थी, इसका विरोध करती है । इसका विरोध केवल जातिवाद पर अधिष्ठित है । लेकिन चन्द्र प्रेम में जातिवाद का प्रवेश अवांछनीय मानता है[1] ।

नाटक के अवलोकन से प्रतीत यह होता है कि चन्द्र के चरित्र में जाति-विरोध का स्थान गौण है । स्वच्छन्द प्रेमपरता ही उसमें मुख्य है । बाधक होने के कारण ही वह जाति का विरोध करता है । फिर भी यह मानना चाहिए कि किसी भी प्रकार का क्यों न हो, जाति-विरोध प्रयोजन रहित नहीं है ।

नई पीढ़ी के नाटककार भी जाति व्यवस्था की अर्थहीनता की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं । इसका मतलब यह है कि सोशलिज़्म को सामाजिक-आदर्श ग्रहण करने के बाद भी हमारा देश जातिवाद से मुक्त नहीं हुआ है । नई पीढ़ी के लक्ष्मी नारायणलाल, विनोद रस्तोगी, दयानाथ झा आदि के नाटकों में जाति-विरोध स्थान पाता है ।

लक्ष्मी नारायण लाल का "दर्पण" एक मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी नाटक है जिसके घटना चक्र में कुछ पेचीदगी भी है । इसकी नायिका दर्पण परिवार ं गुरु के इस प्रवचन के अनुसार कि वह कुल केलिए विपत्ति का कारण बन जायेगी पाँच वर्ष की उम्र में माता-पिता द्वारा बौद्ध मठ भेज दी जाती है । वह, वहाँ के वातावरण में पलती हुई युवती बनती है । मठ का वातावरण अनैतिक अनुचित मानकर वह दलितों की सेवा को अपना जीवन लक्ष्य ग्रहण करती है । मठ से वापस आती हुई वह मार्ग में कालेरा रोग से पीड़ित हरिपदम की परिचर्या करती है । उसकी सेवापरायणता से सुखी और मुग्ध हरिपदम उससे

---

1. उदयशंकर भट्ट - नया समाज - दूसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.97

शादी करना चाहता है । दर्पण भी इस प्रस्ताव को स्वीकार करती है । लेकिन हरिपद्म का पिता यह समझकर विवाह की अनुमति नहीं देता कि लड़की की जाति, कुल, शील आदि का कोई पता नहीं है । पर हरिपद्म केलिए इन बातों का कोई महत्व नहीं है । वह व्यक्ति के आन्तरिक परिचय को ही महत्व देनेवाला है[1] ।

"रक्त कमल" [ले॰लक्ष्मी नारायण लाल] में भी जाति प्रथा के विरुद्ध लेखक का तीव्र विचार अभिव्यक्ति पाता है । इसका कमल जात-पांत का कड़ा विरोधी है । सब जातवालों को वह अपना भाई मानता है । साथियों के साथ वह फोक म्यूजिक का कार्यक्रम चलाता है । इसमें धोबी जात कन्हैया, जिसे कमल बापू कनु नाम से पुकारते हैं ढोलक बजाता है । वह मुसलमान का लौंडा सारंग, कान में उंगली लगाकर पूर्वी राग में आलापता है । और वह छबीली अमृता सबके बीच में थिरककर नाचती है[2] ।

विनोद रस्तोगी ने "नए हाथ" में जमीन्दारी के उन्मूलन के बाद अपने खोखलेपन को छिपाने केलिए बाह्याडंबर का आश्रय लेनेवाले जमीन्दारों की कहानी कही है । इसका प्रमुख पात्र महेन्द्रपाल, जमीन्दार नरेन्द्रपाल का बेटा है । वह नीच जातवाली बालो को अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहता वह ऊंच-नीच, जाति-पांति में विश्वास नहीं करता । उसकेलिए सब मनुष्य समान है[3] ।

केवल जातीय भेद ही नहीं, सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न भी इसके साथ जुड़ा हुआ है । साधारणतया जमीन्दार लोग प्रतिक्रियावादी होते हैं

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - दर्पण - दूसरा सं॰1966, पहला अंक - पृ॰23
2. लक्ष्मी नारायण लाल - रक्त कमल - दूसरा सं॰ पहला अंक, पहला दृश्य
3. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - द्वितीय सं॰ तृतीय अंक - पृ॰113

वे सामाजिक परिवर्तन के भी विरोधी हैं। लेकिन नाटककार यह स्थापित करता है कि जमीन्दारों में भी उदार विचारवाले होते हैं। वे भी समय की गति को समझनेवाले हैं। सामाजिक परिवर्तन के एकदम विरोधी नहीं हैं।

जाति-प्रथा के प्रति आधुनिक समाज के उपेक्षा भाव को दयानाथ झा ने "कर्मपथ" में प्रासंगिक रूप से व्यक्त किया है। गांव के पंडित मन्द किशोर और चन्द्रिका बाबू के बीच गांव में आये परिवर्तनों के संबंध में बातचीत हो रही है। चन्द्रिका बाबू की उक्ति है - "टेकनाथ बेचारा कितना कर्मठ ब्राह्मण था और उसके लड़के कामेश्वर मन्द को देखिए। न जात समझता है, न पजात। स्वयं ब्राह्मण होकर भी कामेश्वर, चमारों के घर भोजन करता है[1]

यही विचार विष्णु प्रभाकर ने प्रकट किया है अपने "चन्द्रहार" नाटक यह रचना, जो मध्यवर्गीय अशिक्षित नारियों की आभूषण प्रियता का दुष्परिणाम दिखाती है, प्रेमचन्द के "गबन" उपन्यास का नाट्य रूपान्तर है। जालपा, अपनी नौकरी जग्गो के हाथों से बनाये भोजन खाने में हिचकती है। वह कहती है, हमारी बिरादरी में दूसरों का बनाया हुआ भोजन खाना मना है। उसकी इस मूर्खता का विरोध करते हुए जग्गो कहती है कि तुम्हें यहां कौन देखने को आता है। फिर पढ़े लिखे आदमी इन बातों का विचार भी तो नहीं करते। हमारी बिरादरी तो मूरख लोगों की है।[2]

खान-पान बहुत कुछ जात-पात पर अधिष्ठित था। लेकिन आधुनिक समाज में खान-पान की परहेज टूट गई है। बिरादरी की मूर्खता का समर्थन प्रायः होता ही नहीं। सभी जातवाले अब एक साथ बैठकर खाना खाते हैं।

---

1. दयानाथ झा - कर्मपथ - दूसरा अंक - प्रथम दृश्य - पृ. 53-54
2. विष्णु प्रभाकर- चन्द्रहार - प्रथम सं. - चतुर्थ अंक - पहला दृश्य - ।

आधुनिक समाज के इस विचार से साहित्यकार प्रभावित हैं। इसका उदाहरण ही उपर्युक्त पुस्तकों में प्रस्तुत किया गया है।

"धर्म की धुरी" [राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह] में धार्मिक संकीर्णता को दूर करने का प्रयास है। हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के अवसर पर अहम्मद की बीबी मन्दिर में शरण लेती है। पुजारी दुर्गादास इसका विरोध करता है। लेकिन वैष्णव मठ का महन्त सन्तशरण मानवता के आधार पर उसका संरक्षण आवश्यक मानता है। वह कहता है कि वह भी मनुष्य है और हिन्दू लोग जैसे परमात्मा को राम कहते हैं उसी प्रकार मुसलमान रहीम। दोनों के शारीरिक अवयवों में कोई अन्तर नहीं है।[1]

इस नाटक की घटना का संबंध सन् 1947 के साम्प्रदायिक दंगों से है। उन दिनों विरोधी संप्रदायों के सदस्यों से इतनी उदारशीलता प्रतीक्षित नहीं हो सकती पर नाटककार ने उसको संभव और स्वाभाविक कर दिया है। यह अवश्य उनकी उच्च मानवीय दृष्टिकोण का निदर्शन है।

इसी लेखक का दूसरा सामाजिक नाटक है, नज़र बदली बदल गए नज़ारे इसमें हमारे समाज के बदलते हुए परिदृश्य सुरक्षित रखते हैं। देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त ज़मीन्दारों के भाग्य का सितारा डूब जाता है। उनका जीवन नयी परिस्थिति के आविर्भाव के कारण अत्यंत संकटग्रस्त हो जाता है। कुछ ज़मीन्दार परिस्थिति को भली-भांति समझकर अपने को तदनुरूप बदल देते इस प्रकार से अपना तथा समाज का हित करते हैं। रायसाहब ठाकुर सरदार सिंह इस श्रेणी का एक ज़मीन्दार है। अपने प्रभाव-काल में गरीबों पर

---

1. राधिकारमण प्रसाद सिंह - धर्मकी धुरी - दूसरा संस्करण, तीसरा अंक, प्रथम दृश्य - पृ॰49

अत्याचार करने में वह किसी के पीछे नहीं था । अछूत रामदेव उसके अन्याय का शिकार हुआ था । रामदेव अपने बच्चों को यथासंभव शिक्षा देता है । उसका पुत्र मोहन बड़ा प्रतिभाशाली है । शिक्षा प्राप्त करके वह ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होता है । उसके घर में बड़े बड़े मंत्री भी आकर रहने लगते हैं और वह सबका आदर पात्र बन जाता है ।

इस नाटक के राजनीतिक नेता भी जाति-भेद का विरोध करते हैं । मोहन के घर पर एक सार्वजनिक सभा होता है । मंत्री महोदय लोगों को उपदेश देता है, आप लोग बड़ा-छोटा, ब्राह्मण-भंगी के काँटे तो मिटाना ही चाहिए । निरह बोध रखिए, सभी मनुष्य हैं - क्या ब्राह्मण क्या हरिजन, क्या हिन्दू क्या मुसलमान - सबों के सिर पर उस एक भगवान का साया है ।[1]

यह एक सोद्देश्य सामाजिक नाटक है । इसमें देश की एक ज्वलंत सामाजिक समस्या का सफलतापूर्वक समाधान ढूँढा जाता है । यद्यपि नाटककार आदर्शवादी है तथापि उसका संबंध निश्चित रूप से देश की यथार्थ स्थिति से है । जनता को प्रभावित और प्रशिक्षित करने की पूरी क्षमता इसमें है ।

जाति-प्रथा के विरुद्ध स्वतंत्र भारत में आवाज़ उठाई गई है । उसका प्रभाव जन-जीवन पर निश्चयरूप से पड़ा है । इस के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ये नाटक फिर भी हम यह नहीं भूल सकते कि जाति के कठोर नियमों का पालन करनेवाले अब भी भारत में वर्तमान हैं । हिन्दी नाटककारों ने अपनी रचनाओं में उन लोगों का परिचय दिया है जो आधुनिक वैज्ञानिक प्रकाशपूर्ण एवं प्रगतिशील युग में रहते हुए भी जातिवाद के महान्धकार में टटोलते रहते हैं ।

---

1. राधिका रमण प्रसाद सिंह - नज़र बदली बदल गए नज़ारे - दूसरा अंक, दूसरा दृश्य - पृ.42

उदाहरण केलिए, गाँव के कुएं से पानी खींचने के कारण अछूत भाई को पीटनेवाले उच्च कुलवाले [नाटक "निस्तार"] अछूत रामदीन को भगवद् दर्शन का अधिकार नहीं देनेवाला पुजारी [निस्तार], मतदाताओं की सूची में हरिजनों के नाम दर्ज नहीं होने देनेवाला अबसाती लाल "निस्तार], शूद्र के योगी बनने का विरोध करनेवाला ब्राह्मण मेघ [1] [ललित विक्रम], कौशिन अमृता के घर में भोजन करने के कारण कमल को फटकारनेवाली उसकी माँ [2] [रक्तकमल], कमी लड़की पूर्वी से अपने पुत्र हरिपद्म के विवाह का विरोध करनेवाला कायस्थ पिता [3] [दर्पण], ईसाई लड़की रीटा के प्रवेश से अपने घर को अपवित्र माननेवाला ज़मीन्दार मनोहर सिंह [4] [नया समाज], ऊँचजातवालों के अत्याचारों से प्रपीड़ित सेवकराम को पिलाने केलिए देव के कुएं से पानी लेने वाले यज्ञदत्त का विरोध करनेवाले धनदेव और पापबुद्धि [5] [धरतीमाता] अछूत देवराम के प्रति अन्याय करनेवाले राय बहादुर ठाकुर सरदार सिंह [6] और पुजारी [नज़र बदली बदल [illegible] गए नज़ारें" आदि पात्र जातिवाद का कट्टर समर्थन करनेवाले हैं ।

इससे स्पष्ट है कि स्वतंत्र भारत में जाति-प्रथा का पूर्ण विनाश नहीं हुआ है फिर भी इसकी क्षति केलिए समाज सुधारकों और साहित्यकारों का प्रयत्न सराहनीय है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - तृतीय सं॰तीसरा अंक,चौथा दृश्य-प
2. लक्ष्मी नारायण लाल-रक्तकमल - दूसरा सं॰पहला अंक - पहला दृश्य -
3. लक्ष्मी नारायण लाल-दर्पण - दूसरा सं॰ पहला अंक -
4. उदयशंकर भट्ट - नया समाज - पहला अंक - पहला दृश्य -
5. रघुवीर शरण मित्र - धरती माता - चतुर्थ सं॰ चौथा दृश्य - और -
6. राधिकारमण प्रसाद सिंह -नज़र बदली बदल गए नज़ारे-प्रथम अंक, दूसर
7. वही तृतीय दृश्य

प्रेम और वैवाहिक जीवन

विदेशी शासन ने हमारा आर्थिक ढांचा बदल दिया । वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में जो संतुलन वर्तमान था, पश्चिमी सभ्यता के प्रसार से वह मिट गया । अनेक नई समस्याएं उठ खड़ी हुई । उनके द्वारा सर्वाधिक अभिभूत हुए शिक्षित, उच्चवर्ग के लोग । उच्च वर्ग बहुधा उच्छृंखल कामवासना का शिकार हो गया । फलत: प्रेम और विवाह संबंधी जटिलताएं बढ़ने लगीं ।

साहित्यकारों की सूक्ष्म दृष्टि इस पर पड़ी उन्होंने नवीन समस्याओं का समावेश अपने ग्रंथों में किया । स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में यह बात स्पष्टत: प्रतिफलित होती है ।

अवैध प्रेम और अवैध यौन संबंध आधुनिक समाज में साधारण सा हो गया है । तरुण, ऐंद्रिय सुख में तड़पते - तरसते दिखाई देते हैं । वे पश्चिमी युवकों की भांति यौन-संबंध में स्वच्छंदता मानना चाहते हैं । आश्चर्य नहीं, अपनी रचनाओं में ऐसे पात्रों को प्रस्तुत करने में आधुनिक नाटककार अतीव तत्पर हैं । इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय नाटककार हैं - उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायणलाल, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, सेठ गोविन्द दास, भगवती चरण वर्मा आदि ।

उपेन्द्रनाथ अश्क की रचना "अंधी गली" में दीनदयाल और सुरेश दोनों नीति नामक से प्यार करते हैं[1] । सुरेश की चाची की छोटी बहन है नीति । दीनदयाल के रिश्ते में नीति उनकी छोटी साली है । नीति के प्रति दोनों युवकों का प्रेम सामाजिक मर्यादा के अनुकूल नहीं है । फिर भी नाटककार ने उसका चित्रण इसलिए किया कि वह यह दिखा देना चाहता है कि आधुनिक युवक प्रेम संबंध में सामाजिक मर्यादा को महत्व नहीं देते ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - अन्धी गली - पृ.98 और 106

उदयशंकर भट्ट "नया समाज" में अवैध यौन संबंध पर विचार करता है। जमीन्दार मनोहर सिंह, पड़ौस की एक ठकुराइन के साथ अवैध संबंध स्थापित करता है। उसकी एक पुत्री भी पैदा होती है। लोक लाज के भय से जमीन्दा नवजात कन्या को भूमि में गाड़ देता है। भाग्यवश एक गड़रिया द्वारा वह लड़की बचायी जाती है। अपने इस दुष्कर्म पर जमीन्दार अन्त में पश्चाताप करता है[1]।

उपर्युक्त घटना से मिलती जुलती एक घटना जगदीश चन्द्र माथुर के "कोणार्क में घटित होती है।

शिल्पी विशु उत्कल देश की जंगली युवती से अवैध प्रेम - संबंध रखता है उसका एक पुत्र पैदा होता है। अपमान के डर से विशु सारिका [जंगली युवती] और पुत्र को छोड़कर भाग जाता है। बाद में वह अपने इस अपराध पर पश्चाताप भी करता है[2]।

जमीन्दार मनोहरसिंह और शिल्पी विशु ऐसे कायर पुरुषों के प्रतिनिधि है जो बेचारी लड़कियों को भोगलालसा की तृप्ति का उपकरण मात्र मानते हैं, अपनी संतानों को भी अनाथ अवस्था में छोड़ देने में संकोच नहीं करते।

मंत्री से अवैध-प्रेम करनेवाली राणी का चित्रण लक्ष्मी नारायण लाल ने किया है नाटक "तोता मैना" में। राजा के साथ राणी का दाम्पत्य जीवन असन्तुष्ट है। अतः वह मंत्री के साथ भाग जाना चाहती है[3]।

राणी के चित्रण द्वारा नाटककार ने यह व्यक्त किया है कि यौन-अर्थ विवाहिता स्त्री को भी दुष्कर्म करने को प्रेरित करती है।

---

1. उदयशंकर भट्ट-नया समाज- दूसरा सं॰ दूसरा अंक, तीसरा दृश्य-पृ॰65
2. जगदीश चन्द्र माथुर - कोणार्क - पृ॰32

अवैध-प्रेम का प्रतिपादन करनेवाली और एक रचना है सेठ गोविन्द दास का "अशोक" । इसमें वृद्ध सम्राट अशोक को अपना पति पाकर पच्चीस वर्ष की सुन्दरी तिष्यरक्षिता सन्तुष्ट नहीं होती । राजकुमार कुणाल के प्रति वह धीरे-धीरे आकृष्ट हो जाती है । लेकिन इस अवैध - प्रेम संबंध में फंसने को राजकुमार तैयार नहीं होता । इसका कठोर फल उसे भोगना पड़ता है । तिष्यरक्षिता के षड्यंत्र के कारण कुणाल की दोनों आँखें निकाल दी जाती हैं[1] ।

तिष्यरक्षिता के इस कर्म के मूल में उसकी अतृप्त यौन भावना ही कार्य करती है ।

यौन क्षुधा से पिपासु नारी का दर्शन "वासवदत्ता का चित्रलेख" [ले. भगवती चरण वर्मा] में भी मिलता है । वासवदत्ता मथुरा की एक वेश्या - नर्तकी है । यद्यपि वह महाराज क्षेमेन्द्र के साथ रहती है तथापि उसका आकर्षण भिक्षु उपगुप्त के प्रति है[2] ।

उपर्युक्त प्रकरणों से यह विदित होता है कि पुरुष की मानसिक अतृप्ति का मूल कारण यौन है । यही अतृप्ति उन्हें अवैध प्रेम और अवैध यौन-संबंध की ओर ले जाती है ।

पुरानी भारतीय सभ्यता ने वैवाहिक जीवन पर जो विशुद्धि और पवित्रता लगा दी थी वह आज नष्ट प्राय है । विवाह-संबंधी धारणाओं में भारी परिवर्तन आ गया है । परिवर्तित वैवाहिक मान्यताओं का चित्रण स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में उपलब्ध होता है ।

---

1. सेठ गोविन्द दास - अशोक - पृ १०
2. भगवती चरण वर्मा - वासवदत्ता का चित्रलेख - पृ. ४५

उपेन्द्रनाथ अश्क ने "भंवर" में विवाह के प्रति आधुनिक युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। इसके पात्र हरदत्त की दृष्टि में विवाह एक कला है। उसका मन्तव्य है कि इस कला को जाने बिना जो लोग ब्याह करते हैं वे उसे निभा नहीं सकते"[1]। विवाह के संबंध में प्रतिभा का विचार भी क्रान्तिकारी है। प्रतिभा और सुरेश के सिविल मैरेज के छ:महीनों के बाद उनका विवाह-विच्छेद हो जाता है। कारण है उनकी बौद्धिक असमानता। पुनर्विवाह के लिए प्रतिभा को प्रेरित करनेवाली नीलिमा से प्रतिभा अपनी विवाह संबंधी धारणाओं को यों व्यक्त करती है - "मैं ने पहली बार ही शादी करके गलती की। असल में मेरी प्रवृत्ति शादी के अनुकूल ही नहीं। मेरे दिमाग के किसी कोने में आज़ाद और स्वच्छंद ज़िन्दगी का कुछ ऐसा सुन्दर, सजीव और पवित्र चित्र अंकित है कि मैं अब फिर ब्याह करके उसे भ्रष्ट नहीं करना चाहती"[2]

प्रस्तुत दृष्टि कोण के कारण ही शायद सुरेश के साथ प्रतिभा का दाम्पत्य जीवन कायम न रह सका।

भारतीय समाज में पहले विवाह के तय होने में लड़की-लड़के का मत नहीं पूछा जाता था। लेकिन आज के समाज में स्थिति यह है कि विवाह के संपन्न होने में देखना तो यह है कि लड़के को लड़की और लड़की को लड़का पसन्द है कि नहीं[3]।

"अलग-अलग रास्ते" में नाटककार अश्क जी विवाह को स्त्री केलिए बन्धन मानते हैं[3]। राजो और रानी दोनों बहिनें हैं। दोनों का विवाह हो गया और राजा का विवाह-विच्छेद भी। राजा इस कारण पति द्वारा

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - भंवर - प्रथम सं॰ 1961 - दूसरा अंक - पृ॰89
2. वही पृ॰61
3. उपेन्द्रनाथ अश्क - अन्धी गली - प्रथम सं॰ सातवाँ अंक - पृ॰142
4. उपेन्द्रनाथ अश्क - अलग अलग रास्ते - प्रथम सं॰ पहला अंक - पृ॰49

परित्यक्त होती है कि पति का आकर्षण दूसरी स्त्री की ओर है । दहेज की कमी के कारण ससुरालवालों से प्रपीड़ित रानी मैके में ही अपनी शेष ज़िन्दगी बिताना चाहती है ।

विवाह के पूर्व और बाद जीवन के प्रति स्त्रियों के मनो भाव में जो अंतर आता है उसका प्रतिपादन परितोष गार्गी ने "मोहिनी" नाटक की नायिका के माध्यम में किया है । मोहिनी का दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं है । अपने पति के भिन्न प्रेम से बह कहती है - "शादी से पहले ऐसा लगता था जैसे जीवन की कोई थाह ही नहीं । मन उड़ता तो आकाश को जा छूता । अब कुम्हार के चाक की तरह मन मिट्ठी के एक ही लौंदे के इर्द गिर्द चक्कर काटता रहता है[1] ।

"नए हाथ" में नाटककार [विनोद रस्तोगी] की मान्यता है कि कानून के अनुसार वह [लड़की] जिससे चाहे शादी कर सकती है[2] । नाटक की शालिनी नारी जागरण का प्रतीक है । वह विवाह को बन्धन मानती है । उसकी राय है कि हमारे समाज में पति की दासी है पत्नी । मैं किसी की गुलामी नहीं कर सकती । भगवान ने स्वतंत्र पैदा किया फिर जान बूझकर जंजीरों में क्यों बन्धूं"[3] । शालिनी का भाई महेन्द्रपाल जो यूरोप का भ्रमण करके लौट आया है यूरोप और भारत के वैवाहिक जीवन की तुलना करता है । उसकी दृष्टि में भारत में विवाहित पुरुष, औरत का पिट्ठु बन जाता है[4] ।

आधुनिक समाज ने युवकों को अपनी इच्छानुसार जीवन-साथी को चुन लेने का अधिकार दिया है । इस बात पर लक्ष्मी नारायण लाल ने "दर्पण"[5]

---

1. परितोष गार्गी - मोहिनी - प्रथम सं॰ 1964, पहला अंक - पृ॰9
2. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - दूसरा सं॰ तृतीय अंक, पृ॰106
3. वही दूसरा अंक, पृ॰ 40
4. वही " पृ॰ 41
5. लक्ष्मीनारायणलाल - दर्पण - दूसरा सं॰1966, पहला अंक, पृ॰51

में और राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह ने "अपना पराया"[1] में प्रासंगिक रूप में विचार किया है ।

उपर्युक्त रचनाओं में यह दिखाया गया है कि नई पीढ़ी विवाह-संबंधी पुरानी मान्यताओं को तोड़कर इस क्षेत्र में क्रान्ति ही उपस्थित करना चाहती है। आधुनिक युगबोध विवाह को बन्धन भी मानने लगा है ।

अंतर जातीय विवाह आधुनिक समाज में मामूली बात है । सरकार की ओर से अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिल रहा है । ऐसी स्थिति में साहित्य में इसका स्थान पाना बिलकुल स्वाभाविक है । अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन करनेवाले नाटक अनेक हैं । पर महत्व की दृष्टि से "नए हाथ" (ले॰विनोद रस्तोगी) "अपना पराया" (ले॰राधिकारमणप्रसाद सिंह) और "नज़र बदली बदल गए नज़ारें" (ले॰राधि रमणप्रसाद सिंह) आदि रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं ।

"नए हाथ" में नवाब युसुफ की बेटी मलिका के हफीज से प्यार करती है और उसे ही अपना जीवन साथी स्वीकार करने को तैयार हो जाती है[2] ।

"अपना पराया" नाटक में पुलक, रानी से विवाह करना चाहता है । लेकिन रानी अपने कुल एवं जाति से बाहर शादी करने से डरती है । पर पुलक अन्तर्जातीय विवाह का समर्थक है । उसकी दृष्टि में हर आदमी बराबर है - वह कौन है, क्या है, कहाँ है, कोई बात नहीं"[3] ।

अंतर्जातीय विवाह के लिए सरकार की ओर से जो आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाता है, उसका उल्लेख "नज़र बदली बदल गए नज़ारें" में पाया जाता है

---

1. राजाराधिका रमण प्रसाद सिंह - अपना पराया-दूसरा सं॰प्रथम अंक दूसरा दृश्य - पृ॰16
2. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - प्रथम अंक - पृ॰20
3. राधिका रमण प्रसादि सिंह - अपना पराया - दूसरा सं॰1960, प्रथम अंक प्रथम दृश्य - पृ॰5

पुजारी और ठाकुर साहब के बीच वार्तालाप हो रहा है । अन्तर्जातीय विवाह पर भी विचार विनिमय होता है । हरिजन सेवक संघ के मंत्री ने अन्तर्जातीय विवाह के बारे में जो कुछ कहा उसको ठाकुर साहब यों दोहराते हैं - "एक अच्छे खानदान का लड़का एम॰ए॰ पास था । उस बेचारे को जब कहीं रोज़ी - रोटी का ठिकाना न हुआ । उसने माँ-बाप के तेवर को अँगूठा दिखा के किसी हरिजन लड़की से कुछ बाम गाँठ गाँठ कर ली । कांग्रेसी सरकार की नज़र उसपर पड़ी तो उसे पाँच हज़ार रुपये का इनाम मिला । एक अच्छी जगह भी मिली"[1] ।

इससे नाटककार ने यह व्यक्त किया है कि अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित करने के द्वारा सरकार हरिजनों के उद्धार का ही नहीं, नव समाज के निर्माण का भी प्रयत्न कर रही है ।

विवाह विच्छेद और पुनर्विवाह आज के सामाजिक जीवन में केवल मामूली बातें हैं । सरकार ने नियम के द्वारा स्त्री-पुरुषों को विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह का अधिकार प्रदान किया है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों पर इसका प्रभाव लक्षित होता है । उपेन्द्र नाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, लक्ष्मी नारायणलाल, विष्णु प्रभाकर, हरिकृष्ण प्रेमी की रचनाएं इसके उदाहरण

अश्क के "भँवर" में प्रतिभा और सुरेश की सिविल मैरेज होती है । लेकिन उन दोनों में बौद्धिक समता बिलकुल नहीं है । फलत: अनिवार्य परिणाम आया, विवाह विच्छेद । सो भी छ: मह नेों के अन्दर[2] ।

अश्क ही का "अलग-अलग रास्ते" दो बहिनों के जीवन की अलग-अलग रास्ते की कहानी है । बड़ी बहिन है राजो । उसका पति है प्रोफेसर मदन

1· राधिका रमण प्रसाद सिंह - नज़र बदली बदल गए नज़ारें-दूसरा अंक, तीसरा दृश्य - पृ॰50

2· उपेन्द्र नाथ अश्क - भँवर - प्रथम अंक - पृ॰20

दोनों का विवाह विच्छेद हो जाता है । कारण है सुदर्शना के प्रति प्रोफसर साहब का आकर्षण । राजो का भाई पूरन क्रान्तिकारी विचारों का समर्थक है । पुनर्विवाह का भी वह समर्थन करता है । उसके विचार में स्त्री के रहते हुए भी पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो नारी भी पुनर्विवाह कर सकती है[1] ।

वृन्दावनलाल वर्मा के "धीरे धीरे" में पुनर्विवाह को स्त्री-पुरुष को सुखी बनानेवाला एवं पतिव्रत धर्म को बढ़ानेवाला माना गया है[2] । "सात आठ वर्ष तक जिसके पति का पता न लगे, जिसका पति नपुंसक या कोढी हो और जिसका पति स्वभाव से क्रूर हो, दुष्ट और हत्यारा हो, उस स्त्री को संबंध विच्छेद और पुनर्विवाह का अधिकार मिलना चाहिए"[3] - समाज सुधारक बुद्धमल का यह दृढ विचार है । अलका का विवाह कुन्दनलाल से होता है । कुन्दनलाल अलका को हमेशा प्रपीडित करता है कि अलका अपने पिता की सहायता से पति से अलग गोपीनाथ के साथ पुनर्विवाह कर लेती है ।

"मादा केक्टस" में लक्ष्मी नारायण लाल एक केक्टस के माध्यम से वैवाहिक संबंध की समस्या को चित्रित करने का प्रयास करते हैं । पुनर्विवाह इसमें भी स्थान पाता है । सुजाता, अपने पति अरविन्द को ईश्वर के समान मानती है । लेकिन अरविन्द के मन में अपनी पत्नी के प्रति प्रेम का कण तक नहीं है । अपने पति के साथ सुखमय जीवन बिताना सुजाता केलिए असंभव है । उसका विचार है कि जो आपको निष्क्रियता दे उदास करे आपको, उसे आप निस्संकोच त्याग दीजिए[4] । चार वर्षों के वैवाहिक जीवन के बाद अरविन्द तलाक कर देता है । एक महिला-कालेज में अध्यापिका बनने के बाद सुजाता, कवि दिवाकर के साथ पुनर्विवाह कर लेती है और अपने जीवन को सुखमय बना लेती है ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - अलग अलग रास्ते - प्रथम सं. 1954, तीसरा अंक - पृ. 11
2. वृन्दावनलाल वर्मा - धीरे धीरे - दूसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ. 51
3. वही - पृ. 50
4. लक्ष्मीनारायण लाल - मादा केक्टस - पृ. 53

माधा केक्टस" के अरविन्द की तरह "डाक्टर" [ले॰विष्णु प्रभाकर] का सतीश चन्द्र शर्मा भी अपनी पत्नी को तालाक कर देता है । शर्मा की पत्नी मधुलक्ष्मी पर्याप्त शिक्षित नहीं थी । अफसर बन जाने पर वह उसे अपने लिए अयोग्य पत्नी समझता है । अतः वह विवाह मोचन प्राप्त कर पुनर्विवाह कर लेता है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के "ममता" में भी विवाह विच्छेद की चर्चा प्राप्त है । दुष्टात्मा विनोद, वकील राजनीकान्त की पत्नी लता की अपार संपत्ति को हड़प लेने के प्रयत्न में है । वह लता से प्यार का अभिनय करता है । उसे अपनी पत्नी स्वीकार करने का प्रस्ताव रखता है । वह लता को वकील साहब से विवाह-विच्छेद कर लेने का उपदेश देता है[1] । लेकिन लता तैयार नहीं होती

उपर्युक्त प्रसंगों से यह विदित होता है कि दाम्पत्य जीवन के सुख का आधार पति-पत्नी की मानसिक एकता है । एकता के अभाव में जीवन में अशान्ति और कलह छा जाता है । इसलिए आपसी समझौते के अभाव में अंतिम रास्ते के रूप में ही विवाह-मोचन या पुनर्विवाह का समर्थन प्रस्तुत नाटकों में किया गया है ।

प्रेम और विवाह संबंधी समस्याएं आधुनिक जीवन को संकीर्ण बना रही है समाज की नैतिक परम्परा के टूटने का कारण बनती है । अवैध संतानों की समस्या अत्यंत जटिल है । ऐसे बच्चे राष्ट्र के सामने प्रश्न चिन्ह बना देते हैं । सरकार ने इनके संरक्षण के लिए अनाथालयों की स्थापना की है ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - ममता - दूसरा अंक, तीसरा दृश्य - पृ॰89

हरिजनोद्धार और ग्राम-जीवन

स्वतंत्र भारत के सामाजिक जीवन की दो प्रमुख इकाइयाँ हैं, हरिजन तथा ग्राम ।

हरिजनों के उद्धार का प्रयास केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकार द्वारा किया जा रहा है । समाज सुधारक भी इस योग में कर्म निरत हैं । फलस्वरूप अछूतों की दशा बहुत कुछ सुधर गई है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनको सुविधाएं दी जाती हैं । मन्दिर प्रवेश का अधिकार उन्हें प्राप्त है । छुआछूत की भावना प्रायः समाप्त हो रही है । हरिजनों के नव जागरण का दर्शन स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में उपलब्ध है । "महात्मा गांधी" (ले॰सेठ गोविन्द दास), "धर्म की धुरी" (राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह) "नज़र बदली बदल गए नज़ारे" (राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह), "सांपों की सृष्टि", "अमर बलिदान" (हरिकृष्ण प्रेमी) "उजाला" (कृष्ण बहादुर चन्द्रा), "निस्तार" (वृन्दावनलाल वर्मा) आदि रचनाएं अस्पृश्यता निवारण और हरिजनोद्धार का समर्थन करती हैं ।

सेठ गोविन्द दास का "महात्मा गांधी" नाटक हमारे राष्ट्र पिता के जीवन चरित पर आधारित है । इसमें प्रासंगिक रूप से अस्पृश्यता का कठोर विरोध किया गया है । लन्दन के गोल मेज परिषद् में गांधी जी अपना भाषण दे रहे हैं । अछूतों को एक अलग जाति समझने की नीति का वे कट्टर विरोध करते हैं[1] । उनका कहना है कि अस्पृश्यता जीवित रहे इसके बनिस्बत मैं यह ज्यादा अच्छा समझूंगा कि हिन्दू धर्म ही डूब जाय । इसलिए मैं अपनी पूरी ताकत के साथ कहता हूं कि इस बात का विरोध करनेवाला अगर मैं ही अकेला होऊं तो भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूंगा[2] ।

1. सेठ गोविन्द दास - महात्मा गांधी - चौथा अंक-पांचवां दृश्य-पृ॰98
2. राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी - तीसरा अंक, पहला दृ पृ॰50

यहाँ अस्पृश्यता के जीवित रहने में हिन्दू धर्म का विनाश माना गया है । अस्पृश्यता निवारण और हरिजनोद्धार के क्षेत्र में गांधी जी ने जो बहुमूल्य सेवाएं की है, उनकी झाँकी देने में लेखक सफल हुए हैं ।

"धर्म की धुरी", "नजर बदली बदल गए नज़ारे" जैसे नाटकों में राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह हरिजनोद्धार पर बल देते हैं ।

"धर्म की धुरी" का पात्र मस्त राम, गांधी जी के हरिजन-सेवा संबंधी विचारों से प्रभावित है । उसकी दृष्टि में हरिजन-सेवा का प्रश्न अन्याय का परिमार्जन ही नहीं, सदियों के अत्याचार का प्रायश्चित्त भी है[1] ।

राजा साहिब के "नजर बदली बदल गए नज़ारे" में भी हरिजनोद्धार का चित्रण है । इसका चमार देवराम गाँव का मुखिया बन जाता है । हरिजनों के जीवन स्तर पर आये परिवर्तनों को देखकर ठाकुर साहेब आश्चर्य प्रकट करते हैं कि अब तक उसकी कोई हस्ती भी न थी ...... लो, आज अफसरी की ऊंची कुर्सी भी मिल गई[2] । .... और ठाकुरगिरी ही क्यों, राजगद्दी भी उनके पल्ले आ रही है, घर घर मिनिस्ट्री की कलंगी भी[3] ।

हरिजनों को शिक्षा देने का सारा भार भारत सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है । प्रस्तुत नाटक में इस बात का प्रतिपादन है[4] । चमार देवराम के बेटे की पढाई का सारा खर्च सरकार वहन करती है । वह लड़का ऊंची शिक्षा प्राप्त कर समाज में सबसे आदरणीय व्यक्ति बन जाता है । ठाकुर जो पहले हरिजन देवराम पर खूब अत्याचार करता था, अब इस बात को सहर्ष

1• राधा राधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी, तीसरा अंक,पहला दृश्य पृ•50
2• वही नजर बदली बदल गए नज़ारे
3• वही " प्रथम अंक दूसरा दृश्य
4• वही " दूसरा अंक,तीसरा दृश्य

स्वीकार करता है कि हरिजनों के एक एक कदम के पीछे इस देश का विकास चल रहा है । अब वह दिन दूर नहीं जब होते - होते उनसे बेटी रोटी दोनों का संबंध स्थापित हो जायेगा[1] ।

ठाकुर साहब का प्रस्तुत कथन सार्थक सिद्ध हो चुका है ।
हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में भी अस्पृश्यता के प्रति घोर विरोध दिखाया गया साहब, (सांपों की सृष्टि) अलाउद्दीन खिलजी की प्रधान बेगम है । वह गुजरात के राजा कर्णसिंह की महारानी कमलावती के साथ बातें कर रही है । वह कहती है - "भारत की पराजय का मूल कारण यहाँ का उच्च-नीचत्व भाव है । विद्रोहियों से लड़ते समय भी छुआछूत पर ध्यान रखनेवाले भारतीयों का उद्धार असंभव है"[2] ।

प्रेमी जी हिन्दू मुस्लिम एकता के पक्के समर्थक हैं । वे हमारे सामाजिक समस्याओं की जटिलता को भी समझनेवाले हैं । अतएव उन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दू मुस्लिम एकता के साथ पतितोद्धार का भी समर्थन करते हैं ।

"उजाला" कृष्ण बहादुर चन्द्रा की रचना है । यह ग्रामीण-सामाजिक पृष्ठभूमि पर रचित है । नाटककार प्रसंगिक रूप से स्थापित करते हैं कि स्वाधीन भारत में छुआछूत की समाप्ति हो गई है । किसान रामू की पत्नी है सुन्दरिया । देश के बदले नक्शे को देखकर वह आश्चर्य प्रकट करती है कि अब लोग छुआछूत भी नहीं मानते । गांव के लोग छेदी चमार से बच्चे जाते हैं[3] ।

वृन्दावनलाल वर्मा "मिलाप" में हरिजनोद्धार पर बल देते हैं । इसकी उच्च जातवाली कादम्बिनी हरिजनों की सच्ची सेविका है । इसमें हरिजन समस्या को आर्थिक माना गया है । खेतों पर काम करने पर उसे पूरी मजदूरी नहीं मिलती । स्वयं खेती करने केलिए उनके पास भूमि भी

---

1. राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह - नज़र बदली बदल गए नज़ारे, दूसरा व तीसरा दृश्य - पृ.60
2. हरिकृष्णप्रेमी - सांपों की सृष्टि, तृतीय सं.1966, पहला अंक, दूसरा दृश्य

नहीं[1]। नाटक का सीमावार एक हरिजन एम॰एल॰ए॰ है । वह छुआछूत को समाप्त करने केलिए और हरिजनों के आर्थिक सुधार केलिए हड़ताल और सत्याग्रह करने का प्रण लेता है[2]। वह अनपढ हरिजनों को जागृत करता है[3]। अछूत नारा लगाने लगते हैं कि "क्रान्ति चिरजीवी हो" । "छुआछूत का नाश हो"। "हमारा वेतन बढाओ" । "हमें कुओं से पानी भरने दो" । "मन्दिरों में प्रवेश करने दो"[4]।

हरिजनों का यह आन्दोलन सफल निकलता है । वे गांव के कुएं से पानी भरने तथा मन्दिर में प्रवेश के अधिकारी हो जाते हैं । जटा सिंह, जो हरिजनों पर अत्याचार करता था । अपने दुष्कर्मों पर पश्चाताप प्रकट करता है । हरिजनोद्धार को अपना जीवन लक्ष्य मानता है । बरसातीलाल हरिजन बस्ती के सुधार केलिए पांच लाख रुपये का दान देता है[5]।

हरिजनोद्धार की तरह भारत सरकार ने ग्रामोद्योग को भी पर्याप्त महत्व दिया है । इस उद्देश्य की प्राप्ति केलिए ग्राम पंचायतों की स्थापना की है । नाटकों में इनकी चर्चा प्राप्त होती है ।

रहीम का "किसान" किसान वर्ग के संघर्षमय जीवन का सच्चा अंकन करता है । इसका ठाकुर अत्याचारी है । उसके अत्याचारों से ग्राम पंचायत बेचारे कृषकों की रक्षा करती है । फलस्वरूप पंचायत के आदेशानुसार ठाकुर की धोक, गांव के तमाम किसानों की हो जाती है[6]।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - चतुर्थ सं॰ पहला अंक,तीसरा दृश्य-पृ॰20
2. वही वही पृ॰21
3. वही वही पृ॰19
4. वही दूसरा दृश्य पृ॰17
5. वही दूसरा अंक,सातवां दृश्य-पृ॰56
6. रहीम - किसान - तृतीय अंक - पृ॰98

प्रस्तुत प्रकरण में यह दिखाया गया है कि ग्राम-पंचायत ज़मीन्दारों के अत्याचारों से किसानों को बचाकर उन्हें खेती करने की सुविधा देती है। ज़मीन्दार भी पंचायत की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।

"हंसमयूर" [ले॰वृन्दावनलाल वर्मा] का कथानक प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं से संबद्ध है। ग्राम पंचायतों का महत्व इसमें स्वीकृत होता है। भारत पर आक्रमण करनेवाले शकों को परास्त करने के बाद देश की प्रगति केलिए क्या क्या करना चाहिए, इसके बारे में चन्द्रसेन [नलपुर जनपद का नायक] और रामचन्द्र [विदिशा का नाग राज] के बीच चर्चा हो रही है। ग्राम पंचायतों का पुनर्गठन ही उसमें परम आवश्यक माना जाता है[1]।

वर्मा जी के "पूर्व की ओर" नाटक में भी ग्राम-पंचायत का उल्लेख मिलता है। पूर्व में व्यापार करनेवाले चन्द्रस्वामी को अववत्सुंग [आन्ध्र कटक के राजा वीरवर्मा का भतीजा] बांध लेता है और उससे सोना मांगता है। चन्द्रस्वामी सोना देने को तैयार नहीं होता और अववत्सुंग से यह पूछता है कि आप ग्राम-सभा के निर्णय को तो मानोगे ? सब मानते आए है"[2]।

वृन्दावनलाल वर्मा के इन दोनों नाटकों में ग्राम पंचायतों को जन-जीवन केलिए हितकारी दिखाया गया है।

पंचायत-राज का सफल चित्रण दयानाथ झा के "कर्मपथ" में उपलब्ध है। इसमें मनोज, गांव का सरपंच चुना जाता है। देवी मन्दिर में बुलायी जानेवाली पंचायत में ग्रामीण किसानों की अर्जी पढ़ी जाती है। उनकी समस्याओं का हल भी किया जाता है[3]।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - हंसमयूर - छठवां सं॰ - पृ॰116
2. वही पूर्व की ओर - पृ॰ 36
3. दयानाथ झा - कर्मपथ - प्रथम सं॰ दूसरा अंक - पृ॰79

अपराधियों को ग्राम-पंचायत उचित दण्ड देती है। इसका प्रतिपादन विष्णु प्रभाकर ने "होरी" में किया है। होरी और धनिया का पुत्र है गोबर। उसने प्रकट परित्यक्ता झुनिया को आश्रय दिया। ग्राम-पंचायत यह सह नहीं सकी। वह गोबर के माता-पिता पर सौ रुपये नकद और तीन मन अनाज डांड लगाने का फैसला करती है[1]।

"मोह देवता जागा" [ले॰ रामगोपाल शर्मा "दिनेश"] में स्थापित किया जाता है कि शोषित किसानों की सुरक्षा ग्राम पंचायतों में निहित है। तुलसी, साहूकार धनिया सेठ के अत्याचारों से पीड़ित एक निर्धन किसान है। अपनी विवशता को वह गिरीश [गांव का शिक्षित युवक] के सम्मुख प्रकट करता है। उसे समाश्वासन देते हुए गिरीश का कथन है - "दो चार महीने चुप रहो। पंचायतों के चुनाव होनेवाले हैं। जब ग्राम-पंचायत बन जाये तब उसमें अपना मामला रखना। उसका जो फैसला होगा उसे धनिया सेठ को भी मानना पड़ेगा। यदि नहीं मानेगा तो पंचायत उसकी कुर्की कर सकेगी[2]।

सेठ गोविन्द दास के महात्मा गांधी में अब्दुल्ला और सैयद के बीच झगड़ा होता है। गांधी जी दादा अब्दुल्ला का वकील होकर दक्षिण आफ्रिका जाते हैं। वे पंचायत की सहायता से झगड़े का निपटारा करते हैं[3]।

भारतीय ग्रामीणों के जीवन में ग्राम - पंचायतों का जो महत्वपूर्ण स्थान है, वह उपर्युक्त नाटकों में व्यक्त किया गया है। देहातियों के सर्वतोन्मुखी विकास में ग्राम पंचायत निरंतर जागरूक रहती है।

---

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - चतुर्थ सं॰ 1961, दूसरा अंक, पहला दृश्य-पृ॰ 53-5
2. रामगोपाल शर्मा दिनेश - मोह देवता जागा - प्रथम सं॰ प्रथम अंक, दूसरा दृ पृ॰ 23
3. सेठ गोविन्द दास - महात्मा गांधी - 1959 प्रथम अंक, पृ॰ 17

भ्रष्टाचारों की भयानक व्याप्ति

आधुनिक समाज में धोखेबाजी, स्वार्थपरता, उत्कोच आदि भ्रष्टाचार निरन्तर बढ़ते रहते हैं । स्वार्थपूर्ति केलिए और दूषित व्यवहार करने में भी लोग संकोच नहीं करते । ईमानदारी का कोई स्थान नहीं है । प्राय: सभी जननायक दम्भी, कपटी और अवसरवादी हैं । उनकी देखादेखी साधारण जनता भी भ्रष्टाचार में डूब रही है । समाज अवनति की ओर बढ़ रहा है । समाज के इस दूषित वातावरण का चित्रण स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में मार्मिक ढंग से किया गया है ।

"रुपया तुम्हें खा गया" नाटक में नाटककार भगवती चरण वर्मा कहते हैं कि आज के समाज में नेकी और ईमानदारी का कोई स्थान नहीं है । इस नाटक में दफ़्तर से दस हज़ार रुपये की चोरी के मामले में कॉशियर किशोरीलाल पकड़ा जाता है । सचमुच वह सज्जन है, निरपराध है । पर उसकी नेकी, ईमानदारी और भलाई सब अभिशाप बन जाती है[1] ।

चोर है मणिकचन्द । पर कानून की दृष्टि में वह सज्जन है । बेचारा किशोरीलाल चोर साबित हो जाता है । उसे कारावास मिलता है ।

सेठ मणिकचन्द के जीवन से यह सिद्ध होता है कि जो धनी है कानून उसके वश में है । वही माननीय है जो झूठ बोल सकता है । जो धोखा दे सकता है, जो गला काट सकता है वही विजयी होता है[2] ।

स्वार्थी मानव का अनावरण चन्द्रगुप्त विद्यालंकार कृत "न्याय की रात" में भी हुआ है । इसमें यह दिखाया गया है कि स्वार्थी मानव निकृष्ट कार्य करने में संकोच नहीं करता[3] ।

---

1. भगवती चरण वर्मा - मेरे नाटक - रुपया तुम्हें खा गया - पहला अंक, दूसरा दृश्य - पृ.113
2. वही पृ.113
3. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - न्याय की रात - तीसरा सं.दूसरा अंक - पृ.93

विनोद रस्तोगी [नए हाथ] की मान्यता है कि आज के सभ्य एवं शरीफ कहे जानेवाले लोगों में सच्चाई और ईमान्दारी बिल्कुल नहीं है[1]।

मनुष्य में स्वार्थपरता इतनी बढ़ गई है कि उसे अन्यों के संबंध में सोचने का मौका ही नहीं मिलता। सबको एक ही विचार होता है - "अपनी-अपनी हिम्मत, अपना-अपना पैसा"[2]।

"पथ ध्वनि" [आचार्य चतुरसेन शास्त्री] में यह स्थापित किया जाता है कि मानव की स्वार्थपरता ने ही देश को खंड-खंड कर दिया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और शान्ति निकेतन के हर अध्यापक के बीच विभिन्न विषयों पर चर्चा हो रही है। मनुष्य की स्वार्थपरता के संबंध में गुरुदेव अपना विचार प्रकट करते हैं - "मनुष्य ने समाज के समूह जीवन की तो कभी चेष्टा नहीं की। वह केवल अपनी समृद्धि ही चाहता रहा - तप में, त्याग में और विलास में भी। इसी का तो यह परिणाम हुआ कि समाज के खंड खंड हो गए, ऊपर ही से नहीं, भीतर से भी"[3]।

उपेन्द्रनाथ अश्क का "पैंतरे" बंबई के फिल्म क्षेत्र का अच्छा परिचायक है। नाटक का रशीद अपनी पत्नी को समझा देता है कि यह फिल्मी दुनिया है। यहाँ कोई दोस्त नहीं। यहाँ कट थ्रोट कम्पीटीशन है। दोस्त दोस्त को, भाई भाई को गिराकर आगे बढ़ने से नहीं झिझकता[4]।

फिल्मी दुनिया हमारे वर्तमान समाज का प्रतिबिंब मात्र है। स्वार्थ लिप्सा से मानव चेतना धूमिल हो गई है।

---

1. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - दूसरा सं. तृतीय अंक - पृ.95
2. कृष्ण किशोर श्रीवास्तव - नींव की दरारें - दूसरा अंक - पृ.85
3. आचार्य चतुरसेनशास्त्री - पथ ध्वनि - पहला अंक - पृ. 7
4. उपेन्द्र नाथ अश्क - पैंतरे - पहला अंक - पृ.65

हरिकृष्ण प्रेमी के "उद्धार" में मेवाड़ का महाराव मालदेव, धन और प्रभुता के लोभ में पड़कर अपने स्वामी से विश्वासघात करता है। स्वार्थपूर्ति के लिए वह अपना देश विदेशियों को बेच देता है। उसकी स्वार्थपरता मनुष्यता की सीमा को पार कर गई है[1]।

रिश्वतखोरी एक सामाजिक अत्याचार है जिसका प्रसार सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में आज दृष्टव्य है। कार्य सिद्धि या पद प्राप्ति रिश्वत के द्वारा ही हो सकती है, आज यह स्थिति आई है। धनिक व्यक्ति रिश्वत देकर अपना काम चला सकता है। लेकिन गरीब क्या करेगा? भारत सरकार ने रिश्वत को दंडनीय घोषित किया है। पर इसका प्रभाव दिन-ब-दिन बढ़ता रहता है। रिश्वत खोरी को रोकने के लिए जो अफसर नियुक्त है, वे भी निस्संकोच रिश्वत लेने लगे हैं। स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में रिश्वत लेनेवाले कर्मचारियों का चित्रण पाया जाता है।

रेवती सरन शर्मा के "चिराग की लौ" (1962) में रिश्वतखोरी का विरोध पाया जाता है। इसमें रिश्वत लेनेवाले तीन पात्र हैं - इनकम टैक्स अफसर किशोर की पत्नी तारा। मेहता के पास जो संपत्ति है वह उत्कोच स्वरूप उसे मिल गयी है[2]। अस्सी हज़ार का उसका मकान रिश्वत का साकार रूप है। पहले वह सेठ कमाई था। जब कोई बुरा अफसर आ जाता, उसकी चांदी हो जाती। कुछ लेता और कुछ अफसर को देता[3]।

कमीशन एजेंट गिरीश, इन्कमटैक्स की पकड़ से सेठ भोगी लाल को बचा के लिए उससे बीस हज़ार रुपये का कमीशन ले लेता है[4]।

पुलिस द्वारा जब्त की गई एक कापी गिरीश को देकर किशोर की प तारा, गिरीश से पाँच हज़ार रुपया पाती है[5]।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - चतुर्थ सं॰करण अंक,दूसरा दृश्य - पृ॰16
2. रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ-प्रथम सं॰करण अंक-पहला दृश्य-पृ॰10
3. वही पृ॰1(
4. वही दूसरा अंक-पहला दृश्य-पृ॰4(
5. वही तीसरा अंक-दूसरा दृश्य-पृ॰।

घूसखोरी का घोर विरोध करनेवाला एक आदर्श पात्र इस रचना में है - इन्कमटेक्स इन्स्पेक्टर किशोर । मारवाडी सेठ भोगी लाल को इन्कमटेक्स का नोटीस आता है । इससे बचने केलिए वह किशोर को सोफा, कालीन, रेडियो आदि भेंट स्वरूप देता है । लेकिन किशोर उसे स्वीकार नहीं करता और वह सेठ जी को वहाँ से भगा देता है[1]। पत्नी तारा किशोर को रिश्वत लेने की प्रेरणा देती है । अपनी पत्नी को समझाते हुए किशोर कहता है - "रिश्वत लेकर केस छोड देने से क्या होगा ? लोग और वे - इकट्ठे होकर ब्लेक करेंगे । चीज़ें और महंगी हो जायेंगी । जीवन और कठिन हो जायेगा । रिश्वत लेकर हम उल्टे अपने-आप से दुश्मनी करेंगे[2]।

अंत में किशोर की पत्नी तारा स्वयं रिश्वत लेने लगती है । अपने पति को, जो जिन्दगी में बस ईमान और आदर्श की पूँजी लेके चला था, अन्धेरे के राम - भो - करम में छोड देती है[3]।

हमारे समाज में मेहता, गिरीश, तारा जैसे व्यक्तियों की भरमार है । इकसले की शब्दावली में वे सामाजिक शरीर केलिए कैंसर है । भोगीलालों की भी कमी नहीं है । पर जब तक किशोर जैसे चरित्रवान व्यक्ति वर्तमान हैं, भले ही उनकी संख्या बहुत सीमित ही क्यों न हो, भविष्य के संबंध में कठोर नैराश्य की आवश्यकता नहीं । हमारे नाटककार समाज के धूमिल पार्श्व के अवश्य जानकार है । पर उसके उज्वल पक्ष के चित्रण में भी वे जागरूक है । यह बहुत ही आह्लादकारी स्थिति है ।

"होरी" [ले॰विष्णु प्रभाकर] में रिश्वत लेनेवाला व्यक्ति न्याय का पहरेदार पुलिसवाला ही है । हीरा ने होरी की गाय को विष देकर मार

1· रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - पहला अंक - दूसरा दृश्य -पृ॰

2· वही -पृ॰32

3· वही तीसरा अंक ,, -पृ॰85

डालता । पुलिस आती है । तीस रुपये न मिलने पर हीरा के घर की तलाशी करने की धमकी देता है दारोगा । इसी कारण तीस रुपये की बात पक्की हो जाती है ।

उदयशंकर भट्ट के "पार्वती" में घूसखोरी का चित्रण है । नायब तहसीलदार परमानंद की पत्नी गुलाब का पिता बड़ा अफसर है । फिर भी उन्होंने रिश्वत लेकर अपनी लड़कियों की शादियाँ कीं, मकान बनवाये और मोटर खरीदे[1] । गुलाब की माँ सौभाग्यवती अपने पति के इस कर्म पर गर्व करती है । वह अपने दामाद परमानन्द को भी रिश्वत लेकर हाथ रंगाके काम करने का उपदेश देती है[2] । पुत्री गुलाब भी अपनी माँ की लीक पर चलनेवाली है । रिश्वत लेने में अभिमान करनेवाली गुलाब का विरोध करनेवाली है उसकी सहेली रीटा । उसके विचार में रिश्वत लेना ईमान्दारी नहीं है । सरकारी अफसरों को उचित तनख्वाह दिया जाता है । फिर वे क्यों रिश्वत लें ?[3]

"क्रान्तिकारी" [उदयशंकर भट्ट] में भी रिश्वत के बल पर होनेवाली कार्य सिद्धि के बारे में प्रासंगिक रूप से चर्चा आती है[4] ।

अश्क के "पैंतरे" नाटक में भी घूसखोरी का प्रसंग आता है । इसके अनुसार शराब की बोतल पर भी रिश्वत देनी पड़ती है और बाद में बोतल ब्लेक में बिक जाती है ।

सैयद कासिम अलि के "निर्माण" का व्यापारी सेठ पद्मलाल इन्कम टेक्स और सेल्टेक्स से बचने केलिए पुलिस और चुंगी-चौकीवालों को रिश्वत देता है[5] । और एक पात्र पटवारी रिश्वत लेनेवाला है । लेकिन उसका पुत्र

1• उदयशंकर भट्ट - पार्वती 1958, पहला अंक-तीसरा दृश्य - पृ•52
2• वही - पृ•52
3• वही दूसरा अंक-दूसरा दृश्य- पृ•79
4• उदयशंकर भट्ट - क्रान्तिकारी-पहला दृश्य - पृ•26
5• सैयद कासिम अली - निर्माण-प्रथम सं• प्रथम अंक-चौथा दृश्य-पृ•

अपने पिता के श्रम को पाप की कमाई समझता है[1]। अन्त में सेठ चतुर्भानन्द पर मुकदमा चलाया है। रिश्वतखोरी बन्द कराने में सहायक रामु [भारत सेवक समाज का सदस्य] को 2000 का सरकारी पुरस्कार दिला देने की सिफारिश भी की जाती है[2]।

"समझौता" [चावली सूर्यनारायण मूर्ति] का विनायक राव अपने बेटे को परीक्षा में उत्तीर्ण कराने के लिए कुछ रुपये सहित ब्रह्मानन्द [कालेज का अध्यापक] के पास जाता है। ब्रह्मानन्द से वह अपना उद्देश्य यों प्रकट करता है "मुझे मालूम हुआ है कि आप बी.ए. के सेकेंड पार्ट हिन्दी के परीक्षक हैं। वह [उसका बेटा] जरा इसमें कमज़ोर है। कृपया उसका ख्याल रखियेगा। ...... उसका नंबर है 4845[3]. लेकिन ब्रह्मानन्द इसका विरोध करता है।

रिश्वत की ही तरह सामाजिक जीवन को आमूलाग्र विषमय बनानेवाली कुरीति है सिफारिश। इसके बल से योग्य अयोग्य बनाया जाता है, और अयोग्य योग्य। हमारे समाज की इस अवांछनीय प्रवृत्ति का प्रतिबिंब स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में होता है। इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं - "बुझता दीपक" "बिना दीवारों के घर" "अंधो दीदी", "चाय पार्टियां" आदि।

"बुझता दीपक" का लेखक है भगवतीचरण वर्मा। इसमें स्थापित किया जाता है कि आज अयोग्य व्यक्ति भी सिफारिश के बल पर नौकरी प्राप्त करते कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष राधेश्याम शर्मा का भांजा है उदय। बी.ए. डिग्री प्राप्त करने के बाद नौकरी की तलाश में वह घूम रहा है। उसका विश्वास था कि नौकरी देनेवाले "अहिंसा और सत्य के पुजारी" हैं और वे ज़रूर न्याय करेंगे। इसलिए वह अपने मामा से सिफारिश लेने की कोशिश नहीं करता।

---

1. सैयद कासिम अली - निर्माण-प्रथम सं.प्रथम अंक, तीसरा दृश्य - पृ. 8
2. वही तीसरा अंक - पहला दृश्य-पृ.94
3. चावली सूर्यनारायण मूर्ति - समझौता - प्रथम सं.पहला अंक, दूसरा दृश्य-

एक नौकरी की इन्टरव्यू में उदय भी बुलाया जाता है । लेकिन नियुक्ति होती है एक इन्टर पास लड़के की । सिफारिश के बल पर ही वह "योग्य" घोषित किया जाता है[1]।

इसी नाटक में सिफारिश की "सर्वशक्तिमत्ता" का और भी उदाहरण प्राप्त है । शिवलाल के मिल की तलाशी होती है । सरकार उसपर मुकदमा चलाना चाहती है । मुकदमे से अपने को बचाने केलिए शिवलाल गृहमंत्री से सिफारिश कराता है[2]।

निरंजन और उसका पुत्र उदय लोहे और सिमेंट की चोरबाजारी करनेवाले हैं । पुलिस उन्हें पकड़ लेती है । अफसर से सिफारिशें कराकर अपने को छुड़ाने की प्रार्थना करते हुए उदय-राधेश्याम के पास आता है[3]। राधेश्याम उसकेलिए तैयार नहीं होता । उसका मत है कि अपराधी को न्याय के हाथ से छुड़ाने का अर्थ होगा स्वयं उस अपराध का भागी बनना[4]।

मन्नू भण्डारी ने यही समस्या उठाई है "बिना दीवारों के घर" में । नाटक की नायिका शोभा, कालेज की अध्यापिका है । सेठ संपत्तिलाल की पोती कमला, उसके कालेज में पढ़ती है । कमला परीक्षा में फेल हो जाती है । उसे उत्तीर्ण कराने की सिफारिश लिए सेठ संपत्तिलाल, शोभा के समीप आता है[5]। शोभा सहमत नहीं होती ।

इस नाटक की स्थापना यह है कि आज के ज़माने में सिफारिश कोई ऐसी बुरी बात नहीं है जिसे छिपाया जाय । सभी जानते हैं कि आजकल नौकरी योग्यता के आधार पर नहीं, सिफारिश से मिलती है[6]।

---

1. भगवती चरण वर्मा - बुझता दीपक - तीसरा दृश्य - पृ. 75-76
2. वही चौथा दृश्य -
3. वही
4. भगवती चरण वर्मा - मेरे नाटक - प्रथम सं. बुझता दीपक-चौथा दृश्य-पृ. 86
5. मन्नू भण्डारी - बिना दीवारों के घर - दूसरा सं. दूसरा अंक
6. मन्नू भण्डारी - बिना दीवारों के घर - तीसरा अंक-पहला दृश्य - पृ. 86

उपेन्द्र नाथ अश्क, "अंजो दीदी" में यह दिखाते हैं कि मंत्री महोदय का रिश्तेदार ही अनायास नौकरी प्राप्त करता है । आजकल योग्यता का कोई सवाल नहीं उठता[1] ।

सन्तोष नारायण नौटियाल की "चाय पार्टियाँ" का बेजल, एक कम्पनी का मेनेजिंग डायरेक्टर है । उसके दफ्तर में एक वेकन्सी है । सुरेन्द्र अपने साले केलिए सिफारिश के साथ बेजल के पास आता है[2] । बेजल, सिफारिश पर ध्यान नहीं देता । उसे योग्य उम्मीदवार की आवश्यकता है[3] ।

इसी नाटक का रमेश एक आदर्शवादी युवक है । पर है बेकार । सिफारिश के बल पर वह नौकरी पाना नहीं चाहता[4] ।

बेजल के दफ्तर में जो खाली जगह है उसमें रमेश की नियुक्ति की जाती है । वही उम्मीदवारों में सर्वश्रेष्ठ निकलता है ।

उपर्युक्त नाटकों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि हमारे समाज में सिफारिश कितना बद्धमूल हो गई है । इसकी ओर हमारे नाटककार क्षोभ प्रकट करते हैं ।

सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचारों की बहुलता है । साहित्यकारों की दृष्टि इस कठोर सत्य पर पड़ी है । फलत: उन्होंने अपनी रचनाओं में इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई है ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - अंजो दीदी - दूसरा सं०दूसरा अंक - पृ०122
2. सन्तोष नारायण नौटियाल - चायपार्टियाँ - प्रथम सं०पहला अंक - पृ०
3. वही दूसरा अंक - पृ०
4. वही तीसरा अंक- पृ०

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की "न्याय की रात" में हेमन्त नामक एक भ्रष्टाचारी व्यापारी का चित्रण है। उसका पेशा है बड़े बड़े व्यवसायियों को ठेका दिलवाना परमिट का इंतजाम करना आदि[1]। उसके काम में कुछ ऊँचे ऊँचे सरकारी अफसर भी सहायता देते हैं[2]।

"अन्धी गली" में अश्क भी भ्रष्टाचार का परिचय देते हैं। मकान मालिक, दस रुपये के स्थान पर पचास - पचास रुपये किराया माँगता है। शरणार्थी केम्पों में नियुक्त अफसर भी भ्रष्टाचार करते हैं। शरणार्थियों केलिए सरकार से प्रदत्त रुपये से "अपना हिस्सा" वसूल करते हैं।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के "दशाश्वमेध" में शासन संबंधी भ्रष्टाचारों का प्रतिपादन है। औराटक, भ्रष्टाचारी शासक है। वीरसेन उसका विरोधी है। उसका विचार है कि जिस राज्य में शासक को जनता के पेट भरने की चिन्ता नहीं होती, वहाँ वे लोग जनता का पेट काटकर अपने भण्डारों को भरते रहते हैं और समय पड़ने पर जब वहाँ भूख की आग धधकने लगती है तो राज्य जलकर स्वाहा हो जाता है[3]।

शासन के क्षेत्र में भ्रष्टाचार के फैलने के कारण देश की जो दुर्दशा हो जाती है, इसकी ओर यहाँ संकेत किया गया है।

भ्रष्टाचार को रोकने केलिए भारत सरकार ने एक विभाग खोला है। इसके कार्यक्रम की चर्चा वृन्दावनलाल वर्मा ने की है, "देखा देखी" में[4]।

---

1. चन्द्रगुप्त विधालंकार - न्याय की रात - दूसरा सं. 1979, तीसरा अंक-पृ. 1
2. वही
3. लक्ष्मी नारायण मिश्र - दशाश्वमेध - पृ. 57
4. वृन्दावनलाल वर्मा - देखा देखी - दूसरा संस्करण - दूसरा दृश्य पृ. 45

"निर्माण" [सैयद कासिम अली] का पात्र रामू [पटवारी का पुत्र] अपने पिता के भ्रष्टाचारों का कड़ा विरोध करता है[1]। भ्रष्टाचार रहित स्वच्छ वातावरण में ही देश का कल्याण संभव होगा, यही नाटककार की मान्यता है।

नाटककार शील आज की राष्ट्रीय और सामाजिक संस्थाओं को भ्रष्टाचार का अड्डा मानते हैं। अपनी रचना "तीन दिन तीन घर" में वे यह भी मानते हैं कि भ्रष्टाचार के अनुशासन में कभी न्याय की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती[2]।

धोखेबाजी, स्वार्थपरता, घूसखोरी, सिफारिश, भ्रष्टाचार आदि के अतिक्रमण से आधुनिक सामाजिक वातावरण विषैला हो गया है। इसके कारण देश की प्रगति अवरुद्ध हो गई है। सामाजिक भ्रष्टाचारों से देश की रक्षा का प्रयत्न सरकार की ओर से हो रहा है। जनता के संगठित प्रयत्न के फलस्वरूप ही देशोद्धार संभव है।

पैसा ही परमेश्वर है

आधुनिक जीवन में पैसे ने जनता पर इतना सशक्त प्रभाव डाला है कि मनुष्य अब धन के गुलाम हो गया है। आज, धन के साम्राज्य में सब कुछ चलता है, बिना किसी मुश्किल के। मानुषिक संबंध भी धन के आधार पर बनता-बिगड़ता रहता है। आज दुनिया की स्थिति यह हो गई है कि "बिन धन होय न आदर"। आधुनिक नाटककार इस सामाजिक विशेषता के प्रति सचेत है जिसका प्रभाव उनकी कृतियों में देखने को मिलता है।

लक्ष्मी नारायण लाल के "रात रानी" में इस युग को अर्थ युग या एकलौकिक एज माना गया है[3]।

---

1. सैय्यद कासिम अली - निर्माण - प्रथम सं॰ पहला अंक- तीसरा दृश्य-पृ॰।
2. शील - तीन दिन तीन घर - प्रथम सं॰ तृतीय अंक - प्रथम दृश्य-पृ॰।
3. लक्ष्मी नारायण लाल - रातरानी - प्रथम सं॰पहला अंक - पृ॰25

"ज़हर" में नाटककार [कणाद ऋषि भटनागर] ने यह व्यक्त किया है कि इस दुनियां में सारी वस्तुएं धनवान व्यक्ति के अधीन हैं। इसमें एक फर्म का कर्मचारी ब्रज बिहारी का पुत्र श्याम चरण कलक्टर की परीक्षा में फेल हो जाता है। उसकी माँ जगरानी अपने पुत्र की पराजय को उसके प्रति किसी की दुश्मनी का फल मानती है। लेकिन ब्रज बिहारी अपनी पत्नी की इस बेवकूफी पर क्रुद्ध होकर उससे कहता है कि विद्या कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो बनिये की दुकान से खरीदी जाए। तब उससे जगरानी का कथन है - "आज कल के ज़माने में पैसे खर्च करके बाज़ार से सबकुछ खरीद सकते हैं। और तो और लौंडी - लूली लड़की केलिए अच्छा पढा लिखा दामाद भी मिल जाता है"[1]।

श्याम चरण की प्रेमिका है मिल्ली। उसकी शिकायत है कि केवल रूपयों केलिए श्याम चरण उससे विवाह करना चाहता है। अपने उद्देश्य को व्यक्त करते हुए श्यामचरण यों कहता है - "मैं जीवन में आगे बढ़ना चाहता हूं और इस गाडी को खींचनेवाला इंजन रूपयों की शक्ति से आगे बढ़ता है"[2]।

दोनों प्रकरणों में जीवन में धन की शक्ति को ही स्वीकृत किया गया है इससे यह सिद्ध होता है कि जीवन का अस्तित्व ही पैसे पर आधारित है। जीवन के संचालन केलिए धन की अनिवार्य आवश्यकता है।

धन की आकर्षण शक्ति से निश्चित विवाह भी टूट जाता है। पृथ्वीनाथ शर्मा का नाटक [मिया क्या] समाज के इस तथ्य का प्रतिपादन करता है। इसमें रोशनलाल एक क्लर्क है। उसका विवाह रामस्वरूप की बेटी रानी के साथ तय हो जाता है। रामस्वरूप धनी नहीं है। विवाह के पहले ही रोशनलाल मजिस्ट्रेट बन जाता है तो रामस्वरूप के मन में यह भय उत्पन्न होता कि उस पद पर पहुँचने पर रोशनलाल, रानी को छोड़कर किसी धनिक पुत्री से

---

1. कणाद ऋषि भटनागर - ज़हर - प्रथम सं॰ पहला अंक - पृ॰ 5
2. वही दूसरा अंक - पृ॰ 53
3.

विवाह करेगा ? यह डर तब ही निकलता है । मजिस्ट्रेट रोशनलाल रानी को त्यागकर धनिक लालचन्द की बेटी राधिका को अपनी जीवन-संगिनी स्वीकार करता है ।[1]

यहाँ नाटककार यह दिखाना चाहता है कि धन के प्रलोभन में पड़ने पर लोग न्याय अन्याय पर विचार नहीं करेंगे । धन के पीछे लोग पागल हो जाते हैं ।

"शान्तिदूत" (ले. देवदत्त अटल) में भी धन कीमहत्ता को स्वीकार किया गया है । जीवन में धन की परम आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए युधिष्ठिर से अर्जुन का कथन है - "धन से ही धर्म होता है, धन से ही सुख, धन ही सब कलों का मूल है । धन-हीन मनुष्य का जीवन ही मरण है[2] ।

"सरहद" कृष्ण बहादुर चन्द्रा की रचना है । इसमें इस बात को स्वीकार किया गया है कि आजकल दुनिया में वह इन्सान शरीफ है जिसके पास दौलत है[3] । नाटक का पात्र शराफत की दृष्टि में पैसा मनुष्य के जीवन में मुसीबत उत्पन्न करता है । धन के पीछे मनुष्य का पागलपन उसे कहाँ पहुँचाएगा इसके संबंध में वह कहता है, पैसा ! पैसा !! पैसा !!! यह पैसा एक दिन कहर पैदा करके रहेगा । खुदा को छोड़कर हम सब पैसे की इबादत करने लग जायेंगे[4] ।

शराफत की यह मान्यता बिलकुल ठीक है । आज मनुष्य ईश्वर से बढ़कर धन का आदर और पूजा करते हैं । धन-प्रभाव के मंद पड़ने की कोई संभावना है ही नहीं ।

---

1. पृथ्वीनाथ शर्मा - नया रूप - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ. 9
2. देवदत्त अटल - शान्तिदूत - प्रथम अंक - चतुर्थ दृश्य - पृ.24
3. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - सरहद - 1958, प्रथम अंक - पृ.21
4. वही - पृ.19

"तीन दिन तीन घर" (से॰शील) में एक धनहीन साहित्यकार की विवशता दिखाई जाती है । पैसा ही आज की सबसे बड़ी उपलब्धि है । प्रभात एक गरीब साहित्यकार है । फीस न देने के कारण उसका पुत्र रोहित क्लास से बाहर कर दिया जाता है । यह घटना प्रभात को दुःखी बनाती है । लेकिन वह निस्सहाय क्या करे ? इस निर्दय जमाने के प्रति उसके मन में रोष पैदा होता है । उसका विचार है कि पैसा, पैसा आदमी का नहीं - पैसे का दोस्त है । वह सबसे ऊपर, भगवान से भी ऊपर है[1] ।

शील की और रचना है, "किसान" । इसमें स्थापित किया जाता है कि हमारे समाज में कानून भी धन प्राप्ति के अधीन है[2] ।

उदयशंकर भट्ट का "क्रान्तिकारी" भी धन की अजीब शक्ति को स्वीकार करता है । दिवाकर, क्रान्तिकारी है । पुलिस से बचने केलिए वह अपने दोस्त मनोहर सिंह के यहाँ शरण लेता है । मनोहरसिंह का दोस्त चुन्नीसिंह भी वहाँ आता है । दिवाकर कहता है कि कानून मकड़ी के जाल की तरह है, जिसमें गरीब और कमज़ोर ही ज्यादा फँसते हैं और ताकतवर रुपये के चाकू से जाल फाड़कर भाग जाते हैं[3] । रुपये का इस असाधारण शक्ति को चुन्नीसिंह भी स्वीकार करता है । उसकी दृष्टि में कानून के पहाड़ को उड़ानेवाला एक ही डाइनामिट है - रुपया । धनिक खून करके भी रुपये की सहायता से बच जाता है[4] ।

नाटककार का अपना मंतव्य यह है कि कानून आज खरीदने की वस्तु बन गई है । जिसके पास धन है कानून पर उसका अपना राज है ।

---

1. शील - तीन दिन तीन घर - तृतीय अंक, प्रथम दृश्य - पृ॰164
2. शील - किसान - दूसरा अंक - पृ॰57
3. उदयशंकर भट्ट - क्रान्तिकारी - 1960 - पहला अंक - पृ॰26
4. वही - पृ॰26

"प्रियदर्शी" में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द धन को ही मनुष्य के सारे कर्मों का प्रेरक तत्व मानते हैं । महाभारत युद्ध में भीष्म और द्रोण ने धन केलिए ही युद्ध किया था, क्योंकि पुरुष धन का दास है[1] ।

उदयशंकर भट्ट के "नया समाज" में भी पैसे की महत्ता प्रतिपादित है । चन्द्रवदन सिंह (जमीन्दार मनोहरसिंह का पुत्र) अपने नौकर रूपा को इस कारण मारता है कि उसने चाय बनाकर लाने में देरी की । अपने भाई के इस व्यवहार को कामना पसन्द नहीं करती । वह मानती है कि आज मुश्किल से ही नौकर मिलते हैं । नौकरों के अभाव में हमें अपना काम स्वयं ही करना पड़ेगा । चन्द्रवदन सिंह की प्रत्युक्ति है - "मिलता क्यों नहीं ? सब कुछ मिलता है, दस नौकर ला दूँ ? पैसा दो"[2] । पैसे केलिए सब सुलभ है ।

"क्या तुम्हें खा गया" (ले॰ भगवती चरण वर्मा) नाटक का एक व्यक्ति धन मोह से स्वयं टूट जाता है । मनिकचन्द एक एक्सपोर्ट और इंपोर्ट फर्म में नौकर था । दस हज़ार रुपये और फर्म के कुछ आवश्यक कागज़ों की नकल लेकर वह चतुराई से भाग जाता है, दूसरे शहर में एक नया फर्म शुरू करता है । धीरे-धीरे वह करोड़पति बन जाता है । धन के प्रति उसकी मानस उसे बीमार बना देती है । स्वानुभव पर विचार करके मनिकचन्द डाक्टर मजलाल से यह मत प्रकट करता है - "अमीर वह बन सकता है जिसका न ईश्वर पर विश्वास हो, न धर्म पर, न ईमान्दारी पर । केवल एक देवता होता है उसका .... पैसा"[3] । [illegible]

पैसे की प्राप्ति केलिए कोई भी नीच काम करने को मनुष्य तैयार हो जाता है । इस बात का स्पष्ट उदाहरण है, मनिकचन्द का जीवन ।

---

1. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी - प्रथम सं॰ दूसरा अंक - पृ.14.
2. उदयशंकर भट्ट - नया समाज - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ॰ 6
3. भगवतीचरण वर्मा - क्या तुम्हें खा गया - पहला अंक-तृतीय दृश्य

राधिकारमण प्रसाद सिंह के "मजूर बदली बदल गए मजारें" नाटक में यह दिखाया गया है कि निर्धन का आज समाज में कोई स्थान नहीं है। जमींदार का आंगन आमोद प्रमोद का अड्डा था। जमींदारी के टूट जाने पर वहां सन्नाटा जाता है।[1]

इसी लेखक की "धर्म की धुरी" में पैसे को दुनिया का देवता माना गया है।[2]

"विश्वास" (ले॰आचार्य सीताराम चतुर्वेदी) का पात्र गोरख नाथ, धन के अभाव में चुनाव में उम्मीदवार बनने का अपना निश्चय छोड़ देता है।[3] वह जानता है कि धन की उस प्रभाव शक्ति से कोई भी अयोग्य व्यक्ति आगे बढ़ सकता है, उसकी छाया छूकर पाप को पुण्य बना सकता है, अत्याचार को सदाचार बना सकता है।[4]

धनिक, चुनाव जीत सकता है। गरीब का उम्मीदवार होना निरर्थक है। आज की दुनिया केवल धन पर ही ध्यान देती है, योग्यता पर नहीं।

रघुवीर शरण मित्र के "धरती माता" नाटक के सारे पात्र प्रतीकात्मक है। इसमें उसने धन के प्रतीक स्वरूप धन देव नामक पात्र का चित्रण किया है। "मैं पैसा हूं, जो चाहूं सो कर सकता हूं"[5] कहनेवाले धनदेव को प्रस्तुत करते हुए नाटककार ने आज के समाज में धन का जो आधिपत्य है उसे अंकित किया है।

आधुनिक समाज में अर्थ की महत्ता असंदिग्ध है। धन-प्राप्ति ही एक मात्र जीवन ध्येय है। अतएव नाटककारों ने उसी को दुनिया का देवता माना है।

---

1. राधिका रमण प्रसाद सिंह - मजूर बदली बदल गए मजारें-दूसरा अंक -पृ॰36
2. वही धर्म की धुरी - प्रथम अंक, दूसरा दृश्य -पृ॰15
3. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी - विश्वास-दूसरा सं॰प्रथम अंक - -पृ॰10
4. वही -पृ॰10
5. रघुवीर शरण मित्र - धरती माता - चतुर्थ सं॰तीसरा दृश्य

पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव

अंग्रेज़ लोगों ने भारत पर अपनी शासन - सत्ता जमायी और साथ - साथ भारतीयों में पश्चिमी सभ्यता का जाल भी बिछाया । वर्तमान भारतीय समाज पश्चिमी सभ्यता का अन्धा अनुगमन करनेवाला है । हमारी वेश-भूषा, बोल-चाल, रीति-रिवाज़, खान-पान सबमें अंग्रेज़ियत की छाप दिखाई पड़ती है । पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारतीय नर-नारियों का परिचय स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने दिया है[1] । उनकी दृष्टि में पश्चिमी सभ्यता का यह अन्धानुकरण हमारे आर्ष भारत की पावन संस्कृति और सभ्यता केलिए ख़तरनाक है । इसलिए इस प्रवृत्ति का विरोध करते हुए भारतीय आदर्शों की स्थापना का प्रयत्न वे अपनी कृतियों में करते हैं[2] । पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पात्र हैं - "पार्वती" की गुलाब, "मृत्युंजय" की सरोजिनी नायडू, "नारी की साधना" का राजेन, "तीन युग" के जयकिशन और प्रेमा, "देखा देखी" के चांदीलाल और चिमनलाल, "खंडित यात्राएं", की वीणा, "चाय पार्टियां, का रमेश "भँवर" की प्रतिभा आदि ।

"पार्वती" में उदयशंकर भट्ट ने नायब, तहसीलदार परमानन्द की पत्नी गुलाब को प्रस्तुत करते हुए अंग्रेज़ी शिक्षा से प्रभावित भारतीय नारी का परिचय दिया है । गुलाब अंग्रेज़ी में प्राप्त ज्ञान पर दम्भ करती है[3] । वह अंग्रेज़ी खाना, अंग्रेज़ी पहनना और अंग्रेज़ी ढंग को ही पसन्द करती है । उसके विचार में सिविलाइज़्ड बनने का एकमात्र तरीका अंग्रेज़ी ढंग से रहना है[4] । वह "गुलाब" नाम के बदले अपना नाम गुलाब का अंग्रेज़ी शब्द रोसी रखना चाहती है[5] ।

---

1. उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मी नारायण मिश्र, वृन्दावनलाल वर्मा, नरेश मेहता, सन्तोष नारायण नौटियाल, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, विमला रैना, विष्णु प्रभाकर, अक्षय कुमार योशिय ।
2. "पार्वती", "मृत्युंजय", "कवि भारतेन्दु", "तीन युग", देखा देखी" ।
3. उदयशंकर भट्ट - पार्वती, पहला अंक-पहला दृश्य - पृ.10
4. वही दूसरा दृश्य - पृ.37
5. वही "" - पृ.38

"मृत्युंजय" [लक्ष्मी नारायण मिश्र] नाटक में सरोजिनी नायडू को पश्चिमी साहित्य से प्रभावित दिखाया है । उनकी कविताएं पश्चिम की उन व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से खूब प्रभावित हैं जिनमें अनासक्त कवि कर्म का पूरा अभाव है[1] ।

देशोद्धार का नारा लगानेवाले देश के बड़े बड़े नेता पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करनेवाले हैं । देशी वस्तुओं का उपयोग करने का आह्वान देनेवाले हमारे देशनायकों के घर विदेशी चीज़ों से भरे रहते हैं । इस तथ्य का प्रतिपादन विष्णु प्रभाकर ने "चन्द्रहार" नाटक में किया है । इसका पात्र देवीदीन ऐसे नेताओं की ओर संकेत करते हुए कहता है - "जो बड़े बड़े आदमी हैं उनको बिना विलायती शराब के चैन नहीं । उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देसी चीज़ न मिलेगी । दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के भले लिये हैं । घर के और सब सामान विलायती है[2] ।

यहाँ नाटककार ने देश के तथाकथित नेताओं के यथार्थ आदर्शों पर प्रकाश डाला है । ये नेता विदेशी चीज़ों को भोगते हुए भारत-भूमि की सेवा करना चाहते" हैं ।

"नारी की साधना" [ले॰ अमरकुमार यौधेय] का राजेन सदा अंग्रेज़ी में ही बातें करता है । उसकी पत्नी उसे "स्वामी" कहकर पुकारती है तो राजेन इसका घोर विरोध करता है और डार्लिंग, स्वीट हार्ट जैसे अंग्रेज़ी शब्दों से उसे पुकारने का आदेश देता है[3] ।

"पार्वति" की गुलाब से मिलती जुलती एक पात्र है, "तीन युग" [ले॰ विमला रैना] की प्रेमा । वह हिन्दुस्तानी स्कूलों को बड़ा गन्दा समझती है

---

1. लक्ष्मी नारायण मिश्र - मृत्युंजय - तृतीय सं॰ प्रथम अंक - पृ॰24
2. विष्णु प्रभाकर - चन्द्रहार - प्रथम सं॰ तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ॰72
3. अमरकुमार यौधेय - नारी की साधना - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ॰16
4. विमला रैना - तीन युग - पहला दृश्य - पृ॰19

अपनी माता को भारतीय ढंग से माँ कहकर बुलाने में वह अपना अपमान समझती है[1]। वह अपने को पे कहना चाहती है, अपने भाई राजीव को भाई न पुकारकर डार्ली राजीव पुकारती है।

इसी नाटक में डूपी यश से रंग दूसरा पात्र है पंडित जयकिशन। वह अपने नाम को थोड़ा परिवर्तित करके जैक्सन रखता है[2]।

वृन्दावनलाल वर्मा का "देखा देखी" पश्चिमी सभ्यता की देखा देखी का सफल चित्रण करता है। इसमें चांदी लाल अपने बेटे के जन्म दिन को पश्चिमी ढंग से बड़े धूम धाम से मनाता है[3]। उस अवसर पर अनेक मेहमान आमन्त्रित किये जाते हैं और वर्षगांठ मनानेवाला लड़का [नरसिंह] मोमबत्तियाँ जलाकर चाकू से वर्थ डे केक काटकर उसके टुकड़े सबको बाँट देता है[4]। नाटक का दूसरा पात्र चिमनलाल भी जो एक मिस्त्री है, अपने बेटे का वर्षगांठ बड़े धूम धाम से मनाता है।

देखा देखी निम्न मध्यवर्गीय परिवार का थोथा प्रदर्शन करता है। नाटककार की मान्यता है कि पश्चिमी रंग ढंग से भारत का निम्न मध्यवर्ग भी अछूत नहीं है।

यही बात "चायपार्टियाँ" [ले॰ सन्तोष नारायण नौटियाल] में भी देखने को मिलती है। इसमें रमेश के बेटे का जन्म दिन बड़े धूम धाम से मनाया जाता है। दोस्तों को बुलाकर चायपार्टी दी जाती है। पश्चिमी ढंग से वर्थ डे केक पर मोमबत्तियाँ जलायी जाती हैं और बाद में केक को काटकर सबको बाँट दिया जाता है[5]।

---

1. विमला रैना - तीन युग - पहला दृश्य - पृ॰ 11
2. वही - पृ॰ 45
3. वृन्दावनलाल वर्मा - देखादेखी - दूसरा सं॰ पहला दृश्य - पृ॰ 31
4. वही - पृ॰ 32
5. सन्तोष नारायण नौटियाल - चाय पार्टियाँ, प्रथम सं॰ अंक तीन

अंग्रेज़ी ढंग से वर्षगांठ मनाना भारतीयों केलिए आज फैशन सा हो गया है । कर्ज लेकर भी वे ऐसे अवसरों पर खर्च करते हैं । इस प्रकार के अन्धानुकरण का परिणाम क्या होगा ? इसकी ओर वे ज़रा भी ध्यान नहीं देते ।

उपेन्द्रनाथ अश्क के "भंवर" की प्रतिभा भारतीय वेष-भूषा को छोड़कर विदेशी ढंग से वस्त्र धारण करती है । अपने फुल स्लीव्ज़वाली ब्लाउज़ के बारे में वह गर्व करती है[1] ।

आधुनिक नारी परम्परागत भारतीय वेष-भूषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी ढंग के फैशनकुल पहनावे को अधिक पसन्द करती है और उसके पीछे पागल रहती है ।

आधुनिक भारतीय नारी समाज अपनी परम्परा को छोड़ने लगा है । "खंडित यात्राएं" [ले•नरेश मेहता] में इस बात का चित्रण है ।

महेश की पत्नी वीणा, उच्च-शिक्षित आधुनिक नारी है । दृष्टि दोष से बचाने केलिए छोटे बच्चों के दाहिने गाले पर काजल लगाया जाता है। यह परंपरागत रीति है । लेकिन वीणा इस विश्वास का विरोध करती है[2] । पुराने फैशनवाले फर्नीचरों को घर में रखने में भी वह अपमान समझती है[3] ।

"नींव की दरारें" में कृष्ण किशोर श्रीवास्तव तीन फैशन परस्त भाइयों - हेमन्त, शरत और बसन्त - का परिचय देते हैं । वे पुराने ढंग के अपने घर में रहना भी पसन्द नहीं करते । काशी बाबू उनकी माँ से प्रार्थना करता है कि भाभी, एक काम कीजिए .... आंगन की तुलसी खोदकर बाहर फेंक दीजिए तभी फैशन पूरा होगा[4] ।

1• उपेन्द्रनाथ अश्क - भंवर - पृ•62
2• नरेश मेहता - खंडित यात्राएं - प्रथम सं•दूसरा अंक - पृ•46
3• वही - पृ•47
4• कृष्ण किशोर श्रीवास्तव - नींव की दरारें - पहला अंक - पृ•39

फैशन परस्ती की उपहासस्पदता प्रकट करने केलिए प्रस्तुत पात्रों का चित्रण किया गया है ।

विदेशी सभ्यता के विरोधी तथा भारतीय संस्कृति के समर्थक पात्रों का भी चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलती है । उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मी नारायण मिश्र, विमला रैना, वृन्दावनलाल वर्मा आदि के नाटकों में भारतीय परंपरा का समर्थन विद्यमान है ।

"पार्वती" में पाश्चात्य सभ्यता का विरोध करनेवाले पात्र है परमानन्द और रीटा । परमानन्द मायब तहसीलदार है और उसकी पत्नी गुलाब की सहेली है रीटा । गुलाब पाश्चात्य सभ्यता में रंगी हुई है । परमानन्द इसके विपरीत दृष्टि रखनेवाला है । उसकी शिकायत है कि राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से भारत स्वतंत्र नहीं हुआ है[1] । रीटा भी परमानन्द की तरह पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण का विरोध करनेवाली है[2] ।

इन दोनों पात्रों के चित्रण द्वारा नाटककार ने खोखली अंग्रेजी फैशन का विरोध करके भारतीय संस्कृति और सभ्यता के परिपालन करने का आह्वान दिया है ।

केवल वेश-भूषा और आचार-विचार तक ही पश्चिमी प्रभाव सीमित नहीं है । हमारा साहित्य भी इससे प्रभावित है । इस प्रभाव के संबंध में स्वयं महात्मा अपनी अन्तर्दृष्टि प्रकट करते हैं । "मृत्युंजय" (ले॰लक्ष्मी नारायण मिश्र) में । उनका विरोध यों कलक उठता है - "पश्चिम के साहित्य का उन्माद इस देश पर छा रहा है । शरीर से स्वतंत्र होकर भी मन से यह देश पश्चिम का दास रहेगा[3] । अंग्रेजी साहित्य के प्रति भारतीयों के आकर्षण को

1• उदयशंकर भट्ट - पार्वती - पहला अंक - दूसरा दृश्य - पृ॰36
2• वही पहला दृश्य - पृ॰18
3• लक्ष्मी नारायणमिश्र - मृत्युंजय - तृतीय सं॰ प्रथम अंक - पृ॰24

गाँधीजी पसन्द नहीं करते । उसके मत में विदेशी साहित्य भारतीयों के भाव लोक में कोढ बनेगा[1] । तुलसी दास के रामायण के साथ शेक्सपियर के नाटक भी पढने से भारतीय छात्र मेकबथ बनेंगे, न भरत[2] ।

प्रस्तुत उक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाँधीजी, अँग्रेज़ी सभ्यता का कठोर विरोध करते थे, खासकर भारतीय साहित्य पर पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव का ।

इस विषय की चर्चा मिश्र जी के "कवि भारतेन्दु" में भी की गई है । अँग्रेज़ों ने सर्वप्रथम कोशल पर अपना अधिकार जमाया था । धीरे-धीरे अँग्रेज़ी सभ्यता और साहित्य का भारत में प्रचार हो गया । फलतः जनता भारत के महान कवियों को भूल गई और अँग्रेज़ी कवियों के प्रति श्रद्धा करने लगी । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, देश की इस हालत से दुःखी है और वे "प्रेमधन" से अपना विचार यों प्रकट करते हैं - "कोशल पर अँग्रेज़ी का जाल बिछता जा रहा है,. शेक्सपियर की जय और धूम मची है । कालिदास का कोई नाम नहीं लेता । यह लक्षण क्या हमारी भारती की परवशता के नहीं है ?[3]"

भारतेन्दु के इन शब्दों में नाटककार के विचार ही प्रकट होते हैं । भारतीय सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के प्रति लोगों की उपेक्षापूर्ण दृष्टि नाटककार को सह्य नहीं ।

"तीन युग" [ले·विमला रैना] का केलाश पश्चिमी फैशन को वह ज़रा भी पसन्द नहीं करता[4] । प्रेमा की माँ भी पश्चिमी प्रभाव का विरोध करती है । अपनी बेटी की वेश-भूषा का विरोध करते हुए वह कहती है -

---

1· लक्ष्मी नारायण मिश्र -मृत्युंजय - तीसरा अंक - पृ·130
2· वही - पृ·130
3· वही कवि भारतेन्दु, प्रथम सं·दूसरा अंक - पृ·90
4· विमला रैना - तीन युग - पहला दृश्य - पृ· 11

"देखो न अब 14 बरस की होने आई । ई कउनों दुलार है ? ब्याह शादी की उमर भई कि घुटने तक फिराक पहन के उछलत कूदत रहत है"[1] ।

जीवन के हर क्षेत्र में पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण करनेवालों की चर्चा प्रासंगिक रूप से -वृन्दावनलाल वर्मा के "देखा देखी" में की गई है । चांदी लाल, चिमनलाल आदि पात्र अंग्रेज़ी सभ्यता का अन्धानुकरण करनेवाले हैं । हर नारायण इसका पूरा विरोध करता है । उसके कुपरिणामों की ओर वह संकेत करता है - "जन्म दिवस के समारोह से लेकर ब्याह-शादी त्योहार की धूम धाम तक देखा देखी में चढ़ा बढ़ी हो रही है । विनाश की ओर चले जा रहे हैं हम लोग"[2] ।

यहाँ लेखक की आशंका है कि देखा देखी की प्रवृत्ति देश को विनाश की ओर ले जाएगी ।

ये नाटक इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव भारतीय समाज के लिए श्रेयस्कारी नहीं है । वह भारतीयों के बौद्धिक और मानसिक विकास में बाधा पहुँचायेगा । इसलिए नाटककारों ने उसका कड़ा विरोध किया है ।

<u>आधुनिक शिक्षा की आलोचना</u>

आधुनिक शिक्षा ने भारतीय जन-जीवन में अनेक समस्याओं को उत्पन्न किया है । यद्यपि भारतीयों को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने में उसने सहायता दी तो भी उनके परंपरागत विचारों, आदर्श और जीवन मूल्यों का उन्मूलन ही कर डाला । अतः स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने आधुनिक शिक्षा की

---

1. विमला रैना - तीन युग - पहला दृश्य - पृ.19
2. वृन्दावनलाल वर्मा - देखा देखी - तीसरा दृश्य - पृ.65

ही आज के जीवन के अनेक दोषों का उत्तरदायी माना है । इस विचार धारा का प्रतिफलन प्रमुख रूप से सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णुप्रभाकर, वृन्दावनलालवर्मा, विमला रैना आदि नाटककारों का रचनाओं में पाया जाता है ।

सेठ गोविन्द दास के "भूदान यज्ञ" नाटक की मान्यता है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति किसी बात पर तुरन्त विश्वास नहीं करेगा । पढ़े लिखे व्यक्ति भूदान आन्दोलन के आदर्शों पर विश्वास नहीं करते । नाटक के पात्रों में से एक हैं जे०पी० । उनके अनुसार इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण है आधुनिक शिक्षा[1] ।

ऊंची डिग्रियाँ प्राप्त करके भी युवक-युवतियों को बेकार ही रहना पड़ता है । हरीश के "हवा का रुख" में आधुनिक डिग्रियों को बेकार माना गया है । इस नाटक का पात्र प्रमोद, उच्च शिक्षित होने पर भी बेकार है । वह ऊंची डिग्रियों को निष्प्रयोजन मानता है[2] ।

"खिलौने की खोज" (वृ०वृन्दावनलाल वर्मा) में आधुनिक शिक्षा को आज के जीवन केलिए अनुपयुक्त माना गया है । केवल अक्षरों के अभ्यास और पुस्तकों को रटने से वास्तविक शिक्षा प्राप्त नहीं होती । आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो जनता को भोजन और वस्त्र प्राप्त करने में समर्थ बनावे[3] ।

वर्मा जी के (पीले हाथ" में भी प्रासंगिक रूप से आधुनिक शिक्षा के दोषों पर प्रकाश डाला गया है । उनका निष्कर्ष है, शिक्षितों की अपेक्षा अशिक्षित अधिक स्वाधीन है[4] ।

---

1. सेठ गोविन्द दास - भूदान यज्ञ - दूसरा सं० दूसरा अंक,तीसरा दृश्य पृ०76
2. हरीश - हवा का रुख - प्रथम सं०प्रथम अंक - पृ०33
3. वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज - छठवां सं०सातवां दृश्य-पृ०38
4. वृन्दावनलाल वर्मा - पीले हाथ - छठवां सं०सातवां दृश्य - पृ०38

"अंधी गली" के लेखक [अश्क] का विचार है कि आधुनिक शिक्षा लड़कियों के लिए उपयोगी नहीं । अतः लड़कियों को गृह विज्ञान की आवश्यकता है[1] ।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के "मृत्युंजय" के महात्मा गांधी अंग्रेज़ी शिक्षा के संबंध में बिलकुल असंतुष्ट हैं । उनका विश्वास है कि अंग्रेज़ी शिक्षा के फलस्वरूप हमारा शिक्षित वर्ग अपना स्वरूप भूलकर अपने देश में विदेशी बना रहेगा[2] ।

"तीन युग" [ले॰ विमला रैना] का कैलाश, अंग्रेज़ी स्कूलों का घोर विरोध करता है । अपनी बहन प्रेमा को अंग्रेज़ी स्कूल में भेजना भी वह पसंद नहीं करता[3] । कैलाश का सवाल यह है कि जहाँ भारतीय बच्चे अपने देश के कपड़े पहन नहीं सकते, जहाँ भारतीय धर्म और रीति-रिवाजों का मज़ाक उड़ाया जाता है, जहाँ दूसरा धर्म सिखाया जाता है वहाँ [अंग्रेज़ी स्कूलों में] भारतीय बच्चे क्यों भेजा जाय[3] ।

"पार्वती" की रीटा की दृष्टि में अंग्रेज़ी शिक्षा मनुष्य मनुष्य में भेद उत्पन्न करती है । इस शिक्षा की प्राप्ति से हम व्यर्थ ही अपने को बड़ा समझने लगते हैं और एक व्यर्थ का दम्भ हमारे भीतर घर कर जाता है[4] ।

आधुनिक शिक्षा के दोषों की चर्चा करनेवाला और एक नाटक है, "चाय पार्टियाँ" [ले॰सन्तोष नारायण नौटियाल] । एक कंपनी का मैनेजिंग डाइरेक्टर है केवल । एक बूढ़ा उससे मिलने आता है । वह केवल के पिता और दादा का मित्र है । लेकिन केवल उसे पहचान नहीं पाता । इसलिए बूढ़ा केवल को नहीं बल्कि आधुनिक शिक्षा को दोषी मानता है[5] ।

1• उपेन्द्रनाथ अश्क - अंधी गली - पृ॰17

2• लक्ष्मी नारायणमिश्र - मृत्युंजय - तृतीय सं॰ पहला अंक - पृ॰31

3• विमला रैना-तीन युग - पहला दृश्य - पृ॰11

4• वही

5• उदयशंकर भट्ट - पार्वती - प्रथम अंक - पृ॰ 14

6• सन्तोष नारायण नौटियाल - चायपार्टियाँ - प्रथम सं॰ दूसरा अंक-पृ॰47

आधुनिक शिक्षा ने आज की युवा-पीढ़ी को अनुशासनहीन बना दिया है। आधुनिक युवक अपने माता-पिता और गुरुजनों के प्रति आदर नहीं रखता। नैतिकता उसके जीवन से दूर चली गई है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में आधुनिक युवा पीढ़ी ने स्थान प्राप्त किया है।

विष्णु प्रभाकर का नाटक है "होरी"। गोबर, होरी का पुत्र है। वह अपने माता-पिता की एक बात भी नहीं मानता।[1]

"पार्वती" में एक ऐसी माता का चित्रण है जिसने कठोर कष्ट सहन करके अपने इकलौते बेटे का पालन किया। लेकिन पढ़ लिखकर बेटा जब बड़ा अफसर बन जाता है तो वह अपनी माँ की ओर घृणा की दृष्टि से देखने लगता है[2]। पर माता इतनी स्वाभिमानिनी है कि अपने बेटे के आश्रय में नहीं जाकर अपनी ही कुटिया में अकेली जीवन बिताती है। इस नाटक में भी आधुनिक शिक्षित युवकों की स्वच्छन्दता और हृदयहीनता की ओर संकेत है।

लक्ष्मी नारायण लाल की दृष्टि भी इस विषय पर पड़ी है। उनके "सुन्दर रस", "दर्पण", "मादा कैक्टस" जैसे नाटकों में युवकों की स्वेच्छाचारिता का प्रतिपादन है।

"सुन्दर रस" के पण्डित राज के दो शिष्य हैं शान्तिदेव और क्षेमनाथ। दोनों गुरु-पत्नी की बहन वीणा के प्रेम के प्यासे हैं और स्वच्छन्द प्रेम पर विश्वास रखनेवाले हैं[3]।

प्रेम संबंधी यह स्वच्छन्दता आधुनिक शिक्षा की "देन" मानी जाती है।

---

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - पृ.82
2. उदयशंकर भट्ट - पार्वती - पृ. 26
3. लक्ष्मी नारायण लाल - सुन्दररस - पृ.81

'दर्पण' का हरिपद्म भी अपने पिता का आदर नहीं करता । वह स्वेच्छानुसार विजातीय लड़की पूर्वी से विवाह करना चाहता है । उसका पिता विरोध करता है । इस बात पर अपने पिता का चीखना हरिपद्म पसन्द नहीं करता । वह अपने पिता का चीखना हरिपद्म पसन्द नहीं करता । वह अपने पिता से संयम करके बातें करने को कहता है[1] ।

आज के युवकों को ऐसे माता-पिता चाहिए जो उनके स्वतंत्र जीवन में बाधा न डाले ।

'मादा कैक्टस' का अरविन्द अपने पिता को कोई महत्व नहीं देता । उसकी राय में उसका पिता "पिछड़े ख्यालों को रखनेवाला" है । "फ्यूडल टेम्परमेंटवाला" है । वह हर चीज़, हर मामला-मिसला सबको पुराने पैमाने से देखता है, नई चीज़ को नहीं समझ पाता । इसलिए अरविन्द के विचार में उसका पिता आधुनिक समाज में फिट इन नहीं होता[2] । वह अपने पिता से बातें करना भी पसन्द नहीं करता[3] ।

नैतिक पतन के शिकार और स्वेच्छाचारी पात्रों का चित्रण करते हुए आधुनिक नाटककारों ने समाज की पतनोन्मुख गति की ओर इशारा किया है । उनकी मान्यता है कि वर्तमान शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता के प्रभावस्वरूप ही युवा पीढ़ी नैतिक मूल्यों के प्रति अपनी आस्था खो देती है ।

<u>उच्च-नीचत्व का विरोध</u>—

आचार-विचार, वेष-भूषा, रहन-सहन आदि के आधार पर कुछ जातियाँ अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को निकृष्ट मानती है । यह विचित्र

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - दर्पण - पृ.16
2. वही माता कैक्टस - पृ.40
3. वही " - पृ.46

दृष्टि समाज केलिए एक अभिशाप ही है । इससे विभिन्न जनसमुदायों के बीच संघर्ष बढ़ने की संभावना है । श्रेष्ट साहित्यकार समाजिक विकृति का समर्थन नहीं करेंगे ।

हिन्दीनाटक में सामाजिक उच्च-नीचत्व के प्रति घोर विरोध की भावना वर्तमान है । इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय लेखक है उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्द दास, भगवती चरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, कालिदास कपूर, सैय्यद कासिम अलि आदि ।

उदयशंकर भट्ट के "नया समाज" में जमीन्दारों के बनावटी शान और आडंबर पूर्ण जीवन के खोखलेपन का उद्घाटन है । जमीन्दारी समाप्त होने पर जमीन्दार लोग जीविका चलाने केलिए काम करने को विवश हो गये हैं । प्रस्तुत नाटक का जमीन्दार मनोहरसिंह का बेटा चन्द्रवदन सिंह सरकार द्वारा प्रदत्त भूमि पर खेती करने का निश्चय करता है[1] । लेकिन मनोहर सिंह खेती अपने शान केलिए कलंक मानता है । उसकी राय में हल उठाना नीच काम है, हम हुकूमत करने केलिए पैदा हुए हैं । लेकिन उनका पुत्र अपने पिता के इस विचार का विरोध करता है और पिता को समझाते हुए कहता है - "यह ज़माना सब काम अपने हाथों से करने का है । कोई ऊँचा - नीचा नहीं है[2] ।

यहाँ उच्च-नीच भावना का विरोध है । सारे वर्ग लोगों केलिए सभी प्रकार के काम समान रूप से विहित माने गए हैं ।

"महात्मा गाँधी" (ले·सेठ गोविन्द दास) में भी समत्व भावना का समर्थन है । गाँधीजी की दृष्टि में सभी मानव समान हैं । देश काल का भेद मानवता को खंडित नहीं कर सकता । वे कहते हैं - "यह पृथ्वी परमेश्वर की है

1· उदयशंकर भट्ट - नया समाज - दूसरा सं·प्रथम अंक - तीसरा दृश्य-पृ·39
2· वही पृ·39

इस घर रहनेवाले सब मानव एक हैं, कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं। एक को दूसरे से बड़ा समझना भारी पाप है"[1]।

यहाँ सामाजिक विषमता के प्रति नाटककार का असंतोष इन पंक्तियों में व्यंजित हैं। मनुष्य की मौलिक एकता का सन्देश ही इस में दिया गया है।

भगवती चरण वर्मा अपनी कृति "बुझता दीपक" में प्रस्तुत भावना का प्रतिपादन करते हैं। इस का राधेश्याम शर्मा कांग्रेस कमेटी का सभापति है। उसका भानजा उदय बेकार युवक है। शर्मा जी अपने भानजे को कोई न कोई सरकारी नौकरी दिलवाने के प्रयत्न में है। लेकिन उदय इसका विरोध करता है। यह क्रान्तिकारी है। वर्तमान समाजिक व्यवस्था को नष्ट करना चाहता है जिस में उच्च-नीचत्व का भाव उपस्थित है[2]।

"निस्तार" [वृ॰वृन्दावनलाल वर्मा] की कादम्बिनी भी समत्व-संदेश वाहिका है। उच्च कुलोत्पन्न होने पर भी वह हरिजनोद्धार के लिए अपने जीवन को समर्पित करती है। वह यह नहीं मानती कि गाँवों की सफाई करने से उसकी जाति की श्रेष्ठता की हानि हो जाएगी[3]।

"अमर आन" [प्रेमी] में महाराणा अमर सिंह की पत्नी है महारानी राणी अजायबेद। वह वैभव में पली उँचे वर्ग की प्रतिनिधि है। लेकिन उसकी दासी गुलाब उस समाज का प्रतिनिधि है जो वैभवशालियों के टुकड़ों पर पलता है जिसपर समाज की कृपापूर्ण दृष्टि पड़ती है और मस्तक ऊँचा करके चलने का जिसे अधिकार नहीं है। गुलाब सामाजिक विषमता पर असंतुष्ट है। उसका विश्वास है कि स्वातंत्र्य समर जीतने के पहले इस सामाजिक विषमता के विरुद्ध क्रांति करना आवश्यक है[4]। हिन्दु समाज के उच्च नीचत्व का भाव ही

---

1. सेठ गोविन्द दास - महात्मा गांधी - दूसरा अंक - चौथा दृश्य-पृ॰38
2. भगवतीचरण वर्मा - मेरे नाटक प्रथम सं॰बुझता दीपक - तीसरा दृश्य-पृ॰79
3. वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - पहला अंक-तीसरा दृश्य - पृ॰77
4. हरिकृष्ण प्रेमी - अमर आन - प्रथम सं॰ तीसरा अंक - पृ॰77

यहाँ मुगलों को अपना आधिपत्य जमाने में सहायक रहा । इसलिए गुलाब इस सामाजिक अन्याय की समाप्ति चाहती है[1] ।

"उद्धार" में नाटककार "प्रेमी" उच्च नीचत्व की समाप्ति में ही देश का उद्धार संभव मानते हैं ।

मेवाड का महाराणा अजयसिंह अपने पुत्र के अयोग्य होने के कारण जननायक हमीर को अपना उत्तराधिकारी घोषित करता है । सेनापति इसका विरोध इस कारण से करता है कि हमीर नीच जातिवाला है । वह भी राजा को समझा देता है कि सिसोदिया राजवंश भगवान राम का उत्तराधिकारी है । वह अपने से भिन्न जाति के व्यक्ति को अपना प्रभु स्वीकार नहीं करेगा । पर महाराणा अजयसिंह की दृष्टि में ऊँच-नीच की भावना ही सामाजिक विनाश का हेतु है । इसलिए वे मंत्री को यह उत्तर देते हैं - "ऊँच-नीच की भावना मेवाड की ही नहीं, संपूर्ण भारत के सर्वनाश का कारण है । मैं इस भावना का अन्त चाहता हूँ"[2] ।

महाराणा की यह दृष्टि अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वह आधुनिक संदर्भ के अनुरूप है और राष्ट्र निर्माण के लिए अनिवार्य भी ।

अलाउद्दीन खिलजी के अन्तिम दिनों पर प्रकाश डालनेवाले "सांपों की सृष्टि" में भी इसी विषय का प्रासंगिक रूप से विवेचन है ।

गुजरात के राजा कर्णसिंह की पुत्री है राजकुमारी देवल । वह अपने तथा दासी के बीच हमेशा सीमाएँ रखने की बात कहती है । उसकी माँ कमलावती इसके विरुद्ध उपदेश देती है[3] ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - अमर आन - तृतीय अंक - पृ.77
2. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - चतुर्थ सं. पहला अंक - सातवाँ दृश्य - पृ.42-
3. हरिकृष्ण प्रेमी - सांपों की सृष्टि - तृतीय सं.पहला अंक-दूसरा दृश्य-पृ.

कालिदास कपूर के धर्म विजय में सामाजिक असमानता का विरोध करनेवाला पात्र है राजकुमार कौंडिन्य । उसकी दृष्टि में उच्च-नीचत्व के परिणाम स्वरूप ही दुनिया में धनिक और गरीब अस्तित्व में आते हैं।[1]

"निर्माण" [सैय्यद कासिम अली] नाटक ग्राम सुधार संबंधी कार्यक्रमों पर आधारित है । लेखक की स्थापना है कि उच्च-नीचत्व के परिहार के बिना ग्रामोद्धार असंभव है । कालेज के विद्यार्थी रामू और श्याम भारत सेवक समाज के सदस्य हैं । वे उसके निर्माण कार्यों में निरत हैं । ग्रामीणों के उत्कर्ष के विषय में वे चर्चा करते हैं । मेहतरों के उद्धार केलिए इस विचारधारा का प्रचार आवश्यक मानते हैं कि सभी जाति-धर्म के आदमी एक समान है और नीच ऊँच कोई नहीं रहा ।[2] प्रेम और एकता से अपने पाँव पर खड़े होकर सब आदर्श जीवन बितावें ।

उपर्युक्त नाटककार उच्च-नीचत्व को सामाजिक विकास में बाधक मानते मानव वर्ग की समता पर ही देश और जनता का कल्याण निहित है, यही उनका निष्कर्ष है ।

पीढ़ियों की दरार

पीढ़ियों का दरार आज का विश्वव्यापी प्रतिभास है । भारतीय समाज में भी यह तनाव का कारण बन चुकी है । तरुणों और बुजुर्गों की पीढ़ी एक दूसरे को समझने में असफल रहती है । इस कारण सामाजिक वातावरण तनावपूर्ण हो गया है । यह स्थिति संघर्ष पैदा करती है । इन पीढ़ियों की विचार धाराओं में सामंजस्य नहीं हो पाता । इस स्थिति का प्रतिफलन आधुनिक नाटकों में देखने को मिलता है ।

---

1. कालिदास कपूर - धर्म विजय - प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - पृ.30
2. सैय्यद कासिम अली - निर्माण - प्रथम सं. प्रथम अंक - पाँचवाँ दृश्य.

"नया समाज" (ले॰उदयशंकर भट्ट) नाटक स्वतंत्र भारत में जमीन्दारी के उन्मूलन की कथा कहता है । जमीन्दार मनोहरसिंह रूढ़ीवादी है । जमीन्दारी के समाप्त होने पर भी वह उसी धूमधाम और टीमटाम से रहना चाहता है । शानदार परिवार की लड़कियों का अकेले बाहर जाना वह अपमान समझता है । गुण्डे से मुठभेड़ होनेपर उसका पुत्र चन्द्र घायल होता है । उसको दवा खरीदने केलिए वह थी बहिन कामना नुस्खा लेकर अकेले बाहर जाती है। मनोहरसिंह इसका विरोध करता है[1] ।

मनोहर सिंह का चरित्र इस बात का सूचक है कि अब भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपदस्थ होने पर भी पुराने प्रभुत्व का स्वप्न देखा करते हैं ।

"अलग-अलग रास्ते में" (ले॰ अश्क) पुरानी और नई पीढ़ियों के परस्पर संघर्ष का चित्रण है । ताराचन्द पुराने विचारों के हिमायती है । वह स्त्री शिक्षा का विरोधी है । फिर भी अपनी पुत्री की शिक्षा की व्यवस्था करता है[2] ताराचन्द का पुत्र पूरन नई पीढी का प्रतिनिधि है । वह अपने पिता की दकियानूसी का कठोर विरोध करता है । उसकी बहन है रानी । दहेज की कमी के कारण उसे अपना ससुराल छोड़ना पड़ता है । ताराचन्द अपनी बेटी को ससुराल वापस जाने और पति की देव तुल्य पूजा करने का उपदेश देता है । लेकिन पूरन इसका विरोध करता है । वह कहता है - "पति मेरे निकट पत्नी का परमात्मा नहीं, उसका साथी है । और उस साथ को निबाहने की जिम्मेदारी पत्नी पर ही नहीं, पति पर भी है[3] ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - नया समाज - दूसरा अंक - पहला दृश्य - पृ॰44
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - अलग अलग रास्ते - पहला अंक - पृ॰27
3. वही - पृ॰38

विनोद रस्तोगी की रचना "नए हाथ" में भी पीढ़ियों का अलगाव चित्रित है। भूतपूर्व ताल्लुकेदार अजयप्रताप का दोस्त है राजा नरेन्द्र पाल। नरेन्द्रपाल का बेटा महेन्द्रपाल यूरोप से अभी लौट आया है। वह अजयप्रताप के घर में आता है। उसके स्वागत सत्कार करने केलिए अजयप्रताप अपनी जवान बेटी माला को नियुक्त करता है। इसका स्पष्टीकरण वह यों देता है। "कुँवर साहब जवान है। हम बूढ़ों के साथ उनका मन कैसे लगेगा? उनका मन लगाने का जिम्मा तेरे ऊपर है[1]। दोनों पीढ़ियों में अजयप्रताप यह अन्तर देखता है कि बूढ़े लोग लकीर के फकीर हर चीज़ को पुरानी आँखों से देखने के आदी हैं जब कि जवान लोगों में नया खून और नया जोश वर्तमान है।[2]

"वृन्दावनलाल वर्मा के "मंगल सूत्र" में एक रूढ़िग्रस्त व्यापारी रोहन का चित्रण है। उसकी पुत्री है अलका। पीताम्बर के पुत्र के साथ उसका विवाह तय करने केलिए रोहन उसके घर आता है। लेकिन विवाह की बात पक्की होने के पहले रोहन वहाँ से चाय पान करने को तैयार नहीं होता[3]।

पीढ़ियों का यह अन्तर नरेश मेहता के अनुसार दो महायुद्धों का और है[4]। पारस्परिक अवधारणा का अभाव इस संघर्ष का कारण है[5]। मेहता की "खंडित यात्राएं" में सुरेन बाबू का पुत्र महेन्द्र नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह अपने पिता के रूढ़िवादी निर्देश को स्वीकार करना नहीं चाहता। वह अपना मार्ग चाहता है और अपनी प्राप्ति[6]।

---

1. [illegible] - पृ.
   विनोद रस्तोगी - नए हाथ - दूसरा सं. प्रथम अंक - पृ.36
2. वही दूसरा अंक - पृ.41
3. वृन्दावनलाल वर्मा - मंगल सूत्र - चतुर्थ सं.प्रथम अंक - तीसरा दृश्य-पृ.8
4. नरेश मेहता - खंडित यात्राएं - प्रथम सं. प्रथम अंक - पृ.30
5. वही पृ.30
6. वही पृ.34

"जय जवान जय किसान" [श्याम लाल मधुप] में एक किसान परिवार की कहानी है । इसका किसान जगतू नवीन विचारों का समर्थक है । पर उसकी पत्नी बसन्ती पुराने विचारों की । जगतू अपने पुत्र के लिए पढ़ी-लिखी बहू को चाहता है । लेकिन बसन्ती अनपढ़ बहू को ही अपने पुत्र के लिए योग्य मानती है[1] ।

उपर्युक्त नाटकों में नए-पुराने विचारों, आदर्शों, रीति-रिवाजों में चलनेवाले आधुनिक समाज का रेखा चित्र प्रस्तुत है । पुरानी पीढ़ी पर युवा-पीढ़ी की विजय ही लक्षित दिखाई पड़ती है ।

<u>सामाजिक अन्धविश्वास</u>

आधुनिक भारत कई क्षेत्रों में प्रगति प्राप्त कर चुका है । विज्ञान की प्रगति और विकासात्मक कार्यक्रमों ने विकस्वर राष्ट्रों की श्रेणी में भारत का समुन्नत स्थान दिलाया है । फिर भी यह खेद और आश्चर्य का विषय है कि परम्परागत अन्धविश्वासों की पकड़ से यह देश अब भी विमुक्त नहीं है । ज्योतिष भूत-प्रेत, झाड़-फूंक आदि पर लोग अब भी विश्वास करते हैं । इस विषय का समावेश नाट्य साहित्य में हुआ है ।

जगदीश चन्द्र माथुर का "कोणार्क" इसका उदाहरण है । ज्योतिष पर जनता के विश्वास की सूचना इसमें दी गई है । कोणार्क मन्दिर का निर्माता विशु, मुख्य पाषाण को लेकर राजीव और शिल्पी मुकुन्द के बीच देवालय के संबन्ध में चर्चा चल रही है । राजनगरी के ज्योतिषी भानुदत्त की भविष्यवाणी को दोहराता है मुकुन्द । "कोणार्क देवालय ज्योंही पूरा होगा, त्योंही इसके पत्थरों में पंख लग जाएंगे और सारा मंदिर आकाश में उड़ जाएगा,[2] यही

---

1. श्याम लाल मधुप - जयजवान जय किसान - प्रथम सं. चौथा दृश्य - पृ. 25
2. जगदीश चन्द्र माथुर - कोणार्क - पंचम सं. प्रथम अंक - पृ. 19

भविष्यवाणी थी । शिशु भी ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर विश्वास प्रकट करता है[1] ।

लक्ष्मी नारायण लाल ने जन्मपत्री पर लोगों के विश्वास का प्रतिपादन "दर्पण" नाटक में किया है । इसकी नायिका दर्पण की जन्मपत्री में यह बताया गया है कि यह लड़की घर-परिवार में रखने योग्य नहीं । इससे पूरे परिवार का अमंगल होगा । अतः उसे बौद्धमठ में दे दिया जाय[2] । दर्पण के माँ-बाप इन बातों पर विश्वास करके पाँच वर्ष की अवस्था में ही दर्पण को बौद्ध मठ में दान कर देते हैं ।

ज्योतिष पर समाज का पूरा विश्वास दिखानेवाला दूसरा नाटक है, "तीन आँखोंवाली मछली [ले॰लक्ष्मीनारायणलाल] श्यामबिहारीदास वकील है । ज्योतिष पर उसका बड़ा विश्वास है । ज्योतिषी ने उसके बचपन में बताया था कि उसकी पत्नी की मृत्यु ठीक बयालीस साल की अवस्था में अनावृष्टि के समय होगी । पास में केवल श्यामबिहारी ही रहेगा[3] ।

ज्योतिषी की भविष्यवाणी सच निकलती है[4] । परितोष गार्गी के "छलावा" नाटक में भूतप्रेतादि पर जनता के विश्वास का समर्थन है । छलावा को प्रेत के रूप में दिखाया गया है जो अरूपी है । वह तरह तरह के वेष बदलता है देखते ही देखते, बाड़ फाँद कर जाता है और पुच्छल तारे की तरह चलते-चलते अंत में हवा में लीन हो जाता है[4] ।

"उजाला" [ले॰कृष्णबहादुर चन्द्र] में झाड़फूंक पर जनता का विश्वास प्रदर्शित है । पंडित शिवानन्द झाड़ फूंक में दक्ष है । मंत्र-शक्ति से वह सर्पविष उतारता है[5] ।

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - दर्पण - दूसरा सं॰पहला अंक
2. वही तीन आँखोंवाली मछली - प्रथम सं॰पहला अंक -पृ॰24
3. वही वही -पृ॰24
4. परितोष गार्गी - छलावा - प्रथम सं॰ तृतीय अंक - पृ॰ 86
5. कृष्ण बहादुर चन्द्र - उजाला - तृतीय अंक - पृ॰55

"सगुन" [ले॰ वृन्दावनलाल वर्मा] नाटक का कुबेर दास ज्योतिष पर अटल विश्वास रखता है । ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर यकीन करते हुए वह कुछ कम्पनियाँ खरीदता है[1] । व्यक्ति के छींकने का मतलब है कि कोई संबंधी उसकी याद करता है[2] । दायें हाथ का फड़कना,[3] भरे हुए घड़े का दर्शन[4] यात्रा निकलते समय छिपकली का ऊपर से नीचे गिरकर भाग जाना[5] आदि बातें इसमें शुभ सगुन मानी गयी हैं । इन सब बातों पर जन समाज का बद्धमूल विश्वास है ।

रेवती सरन शर्मा की "चिराग की लौ" भी ज्योतिष पर जनता का अटल विश्वास दिखाती है । मारवाड़ी सेठ भोगीलाल को इन्कमटैक्स की नोटीस आती है । इन्कम टैक्स से बचने केलिए सेठ इन्कम टैक्स इन्स्पेक्टर किशोर के पास आता है । सेठ का विश्वास है कि समय के बुरे होने के कारण ही उसपर यह आपत्ति आ पड़ी है । भोगीलाल इंस्पेक्टर का कथन है "ये ग्रह के फेर हैं । पण्डितजी कहे हैं कि भोगीलाल तुम्हार मंगल की दिशा चढ़ी है । रवि के घर में शनि घुस आया और चन्द्रमा के घर में राहु आ बैठा है । केतु बुध से रूठ गया है और सोम बृहस्पत से लड़ गया है[6] ।

ग्रहों की गति-स्थिति पर मानव भाग्य निर्भर है, यह विश्वास उतना पुराना है जितना मानव । भारतीय सभ्यता में संभवत: यह विश्वास अविच्छिन्न है वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में भी, ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करके जीवन बितानेवालों की कमी नहीं है । सामाजिक अन्धविश्वासों पर प्रकाश डालते हुए उनके निराकरण का प्रयत्न ही इन लेखकों ने किया है ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - सगुन - चतुर्थ सं·दूसरा दृश्य - पृ·16
2· वही - पृ·16
3· वही - पृ· 23
4· वही - पृ· 24
5· वही छठवाँ दृश्य - पृ· 36
6· रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - प्रथम सं·दूसरा दृश्य - पृ·19

पारिवारिक संबंधों में विघटन

पारिवारिक संबंधों को पवित्र मानने की हिन्दू परम्परा बहुत प्राचीन है । लेकिन काल-परिवर्तन के अनुसार पारिवारिक संबंधों में भी शिथिलता दिखाई पड़ने लगी । औद्योगिक विकास इसके कारणों में से एक है । गाँव के लोग नौकरी की तलाश में शहर की ओर जाने लगे । वहाँ अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग परिवार बनाने लगे । इस स्थिति ने संयुक्त परिवार की जड़ें हिला दीं । संयुक्त - परिवार प्रथा आज टूटी हुई प्रतीत होती है । आधुनिक परिस्थिति केलिए अनुपयुक्त होने के कारण हमारे साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में इस व्यवस्था के कुपरिणामों की ओर संकेत करके उसकी समाप्ति का समर्थन किया है । आज का परिवार एक स्वतंत्र इकाई है । सभी सदस्यों की सद्भावना पर ही उसकी भलाई निहित है । यही कारण है कि पारिवारिक समस्याओं को प्रमुखता देनेवाले नाटक भी अनेक लिखे जा रहे हैं ।

इस दिशा में उल्लेखनीय कृति है, नरेश मेहता की "खंडित यात्राएँ" । सम्मिलित-परिवार प्रथा के संबंध में नाटक के पात्र शशांक का मत है कि व्यक्ति अब परिवार की बड़ी संज्ञा में न सोचकर पति-पत्नी की इकाई में सोचता है । कोठियाँ नहीं, बल्कि दो कमरेवाले फ्लेट्स हो गए हैं ।[1]

इससे व्यक्त है कि आधुनिक समाज में संयुक्त-परिवार का कोई स्थान नहीं है । पति-पत्नी और उनके बच्चे ही परिवार की इकाई बन गये हैं । जीविका चलाने केलिए पति-पत्नी दोनों को नौकरी करनी पड़ती है । अनेक कमरोंवाले घर के स्थान पर आज उनको दो कमरोंवाले फ्लेटों में ही जीवित रहना पड़ता है । यह सब औद्योगिकरण का अनिवार्य परिणाम है ।

---

1. नरेश मेहता - खंडित यात्राएँ - प्रथम अंक - पृ.30

कृष्ण किशोर श्रीवास्तव अपनी रचना "नींव की दरारें" में यह स्थापित करते हैं कि आधुनिक जीवन केलिए सम्मिलित परिवार अनुपयुक्त है[1]। "नींव की दरारें" नाटक का शरत, अपनी माँ से परिवार के बँटवारे करा देने की बात कहता है[2]। वह संयुक्त परिवार की समाप्ति को समय की आवश्यकता मानता है[3]।

"अलग अलग रास्ते" [अश्क] में सम्मिलित परिवार का विरोध है। ताराचन्द की बेटी रानी की शादी त्रिलोक के साथ होती है जो एक संयुक्त परिवार का सदस्य है। ताराचन्द यह निश्चय कर लेता है कि जब त्रिलोक संयुक्त अपने संयुक्त परिवार से अलग रहे तब उसे मोटर और मकान दहेज के रूप में दे देगा। त्रिलोक भी संयुक्त परिवार में जीना पसंद नहीं करता। वह जानता है कि ज्वाइंट फामिली के दुर्गम दुर्ग में व्यक्ति का जीवन बिलकुल अस्वतंत्र है[4]। उसका दूषित वातावरण स्वस्थ व्यक्ति को भी पागल बना देता है अतः हस्सास और भावुक व्यक्ति को वहाँ चार दिन रहना भी मुश्किल है[5]।

आधुनिक व्यक्ति कुंठा और विघटन का शिकार बनता जा रहा है। दाम्पत्य जीवन में शिथिलता के बीज का वपन होता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। दाम्पत्य भी एक प्रकार से बन्धन है और व्यक्ति की स्वच्छन्दता में बाधक। इस स्थिति का प्रतिफलन नाटक साहित्य में दृष्टव्य है।

रामकुमार वर्मा का "नाना फडनवीस" प्रमुख रूप से अठारहवीं शताब्दी के दक्षिण भारत की राजनीति पर आधारित है। पर उसका संबंध वर्तमान सामाजिक जीवन से भी है।

---

1. कृष्ण किशोर श्रीवास्तव - नींव की दरारें - पहला अंक - पृ.35
2. वही - पृ.33
3. वही - पृ.34
4. उपेन्द्रनाथ अश्क - अलग अलग रास्ते - प्रथम सं.दूसरा अंक- पृ.73
5. अश्क - अलग अलग रास्ते - दूसरा अंक - पृ.73

पेशवा नारायण राव का मत है कि विवाह के पश्चात् पति-पत्नि दोनों दो बने रहें। इस विचार को वह अपने आय-व्यय लेखक नाना फड़नवीस के सामने प्रस्तुत करता है। पेशवा की पत्नी गंगा बाई इस मत का विरोध करती है। उसकी राय में विवाह जीवन की इकाई है। शरीर अलग अलग होने पर भी पति पत्नी का मन एक ही होना चाहिए।

पति-पत्नी का पारस्परिक कलह शील के "तीन दिन तीन घर" में[1] स्थान पाता है। डाक्टर पारस और उसकी पत्नी के बीच सदा कलह होता रहता है। डाक्टर का विश्वास है कि उसकी पत्नी शहर में पली है, इसलिए कलह पर तुली है। देहाती लड़की कलह नहीं करती।

पारस की पत्नी का सारा समय अप्वाइन्टमेंट में व्यतीत होता है। उसको अपने पति या बच्चे की ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं मिलती। वह आधुनिक फेशनबुल लेडियों की प्रतिनिधि है जो अपने ओठों पर लिपस्टिक लगाए हाथ में वेनिटी बाग लटकाएं सोसाइटी मीट करने जाती है।

"तोता मैना" में लक्ष्मी नारायण लाल इस बात का उद्घोष करते हैं कि [redacted] आपसी विश्वास ही सुखमय दाम्पत्य जीवन की आधार-शिला है।

राजा ओध्वज की रानी के प्रति मंत्री आकर्षित होता है। उसके साथ राजमहल छोड़ने की प्रार्थना ठुकरानेवाली रानी को क्रुद्ध मंत्री मारता है। सत्कर्म [राजा के ईश्वर] की आज्ञा के अनुसार राजा अपनी आयु का आधा हिस्सा देकर रानी को जिलाता है। लेकिन पुनर्जीवित रानी अपने पति का विरोध करने लगती है। फलस्वरूप दोनों में छिड़ जाता है।

---

1. शील - तीन दिन तीन घर - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ.44

राजा की बातों पर रानी विश्वास नहीं करती । लेकिन अपने इस विचार पर दृढ रहते हैं कि हमारा यह जीवन एक रथ है जिसमें स्त्री और पुरुष उसके दो पहिए हैं और उसकी धुरी हमारा पारस्परिक विश्वास है[1] ।

पारस्परिक विश्वास के अभाव में दाम्पत्य जीवन टूट जाता है । इसलिए विश्वास और प्रेम का पुन: स्थापन आवश्यक है । रचनाकार इस बात का समर्थन करते हैं ।

"अश्क" का "अलग-अलग रास्ते" इस दिशा में एक सफल प्रयास है । लेखक की स्थापना है कि पति-पत्नी का परस्पर विश्वास जीवन की शान्ति और समृद्धि केलिए परम आवश्यक है[2] ।

अत्यंत व्यस्त आधुनिक जीवन में पारिवारिक संबंधों की पवित्रता पर पर्याप्त ध्यान नहीं पड़ता । जीवन की गति इतनी द्रुत और संकीर्ण हो गई है कि व्यक्ति तथा समाज दोनों उसके साथ ताल-मेल रखने में अपने को असमर्थ पाते हैं । पुराने पारिवारिक आदर्शों का परिपालन असाध्य हो गया है आधुनिक नाट्यकृतियाँ इस अवस्था पर प्रकाश डालती हैं ।

मद्य निषेध

मदिरापान की प्रवृत्ति आधुनिक समाज में निरंतर बढ रही है । मद्य-निषेध स्वतंत्रता-संघर्ष का प्रमुख कार्यक्रम था । गांधी जी ने मद्यपान के दुष्परिणाम के प्रति जनता को जागरूक रखने का निरन्तर प्रयत्न किया । कांग्रेस ने भी उसका समर्थन किया था । पर यह खेद की बात है कि मदिरापान की प्रवृत्ति बढती ही रह जाती है । नाटककारों ने गौरवबोध के साथ इस समस्या को उठा लिया है ।

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - तोता मैना - प्रथम सं॰ तीसरा भाग - पृ॰67
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - - अलग अलग रास्ते - पहला अंक - पृ॰38

हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, कृष्ण बहादुर चन्द्रा, जगनाथ मलिन्द, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि । इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं ।

हरिकृष्ण प्रेमी का महाराजा अमरसिंह [नाटक आन का नाम] शराब पीने का शौकीन है । वह अपनी रानी को मदिरा ढालने का आदेश देता है । रानी सुराही में से मदिरा प्याले में ढालकर अमरसिंह कहता है कि एक घूंट पीते ही दिल के दरवाज़े खुलने लगते हैं । लेकिन रानी इसका विरोध करती है और कहती है कि मदिरापान से दिमाग के दरवाज़े बन्द होने लगते हैं[1] ।

हरिकृष्ण प्रेमी मद्यपान को मानव की दुर्बलता मानते हैं । मद्य के प्रभाव के कारण महान पुरुष भी जीवन में असफल होते हैं[1] ।

प्रेमी के "ममता" नाटक में भी मदिरा-विरोध दर्शाते है । वकील रजनीकान्त पत्नी-वियोग की व्यथा भूलने केलिए मदिरा का आश्रय लेता है । उसकी पूर्व प्रेमिका कला उसका विरोध विरोध करती है और समझाती है कि मनुष्य मदिरापान से दुःखों को नहीं, अपने आपको भूल बैठता है[2] ।

दुःखों को भुलाने में मदिरा कभी सहायक नहीं होती । वह मनुष्य को जानवर बनाती है । अतः उसका परित्याग परम आवश्यक है ।

"झाँसी की रानी" में वृन्दावनलाल वर्मा[मद्य निषेध का आह्वान देते हैं ।

अँग्रेज़ों से युद्ध करने का निर्णय लेने केलिए रानी लक्ष्मीबाई अपने सरदारों के पास आती है । वह देखती है कि सारे सरदार भाग के नशे में हैं । वह सरदारों से अनुरोध करती है कि वे भांग पीना छोड़ दें[3] ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - अमर आन - प्रवेश - पृ० ८
2. हरिकृष्ण प्रेमी - ममता - दूसरा अंक चौथा दृश्य - पृ०
3. वृन्दावनलाल वर्मा - झाँसी की रानी - पाँचवाँ अंक - पहला दृश्य

रानी जानती है कि नशे में आने पर सिपाही अन्धाधुन्ध हो जाते हैं, उनके बिगड जाने से क्रम से अंड - बंड हो जाने से सारी योजना नष्ट हो जाती है[1]।

कृष्ण बहादुर चन्द्रा के "उजाला" में हरिजनोद्धार व ग्रामोद्धार का चित्रण है। प्रासंगिक रूप से मदिरापान के दुष्प्रभाव की चर्चा भी है।

रामू का बेटा बदलू कुसंगति से आवारा और मद्यपायी बनता है। इस पर उसका पिता दुःखी है। पडोसिन पुतली बदलू को मदिरा पीने से रोकती है। वह ताडी को बहुत बुरी चीज़ मानती है[2]।

जगन्नाथ मलिन्द कृत "बलिदान" चरस और शराब से अपने को नष्ट करने-वाले एक युवक की कथा है। मोतीलाल, शराब का गुलाम है। उसकी पत्नी है लेखा। पियक्कड पति के उत्पीडनों के कारण वह आत्महत्या कर लेती है।

मदिरा के नशे में पीनेवाला स्वयं नष्ट होता है, उसका परिवार भी नष्ट होता है। निरीह मित्र या संबन्धी भी विनाश का पात्र बन जाता है।

उपेन्द्र नाथ अश्क की "अंजो दीदी" का इन्द्र नारायण पहले कभी कभी पीता था। पर उसकी आदत बढती रही और वह पूरा पियक्कड बन जाता है उसकी पत्नी बीमार पड जाती है। बचने की आशा न रहने के कारण वह विष पीकर आत्महत्या करती है। इन्द्र नारायण यह आघात नहीं सह सकता। और वह एक पूरा मद्यपायी बन जाता है। उसका बाकी जीवन नरक तुल्य बन जाता है[3]।

"पैतरे" में भी अश्क मदिरापान का विरोध करते हैं। इसमें बार का एक दृश्य दिखाया जाता है। सतीश को छोडकर शेष सब लोग पियक्कड हैं

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी - पांचवां अंक-पहला दृश्य-पृ.111
2. कृष्ण बहादुर चन्द्रा- उजाला - दूसरा अंक - पृ.35
3. उपेन्द्रनाथ अश्क - अंजो दीदी - दूसरा सं.दूसरा अंक - पृ.115

रवीन्द्र, सतीश को मदिरापान केलिए प्रेरित करता है । पर सतीश अपने आदर्शों में अटल रहता है । वह सिर्फ नींबू का रस ही पी लेता है[1] ।

इन रचनाओं से यह सुस्पष्ट होता है कि आधुनिक समाज पर मदिरा का ज्वर सवार है और उससे छुटकारा पाना मुश्किल है । इस विभत्सी से मुंह मोड़ना सच्चा कलाकार केलिए संभव नहीं है । वह समाज का दृष्टा है और नियामक भी । समष्टि की भलाई ही सच्ची कला का लक्ष्य है । मदिरामग्न जनता का बौद्धिक विकास रुक जाता है । उसका नैतिक आधार टूट जाता है । इन विपत्तियों से उसकी रक्षा करने की चेष्टा हमारे रचनाकारों ने की है ।

कुंठा और निराशा

यह एक अप्रिय सत्य है कि स्वतंत्रता की उपलब्धि ने हमारा जनजीवन को अभीप्सित मात्रा में उत्फुल्ल नहीं किया । श्रमिकों और किसानों का जीवन अब भी संकटग्रस्त है । अभिमानी व्यक्ति ही स्वातंत्र्य का रस चखने का अधिकारी हुआ । गरीब का स्वप्न विफल बन गया है । इस कारण विचारशील लोगों के मन में अवसाद और कुंठा भर गई है । उक्त मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति नाट्य कृतियों में मिलती है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क के "भंवर" की प्रतिभा को अपने जीवन में केवल सूनापन ही दिखाई पड़ता है । बेसहारा जीवन के संबंध में वह कहती है - "ओह, ओह । कितना शून्य है यह जीवन । कहीं भी तो कोई ऐसी चीज़ नहीं जो ठोस हो, जिसका सहारा लिया जा सके[2] ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - पैंतरे - दूसरा अंक - पृ.87
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - भंवर - - पृ.53

लक्ष्मी नारायण लाल के "अन्धा कुआँ" की सूका, जीवन नैराश्य के भंवर में पड़कर घूम रही है । उसने जीवन में केवल कष्ट ही भोगा है । उसका व्यक्तित्व खंडित हो गया है । अपना वैवाहिक जीवन उसे अंधा कुआँ जान पड़ता है । अपनी दुःख गाथा वह यों सुनाती है - "अंधा कुआँ यही है जिसके संग में ब्याही गई हूँ - जिसमें एक बार मैं गिरी और ऐसी गिरी कि फिर न उबरी[1] । सूका के इच्छानुसार उसकी मृत्यु उसके पति के हाथों होती है । जब इन्दर, भगौती पर गन्डासे से प्रहार करता है तो सूका उस प्रहार को अपने ऊपर ले लेती है और अन्तिम सांस लेती है[2] ।

मोहन राकेश के "लहरों के राजहंस" में भी प्रायः यही स्थिति है । आखेट के लिए जानेवाले नन्द की पकड़ से मृग भाग जाता है । बिना आखेट करके वापस लौटनेवाला नन्द, मार्ग में उसी मृग को मरा हुआ देखता है । नन्द मानव जीवन की भी यही स्थिति स्वीकार करते हैं[3] ।

मृत्यु पर्यन्त नैराश्य में भटकनेवाले आधुनिक मानव का प्रतीक है मृग ।

खंडित व्यक्तित्व की समस्या राकेश के "आषाढ का एक दिन" में भी उठाई जाती है ।

काश्मीर के शासक के रूप में सम्मान मिलने पर भी कालिदास स्वस्थ नहीं हो पाता । एक ओर उसकी प्रतिभा के प्रसार में अवरोध है और दूसरी ओर मान-प्रतिष्ठा की सारहीनता के कारण उत्पन्न अवसाद । अपने विघटन का कारण वह यह बता रहा है कि जिस क्षण की मुझे प्रतीक्षा थी वह क्षण कभी नहीं आया और मैं धीरे-धीरे खंडित होता गया[4] ।

---

1. लक्ष्मीनारायण लाल - अंधा कुआँ - पृ॰129
2. वही
3. मोहन राकेश - लहरों के राजहंस - पृ॰66
4. मोहन राकेश - आषाढ का एक दिन- पृ॰101

कालिदास के द्वारा आधुनिक व्यक्ति की मानसिक कुंठा का चित्रण ही राकेश ने किया है । अपनी प्रतीक्षाओं को सफल न होने देखकर वह सर्वथा टूट जाता है ।

निष्कर्ष

1. आधुनिक नाटक स्वतंत्र भारत के सांस्कृतिक - सामाजिक जीवन का सच्चा लेखा - जोखा प्रस्तुत करता है ।

2. इनमें समाज की जटिल समस्याओं का विश्लेषण और उनके परिहारों की ओर संकेत भी है । ऐसे नाटकों का सामाजिक महत्त्व सुनिश्चित है

3. आधुनिक नाटकों में नारी के प्रति विशेष सहानुभूति लक्षित होती है । जागरण शक्ति के रूप में नारी की स्वीकृति मुक्तकंठ से की गई है ।

4. नाटकों के माध्यम से आधुनिक समाज की रूप रेखा को परिवर्तित करने की चेष्टा लेखकों ने की है । अधिकांश पात्र सामाजिक आन्दोलन के कार्यकर्ता के रूप में महत्त्व रखते हैं ।

5. लेखक देश की सामाजिक परिस्थितियों को अंकित करने में अवश्य सफल हुए हैं । उनकी दृष्टि सूक्ष्म और वास्तोन्मुखी है । सामाजिक जीवन की बारीकियों को रेखांकित करने में उनकी सफलता निर्विवाद है पर समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में वे सफल हुए हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

6. परिस्थिति का स्पष्टीकरण इस युग के नाटककारों की निजी उपलब्धि है। जनता का ध्यान इस तरफ आकर्षित भी हुआ है। पर एक सार्वजनिक आन्दोलन के रूप में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को स्थापित करने में उनका कार्य कहाँ तक सफल रहा, इसका निर्णय भविष्य ही कर सकेगा।

अध्याय - ९

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में आर्थिक परिवेश

1948 - 1965

नवम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में आर्थिक परिवेश - 1948 - 1965

सामाजिक जीवन का अनिवार्य तत्व है, धन । राजनीतिक संगठन, संविधान - निर्माण और जीवन स्तर के निर्धारण में अर्थ का अपना योगदान है[1] । इसलिए सामाजिकता के निरूपण प्रसंग में आर्थिक व्यवस्था पर भी दृष्टि डालना आवश्यक प्रतीत होता है ।

भारत का आर्थिक ढांचा

भारत कृषि - प्रधान देश है[2] । उसके आर्थिक ढांचे का मूल आधार ही किसान वर्ग है । स्वतंत्र भारत की आर्थिक व्यवस्था में खेती और किसान को प्रमुखता देते हुए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का आविष्कार किया[3] ।

---

1. डॉ॰ सीता राम झा "श्याम" - भारतीय समाज का स्वरूप-प्रथम सं॰पृ॰10
2. India - A reference Annual 1976 - 1976 p.178
3. The total expenditure on Agricultural programmes in the Five Year Plans.

First Five Year Plan		1,960 crores (M.L.Thingan The economics development and planning p.543)
Second	"	67,500 millions (Govt.of India planning commission - The second five year plan (1956 - p.82)
Third	"	104,000 millions (projected) planning commission - The thrid five year plan Delhi 19(p.69.
Fourth	"	2434.1 Crores
Fifth	"	4388 Crores (Tentative out lay India - A reference Annaul 1976 - p.181

इन योजनाओं ने हमारे सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को गतिशील बनाया। इनके द्वारा कृषि के विकास के साथ साथ कृषकों के जीवन-सुधार की ओर भी सरकार ने ध्यान दिया। कृषि के अतिरिक्त आर्थिक जीवन के अन्य क्षेत्र भी पंचवर्षीय योजनाओं से लाभान्वित हुए।

स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद भी देश का आर्थिक ढांचा शिथिल ही रहा।[1] गरीबी बढ़ती रही और जनता का शोषण जोरों पर चलता रहा। शिक्षितों में बेकारी बढ़ती रही। वे नौकरी की खोज में भटकते रहे। जमीन्दारी प्रथा पूर्णतः समाप्त कर दी गई।[2] फिर भी पूंजीपतियों का शोषण जारी रहा। चोरबाजारी जोरों पर होती रही और व्यापारी वर्ग अनुचित लाभ उठाते रहे। आवश्यक वस्तुएं इतनी महंगी बन गईं कि साधारण जनता का जीवन निर्वाह ही कठिन हो गया। व्यावसायिक वृद्धि केलिए अनेकों कारखाने स्थापित हुए। कुटीर-उद्योग प्रोत्साहित किया गया।

देश के आर्थिक कार्यक्रम ने हिन्दी नाट्य साहित्य को जैसे अनुप्राणित किया उसका विश्लेषण यहां किया जाएगा।

निर्धनता

राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाने पर भी देश आर्थिक दशा में परतंत्र ही रहा। यद्यपि भारत ने अन्य क्षेत्रों में दूसरे राष्ट्रों की तरह विकास प्राप्त किया है तथापि आर्थिक दृष्टि से वह अन्यों का मुंहताज है। कराल गरीबी समाज को अब भी ग्रसती रहती है। इसके निवारण का प्रयत्न भी जारी है। यह स्वाभाविक है कि हिन्दी नाटककारों ने देश की इस दीन दशा की ओर ध्यान दिया। डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल, सेठ गोविन्द दास, जगदीश चन्द्र माथुर, वृंदावनलाल वर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि

---

1. K.M. Panicker - A Survey of Indian History p.243
2. शील-विज्ञान - प्रथम सं॰ प्रथम अंक - पृ॰16

देश की इस विपन्नावस्था से खूब प्रभावित लक्षित होते हैं । अब हम इस दृष्टि से आधुनिक नाटकों का अवलोकन करेंगे ।

लक्ष्मी नारायण लाल के "रक्तकमल" [1962] में प्रासंगिक रूप से गरीबी का सटीक चित्र खींचा गया है । रोटी के टुकड़े केलिए तरसनेवाली जनता के प्रति नाटक का प्रमुख पात्र कमल पूरी सहानुभूति रखता है । उसकी दृष्टि में हमारा पूरा समाज गरीबी में सोया हुआ है[1] । इसमें से बचने केलिए जनता की एकता और दृढ संकल्प अत्यंत आवश्यक है[2] ।

देश की निर्धनता के निवारण केलिए जनता का संगठित होना आधुनिक नाटककार आवश्यक समझते हैं ।

डॉ॰ लाल की "रात की रानी" का प्रमुख प्रतिपाद्य पति-पत्नी के चारित्रिक विभेद से उत्पन्न पारस्परिक विघटन है । इसमें मज़दूरों की हीन दशा का भी प्रासंगिक रूप से चित्रण होता है । इसका प्रमुख पात्र जयदेव प्रेस मालिक है । प्रेस के मज़दूर बोनस केलिए हड़ताल करते हैं । जयदेव की पत्नी है कुन्तल । उसका मन मज़दूरों की करुण दशा पर पिघल जाता है[3] । वह अपने पति से उन्हें बोनस देने की प्रार्थना करती है ।

भारतीय मज़दूर आर्थिक दृष्टि से अब भी कितने पिछड़े हैं इसकी ओर नाटककार संकेत करते हैं । आर्थिक सुस्थिति के बावजूद दंपतियों के पारस्परिक संबंध में तनाव पैदा हो सकता है, यह नाटक इसकी भी सूचना देती है ।

सेठ गोविन्द दास का "भूदान यज्ञ" किसानों की गरीबी पर प्रकाश डालता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जनता का सुख स्वप्न सफल नहीं हुआ

---

1. डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल - रक्तकमल - दूसरा सं॰ 1963 पहला अंक पहला दृश्य - पृ॰ 42
2. वही
3. डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल - रात रानी - पृ॰ 24

वह अब भी गरीबी में पिसती है । नाटककार के अनुसार देश की मुख्य समस्या गरीबी है ।[1]

इस नाटक में गोरखपुर ज़िले के एक गाँव की गरीबी का चित्रण है । वह बिलकुल हृदय ग्राहक है । वहाँ के गरीब, गोबर से चुने अनाज के दाने को धोकर - सुखाकर सुखा लेते हैं । उनकी रोटियाँ से भूख मिटाते हैं ।[2]

यह दरिद्रता केवल एक गाँव की ही नहीं, स्वतंत्र भारत के अनेक गाँवों की भी है ।

"कोणार्क" में जगदीश चन्द्र माथुर शिल्पियों और देहातियों की गरीबी का चित्रण करते हैं ।

कोणार्क के मन्दिर का निर्माण शुरू हुआ है । अनेक ग्रामीण शिल्पी इस काम केलिए शहर की ओर आ रहे हैं । उत्कल नरेश नरसिंहदेव से ग्रामीणों की विवशता की ओर संकेत करते हुए धर्मपद (कोणार्क मन्दिर के प्रमुख शिल्पी विशु का पुत्र) कहता है कि अनेक शिल्पी अपने अपने ग्रामों में स्त्री-बच्चों को थोड़ी सी ज़मीन और खेती के सहारे छोड़कर आये हैं । वही मुख जीवन स्रोत सूखा रहा है ।[3]

किसानों और मज़दूरों की विपन्नता भी इस नाटक में अभिव्यक्ति पाती है - "ग्रामों में रहनेवाले सैकड़ों - हज़ारों किसान, वन और अटवी के शबर और अगणित मज़दूर, जिनके ढोये हुए पाषाणों को हम शिल्पी रूप देते हैं । वे सभी आज त्राहि-त्राहि कर रहे हैं ।[4]

---

1. सेठ गोविन्द दास - सुदामा यज्ञ - दूसरा सं० उपक्रम - पृ०13
2. सेठ गोविन्द दास - सुदामा यज्ञ - - पृ०15
3. जगदीश चन्द्र माथुर- कोणार्क - पाँचवाँ सं० - दूसरा अंक - पृ०52
4. वही - पृ०53

"कोणार्क" में अनेक जीवन्त समस्याएं उठायी गयी हैं। मज़दूरों के जीवन की दयनीय स्थिति उनमें प्रमुख है। काले काले शिला खंडों को प्राणवान प्रतिमा के रूप में परिवर्तित करनेवाले सिद्ध हस्त शिल्पियों को दाना - पानी केलिए तरसना पड़ता है, यह स्थिति देश की अधिक ही नहीं सांस्कृतिक पतन की ओर भी इशारा करती है। जिस देश में उच्च कोटि के कलाकारों का आदर नहीं होता, जहाँ उनको आजीविका केलिए कष्ट सहना पड़ता है वह देश ज़रूर अधःपतन के गर्त में गिर जाएगा।

जगदीश चन्द्र माथुर जो स्वयं बड़े कलाकार हैं, इस तथ्य की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।

"केवट" में वृन्दावनलाल वर्मा अमीरों के अत्याचारों की कहानी सुनाते हैं। संपन्न परिवार की स्त्रियाँ गरीब केवा को अपने साथ चलना नहीं देती[1]। अपनी गरीबी के कारण उसको अपमान का शिकार बनना पड़ता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क की "अंधी गली" में दीनदयाल की गरीबी अंकित है। दीनदयाल को साठ रुपया मासिक वेतन मिलता है। उसके दो बच्चे हैं और परिवार के अन्य सदस्यों का भार भी उस पर है। वह जी तोड़कर काम करता है, फिर भी जीविका चला नहीं पाता[2]।

यह केवल दीनदयाल की ही कथा नहीं, बल्कि भारत के सभी प्राइवेट नौकरों की कथा है। वे तो काम करते हैं जी तोड़कर, पाते हैं कम। यह हमारे सामाजिक जीवन का एक दारुण प्रसंग है जिसपर सरकार, सामाजिक कार्यकर्ता, किसी का ध्यान नहीं जाता।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - केवट - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ.4
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - अंधी गली
3. "होरी" प्रेमचन्द कृत "गोदान" का नाट्य रूपान्तर है।

भारतीय कृषक, पीड़ा और उपेक्षा का प्रतीक है । खून पसीना करने पर भी उसे भर पेट खाने को नहीं मिलता । विष्णु प्रभाकर अपने "होरी"[1] (195 में उसी का चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

राय साहब को लगान देने का समय आता है तो उसे चुकाने में किसान होरी अपने को असमर्थ पाता है । तीन महाजनों का ब्याज भी वह पूरा नहीं कर सका । अनाज खलिहान में ही तुल गया । दुःखी होरी का विचार है कि गरीब किसानों का जन्म अपना रक्त बहाने और बड़ों का घर भरने के लिए ही होता है[2] ।

यह तो पीड़ित भारतीय कृषक का स्वर है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी वर्षों तक किसान की वही हालत रही जो पहले थी । नाटक में वही दृश्य प्रस्तुत हुआ है ।

हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या गरीबी है । इसलिए स्वाभाविक है कि हमारे नाटककारों ने अपनी रचनाओं में गरीबी को सर्वाधिक स्थान दे दिया आर्थिक असमानता पर अनेक नाटककारों ने क्षोभ प्रकट किया है । वे इस बात पर दुःखी हैं कि अधिकतर लोगों को जीवन की बुनियादी माँगें पूरी करने का भी उपाय प्राप्त नहीं है । धनी मानी व्यक्ति सुखमय जीवन बिताते हैं, भोग विलास में डूबे रहते हैं और गरीबों का जीवन अभाव और कष्टों से पिस रहा है इस दीन दशा की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने की है ।

बेकारी

गरीबी की जननी है बेकारी । हमारे श्रमिक वर्ग को साल भर काम नहीं मिलते । देश की 80 प्रतिशत जनता बेरोजगार है, पर असंख्य शिक्षित युवक नौकरी की खोज में फिरते हैं । स्वाभाविक है कि जागरूक कलाकारों ने यह समस्या उठा ली ।

---

1. "होरी" प्रेमचन्द कृत "गोदान" का नाट्य रूपान्तर है ।
2. विष्णु प्रभाकर - होरी - प्रथम संस्करण - पृ.22

शील का नाटक है, "हवा का रुख" (1961) इसका नायक अमोल बी.ए. पास है। फिर भी नौकरी केलिए वह दर-दर ठोकरें खाता है। उसे कोई नौकरी नहीं मिलती ।[1] बेकारों की दुर्गति का ब्योरा अमोल यों करता है - "दुकानदार के पास जाओ, कोई जगह नहीं। कम्पनियों में नो वेकन्सी, और काम दिलाउ दफ्तरों में सिफारिश, कुछ दरख्वास्तों के अम्बार, हज़ारों हाथों में डिग्रियों के उदास कागज़"[2]।

इस नाटक में कहा गया है कि भीख मांग कर जीना, बेकार रहने की अपेक्षा श्रेष्ठ है[3]।

आज के पढे लिखे बेकार युवक, राजनीति की ओर आकर्षित हो रहे हैं। अमोल, इसका उदाहरण है। उसकी बेकारी ने ही उसे धीरे-धीरे राजनीति में उतार दिया[4]।

"निस्तार" ( ) वृन्दावनलाल वर्मा बेकारी का परिहार भी ढूंढ्ते हैं। इसका उपेन्द्र हरिजनोद्धारक है। उसके मत में यह समस्या एक वर्ग या एक जाति की नहीं है। देश व्यापी है[5]। कुटीर उद्योग, व्यवसाय और कृषि भूमि के उचित वितरण से यह समस्या हल हो सकती है[6]। नाटककार का भी यही अभिमत है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के "प्रियदर्शी" में भी यह आदर्श स्वीकारा गया है। उसकी स्थापना है कि खेती की प्रगति से बेकारी दूर की जा सकती है[7]

---

1. शील - हवा का रुख - प्रथम संस्करण - प्रथम अंक - पृ.30
2. वही - पृ.35
3. वही दूसरा अंक - पृ.49
4. वही - पृ.51
5. वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - दूसरा अंक तीसरा दृश्य-पृ.58
6. वही
7. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी - प्रथम संस्करण - तृतीय अंक - पृ.88

भारत-सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को पर्याप्त प्रधानता देते हुए बेकारी दूर करने की चेष्टा की है। प्रस्तुत नाटक की विमला सरकारी विचार का समर्थक है। वह खेती करके जीवन बिताने का निश्चय करती है।

दयानाथ झा के "कर्म पथ" (1954) में उच्च शिक्षितों की बेकारी का प्रतिपादन है। उसका जयन्त कहता है कि अधिक पढ़ना - लिखना भी कभी-कभी हानिकर सिद्ध हो जाता है।[1]

नाटककार की दृष्टि में बेकारी का कारण है, मशीनों का व्यापक प्रचार।[2]

आजकल स्थिति इतनी भयानक हो गई है कि उच्च शिक्षित व्यक्ति को चपरासी की नौकरी मिलना भी मुश्किल है। राधिका रमण प्रसाद सिंह के "नज़र बदली बदल गए नज़ारे" के पुजारी का बड़ा बेटा मैट्रिक पास करके घर पर बैठा मक्खी मार रहा है, पिउन-प्यादे की जगह भी मिल नहीं पाती।[3]

"चन्द्रहार" (विष्णु प्रभाकर) का रमानाथ दिन भर नौकरी के लिए व्यर्थ ठोकरें खाता है।[4]

सन्तोष नारायण नौटियाल की व्यंग्य प्रधान रचना है, "चायपार्टियाँ" (1962)। इसका महेश एम॰ए॰ है, पर बेकार रहता है।[5] और एक बेकार है, सतीश। वह एम॰ए॰ तक फस्ट क्लास है। वह भी खाली हाथ बैठता है।

---

1. दयानाथ झा - कर्म पथ - प्रथम सं॰ पहला अंक - तीसरा दृश्य - पृ॰33
2. वही - पृ॰27
3. राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह - नज़र बदली बदल गए नज़ारे - दूसरा अंक तीसरा दृश्य - पृ॰49
4. विष्णु प्रभाकर - चन्द्रहार - पहला अंक - चौथा दृश्य - पृ॰19
5. सन्तोषनारायण नौटियाल - चाय पार्टियाँ - प्रथम सं॰1963, प्रथम अंक-पृ

इन नाटकों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि बेकारी की समस्या बढ़ती ही जा रही है। आज़ादी से जनता के जीवन में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। साधारण मज़दूर से लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त युवक तक रोज़गारी केलिए तरसते हैं। यह हालत किसी देश केलिए अभिमानजनक नहीं।

<u>दुर्भिक्ष</u>

स्वातंत्र्य - प्राप्ति से देश की आर्थिक दशा यथेष्ट सुधर गई हो, यह बात नहीं। दुर्भिक्ष और अकाल से अब भी जनता संत्रस्त है। नाटककारों की सूक्ष्म दृष्टि इस कटु सत्य पर पड़ी है।

वृन्दावनलाल वर्मा के "ललित विक्रम" में अकाल का चित्रण है। हज़ारों जानवरों का नाश हुआ। खेत सूख गये। जनता भूख से तड़प उठी। अकाल की भयानकता पर राजा रोमक दुःखी है। उसका डर है कि इस वर्ष भी अगर दुर्भिक्ष पड़ा तो ह्रासोन्मुखी गोवंश और भी क्षीण हो जाएगा। भंडार शून्य पड़ जाएगा। राज-परिवार भूखों मरेगा[1]।

राजा रोमक जनता की कष्ट स्थिति पर नहीं, अपितु जानवरों की कष्ट स्थिति पर व्यथित है। ऐसे शासकों के राज्य में अकाल का पड़ना अनिवार्य है। अकाल पीड़ित लोग अपना देश छोड़कर कहीं भाग जाते हैं। इसका चित्रण भी इस नाटक में मिलता है[2]। दुर्भिक्ष के समय गरीब जनता भूख से मरती है, पर अमीर आडंबरपूर्ण जीवन बिताते हैं[3]।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - तृतीय सं॰ पहला अंक - दूसरा दृ - पृ॰10
2. वही तीसरा अंक - छठवाँ दृश्य - पृ॰
3. वही पहला अंक - तीसरा दृश्य- पृ॰

हरिकृष्ण प्रेमी के "शतरंज के खिलाड़ी" [1955] में भी अकाल स्थान पाता है । जीत सिंह, संभावित दुर्भिक्ष से बचने केलिए दो वर्ष की खाद्य-सामग्री इकट्ठा करता है । रतन सिंह के पूछने पर वह कहता है - "दुर्भिक्ष तो यहाँ केलिए रोज़ की बात है । परिणाम स्वरूप कृषि नहीं होती एवं जनता अनाज केलिए त्राहि त्राहि करने लगती है"[1] ।

दुर्भिक्ष, भुखमरी, बेकारी आदि तो मानव जीवन के अभिशाप हैं और उनसे बचना सामाजिक अस्तित्व केलिए आवश्यक है । हमारे साहित्यकारों ने उन विपत्तियों का सजीव चित्र अंकित करते हुए पाठकों को जागृत तथा अध्यवसायी बनने का सन्देश दिया है । वे समाज के प्रति अपना दायित्व निभाने में सफल हुए हैं ।

महंगाई

मूल्य वृद्धि, अद्यतन जीवन की एक जटिल समस्या है । वह व्यक्ति तथा समाज के जीवन को अस्वस्थ बनाती है । एक ओर चोर बाज़ारी करके व्यापारी वर्ग भारी धन कमाता रहता है, दूसरी ओर साधारण जनता आवश्यक चीज़ें खरीदने में भी अपने को विवश पाती है । शील की रचना "तीन दिन तीन घर" में महंगाई की समस्या उठायी जाती है । बीते युग में चीज़ें बहुत सस्ती थीं । जीवन सुखपूर्ण था । नाटक की अम्मी उन दिनों की याद करती है - "हमारे बचपन में रुपया सेर घी और रुपये के सोलह सेर गेहूँ मिलते थे । वह दिन कितने अच्छे थे । लेकिन अब तो तबाही के दिन है"[2] ।

महंगाई के संबंध में "ललित विक्रम" में [वृन्दावनलाल वर्मा] कहा गया है कि सामग्री का मूल्य इतना बढ़ता गया है कि साधारण जनता तो क्या संपत्तिवाला भी क्रय नहीं कर सकता[3] ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - शतरंज के खिलाड़ी - 1955 पहला अंक पाँचवाँ दृश्य
2. शील - तीन दिन तीन घर - प्रथम सं.दूसरा अंक.पृ.93 [पृ.27
3. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम पहला अंक-छठवाँ दृश्य पृ.30

उक्त दोनों नाटकों की स्थापना यह है कि महँगाई के कारण जन-जीवन आज बहुत दुस्तर हो गया है। व्यापारियों के असंयम और काला बाज़ार के परिणामस्वरूप ही इतनी महँगाई हो गई है। अतः मुनाफाखोरी और चोर बाज़ारी को सदा केलिए समाप्त करना ही चाहिए।

जमाखोरी और चोरबाज़ारी

जमाखोरी और चोरबाज़ारी ऐसे रोग हैं जिन्होंने नागरिक जीवन को ग्रसित कर लिया है। इनसे आर्थिक विकास में अस्त व्यस्तता और अवरोध आ गया है। सरकार ने इन प्रवृत्तियों को रोकने का विफल प्रयत्न ही किया है। स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों ने इस कुप्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। नाट्य साहित्य, जन जीवन से अधिक संबद्ध है, अतः उसमें सामाजिक अत्याचारों के विरोध का तीव्रतर होना स्वाभाविक है।

"ललित विक्रम" में वृन्दावनलाल वर्मा ऐसे एक राजा का चित्रण करते हैं जो धन का संग्रह अबाध गति से करता चला जा रहा है। दिखाने केलिए नाम मात्र का अन्न पीड़ितों को बाँटता है[1]। नाटक का पात्र मेघ शिकायत करता है कि चोरबाज़ारी और जमाखोरी करनेवालों को उन्नत अधिकारियों की शरण है। वे निर्भय होकर अपना शोषण जारी रखते हैं[2]।

युद्ध और अकाल के समय व्यापारी लोग अनाजों को अपने गोदामों में छिपाये रखते हैं। इससे साधारण जनता को बहुत कष्ट सहना पड़ता है। प्रस्तुत नाटक इस बात का चित्रण करता है। राजा रोमक का अमात्य, युद्ध और अकाल के समय दीर्घबाहु जैसे महाशयों के अन्नागारों में संग्रहीत धान्य को जनता के बीच बाँट देने का प्रस्ताव रखता है[3]।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - पहला अंक, छठवाँ दृश्य - पृ.30
2. वही
3. वही - दूसरा अंक, चौथा दृश्य - पृ.49

व्यापारी वर्ग की शोषणपरता और दुराव - छिपाव के कारण साधारण जनता पीड़ित है । मुद्रास्फीति से धन का अवमूल्यन हो जाता है । लेखक सूचित करता है कि इन परिस्थितियों से समाज का उद्धार करना सरकार का मुख्य कर्तव्य होना चाहिए ।

भगवती चरण वर्मा का नाटक है, "बुझता दीपक" [1948] । इसका प्रमुख पात्र मिल मालिक शिव लाल चोर बाज़ारी करके लाखों रुपया कमाता है [1] । राधेश्याम, जो कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष है चोर बाज़ारी को घोर अपराध मानता है । शिवलाल के अन्याय की ओर संकेत करते हुए वह कहता है - "शिवलाल जी, इस प्रकार के कुछ लोगों का अनुमान है कि कपड़े पर से कंट्रोल हटने के बाद आपने अकेले काले बाज़ार से करीब दस लाख रुपया पैदा किया [2] ।

आधुनिकतम भारत में शिवलाल जैसे मिल मालिकों की कमी नहीं है । काले बाज़ार और तस्करी से धन-संचय करनेवालों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती रहती है । कलाकार सामाजिक कुरीतियों से मुँह नहीं मोड़ सकता । अत्याचारों का डटकर सामना करना उसका कर्तव्य है । "बुझता दीपक" जैसे नाटक इसका संकेत करते हैं ।

अपनी दूसरी रचना "रुपया तुम्हें खा गया" में भी भगवती चरण वर्मा यह समस्या उठाते हैं ।

सच्चिदानन्द एक दफ़्तर का नौकर है । वह दफ़्तर से दस हज़ार चुरा लेता है । उसी राशि से व्यापार शुरू करता है । धीरे धीरे वह तरक्की करता है और चोरबाज़ारी को अपना मुख्य व्यवसाय बना लेता है । इसकेलिए उसने जो मार्ग अपनाया इसका परिचय वह स्वयं यों देता है - "मैं ने दिन नहीं देखा, रात नहीं देखी, मैं ने धर्म नहीं जाना, ईमान नहीं जाना ।

---

1. भगवतीचरण वर्मा - मेरे नाटक - प्रथम सं. बुझता दीपक, दूसरा दृश्य-पृ.6
2. भगवतीचरण वर्मा - मेरे नाटक - रुपया तुम्हें खा गया, पहला अंक,दूसरा दृश्य पृ.117

मैं ने पाँच का माल दिया और पचास वसूल किए । मैं ने सोने के दाम में पीतल बेचा । मैं ने कम्पनियाँ बनायीं और फेल कीं । मैं ने समय और परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया । और मैं बढ़ता गया .... बढ़ता गया"[1] ।

व्यापारियों के क्रय-विक्रय की रीति का सच्चा परिचय इससे मिलता है । मनिकचन्द का पुत्र मदन भी ब्लेक मार्केटिंग करता है ।

कणाद् ऋषि भटनागर की रचना "ज़हर" [1965] में भी काला बाज़ार का विवेचन मिलता है । एक दूसरे पर कभी भी विश्वास न करना काले बाज़ार का पहला नियम बताया गया है[2] ।

आजकल के नेता भी चोरबाज़ारी और मुनाफाखोरी करने में संकोच नहीं करते । "ज़हर" का अजीत, श्याम चरण को अपने भविष्य के प्रति सतर्क रहने का उपदेश देता है - "अगर पब्लिक को पता चल गया कि तुम चोर-बाज़ारी और मुनाफाखोरी करते थे तो हमारी पार्टी बदनाम हो जाएगी और इस हालत में तुम पार्टी के लीडर की जगह पर एक दिन भी कायम नहीं रह सकोगे[3] ।

मुनाफाखोरी और चोरबाज़ारी करनेवालों को चिरंजीत 'तस्वीर उसकी' नाटक में देशद्रोही सिद्ध करते हैं । इसकी नायिका अंजना कहती है - "मैं तो मानती हूँ कि ऐसे असामाजिक कार्य करनेवाले स्वार्थी लोग देशद्रोही हैं । देश को जितना खतरा बाहर के शत्रुओं से है, उतना ही इस घर के शत्रुओं से भी"[4]

---

1. भगवतीचरण वर्मा - मेरे नाटक - रुपया तुम्हें खा गया, पहला अंक, दूसरा दृश्य
2. कणाद् ऋषि भटनागर-ज़हर, प्रथम सं. 196 - तीसरा अंक, पृ. 117
3. वही पृ. 85 / पृ. 77
4. चिरंजीत - तस्वीर उसकी - प्रथम सं. पहला अंक - पृ. 5-6

अंजना का पति मदनवर्मा सोने का तस्कर-व्यापार करनेवाला है। वह "रंगनाथ प्रकाशन गृह" का संचालन करता है। देश-रक्षा कोश में दान देकर वह अपने कुकर्मों पर पर्दा डालता है। अन्त में पुलिस उसे पकड़ लेती है। अंजना जो "रानी झांसी समाज" की अध्यक्षा है, अपने पति का घोर विरोध करती है[1]।

मुनाफाखोरी और चोरबाज़ारी जैसे घृणित आचरणों को समाप्त करने केलिए सरकार को कड़ा कदम उठाना चाहिए। यही नाटककार का सन्देश है[2]।

रेवती सरन शर्मा के "चिराग की लौ" में भी चोरबाज़ारी का उल्लेख है। चोरबाजारी के द्वारा व्यापारी वर्ग, जनता का कैसा शोषण कर रहा है, इसका प्रतिपादन नाटक का किशोर(ईमानदार इन्कमटैक्स अफसर)करता है -
"ये चोर, लुटेरे और खूनी है .... एक ज़रा भाव बढ़ाने से लोगों के लाखों सिक्के इनकी तिजोरियों में सिमटे चले जाते हैं"[3]।

इस नाटक का जयन्त कपड़े के अतिरिक्त स्टील का भी ब्लैक मार्केटिंग करता है। मिल केलिए स्टील का जो कोटा अलाट हुआ उसे ब्लैक में बेचकर वह पचास हज़ार रुपये कमा लेता है[4]।

उपर्युक्त नाटकों में भारत के आर्थिक जीवन की जटिलता बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित मिलती है। इनमें उन्हीं परिस्थितियों का वर्णन है जिनका हम प्रतिदिन सामना करते हैं। हमारे सामने चोरबाज़ारी होती है, जमाखोरी होती है और हम असहाय सब देखते रहते हैं। हमारी सामाजिक चेतना इतनी

---

1. चिरंजीत - तस्वीर उसकी - प्रथम सं. 1964, तीसरा अंक - पृ.63
2. वही - पृ.48-49
3. रेवती सरन शर्मा - चिराग की लौ - प्रथम सं. पहला अंक. दूसरा दृश्य, पृ.30
4. वही तीसरा अंक,पहला दृश्य, पृ.70

उद्बुद्ध नहीं कि हम इनके खिलाफ क्रान्ति करें । नाटककारों ने इन तथ्यों की तरफ बड़ी खूबी के साथ लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है । हम उनसे अभिभूत होते हैं, आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं । फिर भी सब सह लेते हैं । इस वैरूध्यात्मक स्थिति का मार्मिक प्रतिपादन आधुनिक नाटककारों ने किया है ।

आर्थिक असमानता

आर्थिक असमानता, सामन्ती तथा पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था की उपज है । भारत में आर्थिक असमानता भीषण रूप धारण कर चुकी है । शहरों और गांवों में यह असमानता और भी कराल हुई है । एक ओर टूटी-फूटी झोंपड़ियों में पिसती है गरीब जनता और दूसरी ओर ऊंची अट्टालिकाओं में विलासमय जीवन बिताते हैं धनिक वृंद । इस अमानवीय आर्थिक असमानता से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककार संत्रस्त है और उन्होंने इसका नग्न चित्रण अपनी रचनाओं में किया है ।

लक्ष्मी नारायण लाल का "रक्त कमल" इस दिशा में एक सफल प्रयास है । यह उक्ति अत्यंत हृदयस्पर्शी है "जिस देश के सिर्फ दो प्रतिशत आदमी धनी हो शेष सब गरीब हो जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहनेवाले है शेष नंगे और भूखे हो, जहां सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढ़े-लिखे हो, शेष गंवार, अन्ध विश्वासी और अचेतन हो - यह सब हमारे मानवत्व का कलंक नहीं है तो क्या है[1] ।

नायक कमल भारत की आर्थिक विषमता पर दुःखी है[2] । भयानक आर्थिक-असमानता निन्यानवे प्रतिशत गरीब और एक प्रतिशत अमीर को वह देश केलिए अपमानजनक मानता है[3] ।

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रक्त कमल - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ.38
2. वही दूसरा अंक - " - पृ.66
3. वही " " - पृ.66

नाटककार की मान्यता है कि यह स्थिति केवल देश केलिए ही नहीं, मनुष्यत्व केलिए भी अपमानजनक है ।

उदयशंकर भट्ट, "पार्वती" में इसकी चर्चा करते हैं । नायब तहसीलदार परमानन्द अपने बचपन का स्मरण कर रहा है । गरीब परिवार में उसका जन्म हुआ था । इसी कारण उसके साथ किसी ने संबंध नहीं रखा । लेकिन बाद में परमानन्द जब नायब तहसीलदार बनता है तब सब उसका आदर करने लगते हैं । गरीबी के कारण उसकी माँ को कुछ कष्ट सहना पड़ा था । "पहले तो वे लोग हमें अछूत समझते थे । तुम कुएं से पानी लाते समय एक बार ठोकर खाकर गिर पड़ी तो लोग आते जाते रहे, किसी ने उठाकर सहारा तक न दिया"[1] ।

अर्थप्रतिष्ठित समाज - व्यवस्था में मानवीयता का कैसे लोप होता है, यह घटना इसका निदर्शन है ।

मज़दूर अपने मालिक केलिए खून पसीना करता है । पर उसे उचित वेतन नहीं मिलता । उसकी मेहनत से लाभ उठाता है मालिक । इस अत्याचार को समाप्त करने की आवश्यकता पर हरिकृष्ण प्रेमी का सुजान सिंह बल देता है[2] । [नाटक - उद्धार] ।

आर्थिक वैषम्य, मानवीय संबंधों में विघटन का कारण बनता है । "प्रेमी" के "ममता" नाटक का रजनीकान्त, धन-वैभव संपन्न वकील है । वह कला नामक निर्धन लड़की से विवाह करना चाहता है । लेकिन कला इसे असंभव मानती है । उसके अनुसार कुटी में रहनेवाले महलों के स्वप्न नहीं देख सकते । देखने का साहस अगर करेंगी तो उनके हाथ में केवल पश्चाताप ही आता है[3] ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - पार्वती - 1958 - पहला अंक - पहला दृश्य-पृ.2
2. हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार - चतुर्थ सं. 1956 तीसरा अंक - पहला दृश्य - पृ.87
3. हरिकृष्ण प्रेमी - ममता - चतुर्थ सं.पहला अंक-पहला दृश्य-पृ.12-13

"प्रेमी" के अनुसार सब विषमताओं और विपत्तियों के मूल में आर्थिक विषमता वर्तमान है ।

आर्थिक वैषम्य के आधार पर वैवाहिक संबंध की कठिनाई कृष्ण बहादुर चन्द्रा ने भी दिखाई है, "सरहद" [1956] में । निस्सार सेन के लड़के का ब्याह सलिमा की बेटी नूरी के साथ नहीं संपन्न होता । कारण यह है, लड़का अमीर है जब कि लड़की गरीब[1] ।

"भूदान यज्ञ" में सेठ गोविन्द दास साम्यवादी आदर्शों का समर्थन करते हैं । कृष्ण दत्त साम्यवादी है । वह व्यक्तिगत संपत्ति का विरोध करता है । उसका कथन है - "मार्क्स ने जिस पूर्ण विकसित सामाजिक रचना की कल्पना की थी, उनमें व्यक्तिगत संपत्ति का कोई स्थान नहीं है"[2] ।

इसी नाटक में आचार्य विनोबा भावे भूदानयज्ञ द्वारा आर्थिक समानता लाने का प्रयत्न करते हैं । भारत की आर्थिक असमानता को दूर करने केलिए सर्वप्रथम ज़मीन की समस्या को सुलझाने का वे आह्वान करते हैं[3] ।

दयानाथ झा के "कर्मपथ" का मनोज भी साम्यवाद से प्रभावित है । उसकी दृष्टि में सामाजिक संपत्ति का सभी लोगों में समान रूप से बंटवारा होना चाहिए । सामाजिक संकलन के सिद्धान्त से समाज का प्रत्येक व्यक्ति धरती की सारी वस्तुओं पर समान अधिकार रखता है"[4] । आर्थिक समानता पर ही सामाजिक कल्याण निर्भर है ।

शील "तीन दिन तीन घर" में भारत की अर्थ नीति के दोषों का विवेचन करते हैं । इसके हीरालाल का कथन है - "यह सारा मायाजाल अर्थनीति

---

1. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - सरहद - 1958, प्रथम अंक - पृ.34
2. सेठ गोविन्ददास - भूदानयज्ञ - दूसरा सं.1961, तीसरा अंक,तीसरा दृश्य पृ.104
3. वही चौथा दृश्य-पृ.118
4. दयानाथ झा - कर्मपथ - प्रथम सं.तीसरा अंक.दूसरा दृश्य -पृ. 73

का है । .... हजारों औरतें और मर्द ऐसे हैं जिनके पास मेहनत बेचने केलिए बाजार नहीं है, उन्हें अनैतिक ढंग से चोरी, जेब कटी, वेश्यावृत्ति और बुरे अपराध कर जीवन बिताना पड़ता है । यह सबका सब अर्थ नीति का ही कुफल है"[1] ।

नाटककार का निष्कर्ष यह है कि आज की अर्थ नीति ही समाज को अनैतिकता की ओर ढकेल देती है । जीवन-निर्वाह केलिए गरीब जनता को विवश दुष्कर्म करने पड़ते हैं ।

उपेन्द्र नाथ अश्क की "अन्धी गली" में आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है । इसके बिम्बा बाबू की मान्यता है कि आर्थिक परिवर्तन के अभाव में इधर-उधर पैबंद लगाने अथवा महज दंड तजवीज करने से कुछ न होगा[2] ।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत सरकार आर्थिक असन्तुलन के निपाटन में प्रतिबद्ध है । पर सरकारी प्रयत्न गरीबों को ज्यादा गरीब और अमीरों को ज्यादा अमीर बनाने में ही सफल हुए हैं । सचेत साहित्यकार इस सच्चाई से अनभिज्ञ नहीं है । चर्चित नाटक यही सिद्ध करते हैं ।

गरीबों का शोषण

गरीबों का शोषण हमारे समाज में निरन्तर चलता रहता है । इसका चित्रण स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्राप्त है ।

शील के "तीन दिन तीन घर" में अमीरों के अत्याचारों का विरोध करनेवाली श्यामा की फरियाद है कि लाठी गोली सब गरीब पर है, अमीर को कोई नहीं पूछता[3] ।

1. शील - तीन दिन तीन घर - प्रथम अंक, प्रथम दृश्य - पृ.35
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - अन्धी गली - प्रथम सं. तीसरा अंक - पृ.64
3. शील - तीन दिन तीन घर - तृतीय अंक - पृ.108

जगदीश चन्द्रमाथुर के "कोणार्क" में भी अमीरों के अत्याचारों का वर्णन है । विशु से धर्मपद [विशु का पुत्र] की उक्ति है - इस मन्दिर में बरसों से 1200 से ऊपर शिल्पी काम कर रहे हैं । .... जानते हैं आप की महामात्य के भृत्यों ने इनमें से बहुतों की जमीन छीन ली है । कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ा है[1] ।

उदयशंकर भट्ट का नाटक "नया समाज" भी गरीब किसानों पर जमीन्दार के अत्याचारों का अनावरण करता है । फसल के बुरे होने के कारण किसान लगान चुकाने में असमर्थ हैं । पर जमीन्दार मनोहरसिंह अनुमाहिक और अधम रहता है । माफी माँगनेवाले कृषकों से रुष्ट होकर वह कहता है -"माफी, कैसी माफी ? हर साल माफी । अभी तो परसाल का लगान बाकी है । मैं एक पैसा नहीं छोड़ूँगा । सब सालों को जेल भेजकर रहूँगा"[2] ।

मनोहरसिंह गरीब किसानों के फसल कटवा लेता है, झोंपड़ियों में आग लगवाता है और जानवरों को छीन लेता है । वह अत्याचारों का प्रतिमूर्ति है और अपने वर्ग का प्रतिनिधि भी ।

शील के "किसान" [1954] में पुलिस की सहायता के साथ गरीब किसानों पर किए जानेवाले कुकर्मों का अनावरण है[3] ।

उपर्युक्त नाटकों में अमीरों के अत्याचारों का जीता जागता चित्रण है । पाठकों के मन में शोषितों के प्रति सहानुभूति पैदा करने में इन रचनाकारों ने पर्याप्त सफलता पाई है ।

---

1. जगदीश चन्द्र माथुर - कोणार्क - पंचम सं॰ सं॰2016 वि॰ दूसरा अंक-पृ॰26
2. उदयशंकर भट्ट - नया समाज - दूसरा सं॰ पहला अंक,पहला दृश्य, पृ॰15-16
3. शील - किसान - नया सोशोफिल सं॰ 1962, तृतीय अंक - पृ॰64-65

पूंजीपति व शोषण

स्वाधीन भारत का प्रख्यापित लक्ष्य सोशलिज़्म है । पर पूंजीवाद प्रतिदिन बल पकड़ता जा रहा है । गरीबों का शोषण निरन्तर बढ़ता रहता है । इसका प्रतिबिंब स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में दृष्टव्य है ।

पूंजीवादी व्यवस्था का यथार्थ चित्रण है "तीन दिन तीन घर" [ले॰ शील] में । प्रभात इसका प्रमुख पात्र है जिसके विचारानुसार पूंजीवादी व्यवस्था देश केलिए हानिकारक है । उसकी शिक्षा रेशमी लिबासों में फ़ैशन के कीड़े पालनेवाली है । वह मक्खियों को मनोरंजन का साधन और मकड़ों को मक्खी बनाती है । इसकी अर्थ नीति का ही नतीजा है कि उच्च शिक्षा महंगी हो गई है । असली प्रतिभा वाले साक्षरता का दोष लेकर बेकारी के शिकार होते रहते हैं । धनियों के बेटे ऊंचे ऊंचे पदों पर कब्ज़ा करते हैं और गरीबों का काम है मारा-मारा फिरना[1] ।

नाटककार की दृष्टि में पूंजीवादी व्यवस्था एक वर्गीय व्यवस्था है जिसमें सिर्फ धनिकों का ही उत्कर्ष संभव है ।

"रात रानी" में लक्ष्मी नारायण लाल पूंजीवादी शोषण का चित्र उपस्थित करते हुए मज़दूरों पर मालिकों के अधिकारों को समाप्त करने का आश्वासन देते हैं । पूंजीपति जयदेव की पत्नी कुन्तल, शोषण का विरोध करती है । मज़दूरों पर पुलिस का अत्याचार वह सह नहीं सकती । उसकी राय में दण्डनीति, पुलिस और जेलखाने मालिक - मज़दूर संघर्ष को समाप्त नहीं कर सकते[2] ।

---

1. शील - तीन दिन तीन घर - तृतीय अंक - प्रथम दृश्य - पृ॰ 155
2. लक्ष्मी नारायण लाल - रात रानी - प्रथम संस्करण, तीसरा अंक दूसरा दृश्य - पृ॰ 112-113

इस प्रकार और भी नाटक उपलब्ध हैं जिनमें शोषण के खिलाफ आवाज़ उठायी गई है। सिर्फ प्रतिनिधि रचनाओं तक ही हम अपने को सीमित रखते हैं।

जमीन्दारी की समाप्ति

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद जमीन्दारी अवैध घोषित की गई। फिर भी जमीन्दारों का शोषण वर्षों तक जारी रहा[1]। हमारे नाटक साहित्य में इस स्थिति का चित्रण प्राप्त है।

धीरे धीरे किसान और मजदूर संगठित होने लगे हैं। उनकी संगठित शक्ति के सामने पतनोन्मुख जमीन्दारों का अत्याचार टिक नहीं सकता। "गाँववाले एक हो गये, कानून भी अपना हो गया, जमीन्दार सिर मारकर रह गया"[2]।

उक्त प्रवृत्ति का समर्थन विमला रैना की कृति "तीन युग" (1950) में मिलता है। जमीन्दार राय बहादुर शंकर लाल कहता है - "अंग्रेज़ गया तो हम भी गये समझो"[3]। इससे स्पष्ट है कि जमीन्दारी साम्राज्य शक्ति की छत्र-छाया में पलती थी और विदेशी शासन के ढह जाने पर उसकी जड उखड गई।

अश्क की रचना "अंजो दीदी" में जमीन्दारी समाप्ति को कांग्रेस के लक्ष्यों में से एक मान लिया गया है[4]।

इसी प्रवृत्ति की ओर एक नाट्य कृति है, "लोक देवता जागा" (1964) लेखक है रामगोपाल शर्मा "दिनेश"। इसमें अपने पुत्र चन्दन से साहूकार

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रात रानी - प्रथम सं. तीसरा अंक, दूसरा दृश्य, पृ. 11
2. वही तृतीय अंक - पृ. 48
3. विमला रैना - तीन युग - 1958 पहला दृश्य - पृ. 15
4. उपेन्द्रनाथ अश्क - अंजोदीदी - तृतीय सं. पृ. दूसरा अंक - पृ. 142

धनिया सेठ का कथन है - "जमीन्दारी गई, जागीरदारी उधर लगान भी घट गया। अनाज का दाम धीरे - धीरे बढ़ते चला जा रहा है। रहे हम साहूकार लोग, सो पड़े - पड़े मक्खियाँ मारा करें"[1]।

उदयशंकर भट्ट की रचना "नया समाज" में जमींदारी के उन्मूलन का प्रतिपादन मिलता है। इसका मनोहर सिंह जमीन्दारों का प्रतिनिधि है। जमीन्दारी के मिटने पर भी वह ठाट-बाट का जीवन बिताना चाहता है। अपने पिता के संबंध में उसका पुत्र चन्द्र बदन सिंह कहता है - "वे एकदम पुराने ज़माने के आदमी हैं। खाना उन्हें चाँदी के बर्तनों में चाहिए। सामने रखा गिलास उठाकर नहीं पी सकते, हुक्का भरने को एक आदमी, खाली बैठे पैर दबाने केलिए नाई या खवास"[2]।

जमींदारों के अलस, अकर्मण्य तथा विलासमय जीवन का अंकन इस नाटक में तो है ही। पर इसमें यह भी दिखाया जाता है कि परिस्थिति के अनुरूप वे अपने जीवन - क्रम को परिवर्तित करने लगे हैं। मनोहरसिंह स्वयं क्यारियों में पानी भरता है, बीज बोता है, गाएँ चाहता है।

"नये हाथ" में विनोद रस्तोगी जमीन्दारों के अस्त प्रभाव का चित्रण करते हैं। अजय प्रताप, भूतपूर्व ताल्लुकेदार है। जमीन्दारी के ढहने पर भी वह शानदार जीवन बिताना चाहता है। उसकी पत्नी माधुरी का विचार है कि जमीन्दारी के मिटने पर भी पति की आँखें नहीं खुलीं। अपने पति से वह प्रार्थना करती है, वह कुछ न कुछ काम कर अपना जीवन बितावे। अजय प्रताप को वह स्वीकार्य नहीं - "राम .... राम ! धन्धा और मैं ? ठाकुर का बच्चा बनियागिरी करे ? नहीं, मुझसे नहीं होगा धन्धा वन्धा"[3]।

---

1. रामगोपाल शर्मा दिनेश - लोकदेवता जागा - प्रथम सं॰प्रथम अंक,दूसरा दृश्य पृ॰14
2. उदयशंकर भट्ट - नया समाज - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ॰2
3. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - तृतीय संस्करण प्रथम अंक, पृ॰3

अपने हाथों से काम करना जमीन्दार अपमान की बात समझता है । अब किसानों का जमीन्दारों के प्रति आदर नहीं[1] । जमीन्दार अक्ष्यप्रताप की शिकायत है - "जमीन्दारी छीनकर सरकार ने हमारी रोटी छीन ली"[2] ।

नरेश मेहता की "खण्डित यात्राएं" में भी अपदस्त जमीन्दारों की शोचनीय स्थिति का वर्णन है । साधारण मजदूरों के समान उन्हें काम करना पड़ता है । पिछले युग के मूल्यों, संस्कारों से बंधे जमीन्दारों की विवशता इसमें अभिव्यक्ति पाती है[3] ।

परिवर्तन को अनिवार्य समझकर कई जमीन्दारों ने अपनी जमा पूंजी व्यापारों में लगा दी । उनकी यह आशा थी कि सामाजिक परिवर्तन के प्रवाह में उनके पैर उखड़ न जायें । बैंक मैनेजर मेहरा की वाणी में "ज़मीन्दारी खतम हो गई । दूसरे जमीन्दारों ने व्यापार में अपनी जमा पूंजी लगा दी है"[4] । हमें भी वही पद्धति अपनानी चाहिए ।

"ममता" में [हरिकृष्ण प्रेमी] भी यही विषय उपजीव्य है । जमीन्दार रमाकान्त अपने विनष्ट ओहदे [राय साहब] पर "आँसु बहाता" है[5] । वह समय की अनिवार्य गति को अपने निहित स्वार्थ के लिए खतरनाक समझता है ।

उपर्युक्त नाटकों में अस्तंगत होनेवाले जमीन्दारी प्रभाव का ही अंकन हुआ है । एक ऐसा जमाना था जब जमीन्दार ही देश के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति थे । सरकार को भी कभी कभी उनका मुँहताज बनना पड़ता था । काल के प्रवाह ने सारी परिस्थितियों को बदल डाला । कल का जमीन्दार

---

1. विनोद रस्तोगी - नए हाथ - तृतीय अंक - पृ.98
2. वही - पृ.102
3. नरेश मेहता - खण्डित यात्राएं - प्रथम सं.प्रथम अंक - पृ.27
4. वही - पृ.35
5. हरिकृष्ण प्रेमी - ममता - चतुर्थ सं. प्रथम अंक - दूसरा दृश्य - पृ.20

आज का मज़दूर बन गया है। यह बहुत विचित्र स्थिति है। इससे, सन्देह नहीं, सामाजिक परिवर्तन में त्वरा आई। इसका आधुनिक नाटकों में बड़ा विदग्ध चित्रण मिलता है।

कृषक आन्दोलन

यद्यपि भारत कृषिप्रधान देश है, इसकी बहुसंख्यक जनता कृषक है तथापि किसानों का संगठित आंदोलन आधुनिक युग की ही देन कहा जा सकता है। हमारी जनता भाग्यवादी है और जीवन की परिस्थिति को अपरिवर्तनीय मानती है। अधिकार के लिए संग्राम, उसके लिए अज्ञात विषय है। यही कारण है कि भारतीय कृषक-समाज युगयुगों से दासता और निर्धनता का शिकार बना रहता है।

पश्चिमी शिक्षा और जीवन दर्शन के प्रसार ने हमारे कृषक समाज को नई प्रबुद्धता प्रदान की। अत्याचारों से लड़ना वह अपना परम कर्तव्य मानने लगा है। साहित्य में निश्चित रूप से ऐसी विचार धाराएं प्राप्त होती हैं। स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में कृषक आंदोलन का प्रतिपादन करनेवाली रचनाओं में विशेष उल्लेखनीय हैं, "प्रियदर्शी" और "किसान"।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का ऐतिहासिक नाटक है "प्रियदर्शी"। इसमें दिखाया गया है कि सिंहासन केलिए अशोक और उनके सौतेले भाई सुमन के बीच संघर्ष हो रहा है। उसमें किसान वर्ग निर्णायक योग दे रहे हैं।

राष्ट्र-निर्माण में किसान का पूरा सहयोग नाटककार आवश्यक मानते हैं।[1] अपने अधिकारों केलिए विद्रोह करनेवाले किसानों का समर्थन करती हुई किसान स्त्री सरला कहती है - "यदि सैनिक विद्रोह कर सकते हैं, तो किसान क्यों

---

1. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी, प्रथम संस्करण अंक - पृ.21

नहीं कर सकते है ? सेठी, मंत्री, सेनापति, राजकुमार, राजपुरुष आदि जब शासन - सत्ता हाथ में लेने केलिए षड्यंत्र कर सकते हैं और युग युग से करते चले आ रहे हैं, तब किसान अपनी प्रतिष्ठा और उचित अधिकारों की रक्षा केलिए विद्रोह क्यों नहीं कर सकते ?[1]

किसान आन्दोलन का समर्थन शील के "किसान" में भी मिलता है। संगठित शक्ति के बल पर किसान पंचायत पर अधिकार जमा लेते हैं। इसपर किसान धीरज, अपनी खुशी प्रकट करता है - "हम गाँववालों ने एक लंबी संघर्ष के बाद जीत हासिल की है। जिन्दगी को बदल दिए हैं। समय की धार पर काबू पा लिया है"[2]।

भारतीय किसान अब किसी का गुलाम नहीं। आज उसकी अपनी पंचायत अपनी जमीन अपने बाग-बगीचे सब कुछ है। उसपर कोई जबर्दस्ती नहीं कर सकता।

उपर्युक्त नाटकों में यह सूचित किया गया है कि किसान-वर्ग, राष्ट्र का अभिन्न अंग है। उसकी प्रगति में ही राष्ट्र-कल्याण निहित है। अतः उसके प्रति उपेक्षा भाव उचित नहीं, उसे विकास का अवसर दिया जाना चाहिए।

कृषक-जीवन में सुधार

भारत सरकार ने किसानों को राष्ट्र कल्याण का मूल आधार स्वीकार किया है। जीवन के सभी क्षेत्रों में अग्रसर होने का अवसर भी उन्हें दिया गया है। हमारे देहाती किसान अधिकतर अशिक्षित हैं। सरकार ने उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया है। अन्य सुधारों की ओर भी उसका ध्यान गया है। इन नवीन परिस्थितियों से स्वातंत्र्योत्तर नाटककार प्रभावित है और उनकी रचनाओं में उसके प्रमाण उपलब्ध है।

---

1. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी, प्रथम सं. 1962, पहला अंक - पृ. 22
2. शील - किसान - तृतीय अंक - पृ. 83

रामगोपाल शर्मा दिनेश के "लोक देवता जागा" में कृषकों की शिक्षा का सवाल उठाया गया है । किसान मनोहर के पुत्र गिरीश को सरकार पन्द्रह रुपये की मासिक छात्रवृत्ति देने का निश्चय करती है । यह समाचार सुनने पर मनोहर, अत्यधिक प्रसन्न होता है[1] ।

धनिया सेठ का पुत्र चन्दन, अपढ ग्रामीणों में शिक्षा का प्रचार कर रहा है.[2] ।

यद्यपि ऐसे प्रसंगों में प्रचारात्मकता पाई जाती है तथापि इसमें सामाजिक कल्याण की जो भावना निहित है, उसका अभिनंदन होना ही चाहिए ।

किसानों की मदद केलिए सरकार ने सहकारी विभाग खोला है । साहूकारों से गरीबों की रक्षा इसका प्रमुख ध्येय है । सहकारिता का समर्थन इस नाटक में मिलता है । सहकारी समितियों के कार्यक्रम के संबंध में अध्यापक श्याम सुन्दर कहता है - "ये समितियां ग्रामों को नर्क से स्वर्ग बनाती है । जिन किसानों को बैल, अनाज आदि खरीदने तथा बच्चों की पढाई चलाने जैसे महत्वपूर्ण कार्यों केलिए रुपयों की आवश्यकता होती है, उन्हें बहुत कम ब्याज पर सहकारी समितियां ऋण देती हैं, अच्छे खाद और उत्तम बीज का प्रबन्ध करती हैं तथा फसल की बिक्री की भी उचित व्यवस्था करती है".[3] ।

नाटककार का अभिमत है कि सहकारी समितियां किसान-जीवन केलिए एक वरदान है ।

---

1. राम गोपाल शर्मा "दिनेश" - लोकदेवता जागा - प्रथम सं.1964
पहला अंक, पहला दृश्य - पृ.11-12
2. वही दूसरा दृश्य - पृ.18
3. वही दूसरा अंक " - पृ.44

"उजाला" [ले॰कृष्ण बहादुर चन्द्रा] में किसानों की शिक्षा पर बल दिया जाता है । इस का रामू अपनी पत्नी से कहता है - "सरकार चाहती है कि इस देश का एक भी आदमी बगैर पढ़ा - लिखा न रहे । तभी हमारा देश उन्नति कर सकता है"[1] ।

नाटककार का यह भी सुझाव है कि कृषक के जीवन में आत्म निर्भरता आनी चाहिए ।

दयानाथ झा के "कर्मपथ" में गांवों में शिक्षा - प्रसार का प्रतिपादन है । अरविन्द शिक्षित है । वह गांववालों को शिक्षा देता है । गांवों की प्रगति वह शिक्षा में ही देखता है[2] । उसका सुझाव है कि ग्रामीण जनता की शिक्षा का भार-शिक्षितों को स्वयं उठा लेना चाहिए ।

गांवों की सफाई और ग्रामीणों का स्वास्थ्य

ग्रामों का विकास ग्रामवासियों की स्वास्थ्य रक्षा पर निहित है । इस तथ्य को समझकर सरकार ने गांवों की सफाई और ग्रामीणों की स्वास्थ्य रक्षा केलिए आवश्यक कार्यक्रम अपना लिए हैं । आधुनिक नाटककारों ने इस पर प्रकाश डाला है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के "निस्तार" में गांवों में शौचकूपों के निर्माण की योजना का प्रश्न उठाया गया है[3] ।

मेहत्तरों के प्रति छुआछूत की जो भावना समाज में जारी है, वह शौच कूपों के आविर्भाव से टूट जाएगी । प्रस्तुत नाटक में उपेन्द्र यही कह रहा है - "जबतक मेहत्तर हट्टी सफाई का काम करते रहेंगे, गन्दगी से उत्पन्न

1· कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला - प्रथम अंक - पृ॰11

2· दयानाथ झा - कर्मपथ - प्रथम सं॰ पहला अंक - चौथा दृश्य,पृ॰36-37

3· वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - चतुर्थ सं॰दूसरा अंक,तीसरा दृश्य-पृ॰58

न्तामि छुआछूत के किसी न किसी रूप को जन्म देती रहेगी। इसका एक मात्र उपाय है - नगर - नगर गांव - गांव में शौच कूपों - सेप्टिक टैंक टट्टियों - का निर्माण"[1]।

संक्रामक बीमारियों को रोकने के उद्देश्य से कुओं में दवा छिड़काने का कार्य भी सरकार की ओर से आरंभ हुआ है।

"खिलौने की खोज" [ले॰वृन्दावनलाल वर्मा] में इस बात का प्रतिपादन है गांव की भीड में आकर सैनिटरी इन्स्पेक्टर कहता है - "हटो, भीड मत करो। भीड करने से बीमारी बढ़ती है। हटो, हटो हमको कुएं साफ करने केलिए जाना है"[2]।

"उजाला" [ले॰कृष्ण बहादुर चन्द्रा] में गांव की सफाई की समस्या उठायी जाती है। कुएं के पानी को सदा साफ रखने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है[3]।

इसके अतिरिक्त दलितोद्धार के सरकारी कार्यक्रमों पर भी प्रकाश डाला जाता है। इसके फलस्वरूप जनता उद्बुद्ध हुई, रचनात्मक कार्यक्रमों को समर्थन प्राप्त होने लगा।

कृषि-सुधार और सरकारी कार्यक्रम

पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार ने कृषि-सुधार की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया। ऊसर भूमि कृषि-योग्य बनायी जाने लगी। रासायनिक खादों का उत्पादन भी बढ गया। इस दिशा में जनता तथा सरकार दोनों एक दूसरे की सहायता करती हैं।

1• वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - चतुर्थ सं॰, दूसरा अंक, तीसरा दृश्य, पृ॰57-

2• वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज, छठवां सं॰1973, दूसरा अंक, चौथा दृ पृ॰61।

3• कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला - प्रथम अंक - पृ॰24

"किसान" में शीम खेती केलिए नवीन वैज्ञानिक यंत्रों के प्रयोग का समर्थन की चर्चा करते हैं। ट्रेक्टर के उपयोग के संबंध में किसान नायक धीरज चौधरी अपनी बेटी को समझाता है - "पंचायत का ट्रेक्टर आया होगा - सब काम मशीन करती है - बोना, काटना, माडना, अनाज साफ करना सब काम"[1]।

चौधरी खेती को किसान की दौलत समझता है। यह पुराने रूढिवादी किसान ट्रेक्टर को अपना दुश्मन समझकर उसे जलाना चाहते हैं। धीरज, इन अशिक्षित किसानों को समझाने की चेष्टा करता है - "........ ट्रेक्टर देश की संपत्ति है। गांव की तरक्की, देश की तरक्की का नया हथियार है"[2]।

सरकार द्वारा निर्धारित चकबन्दी आयोजना का प्रतिपादन "उजाला" में मिलता है। इसके अनुसार छोटे-छोटे खेतों का चक बना दिया जाता है। इससे सिंचाई एवं देख रेख में सुविधा आ जाती है[3]।

श्याम लाल मधुप के "जय जवान जय किसान" का प्रमुख प्रमेय भी कृषि - विकास ही है[4]।

सरकार की सहायता और कृषकों के प्रयत्न के फलस्वरूप कृषि - क्षेत्र में जो काफी प्रगति लक्षित होने लगी है, उसका समग्र परिचय उपर्युक्त रचनाओं से मिलता है।

मजदूर जागरण

कृषकों की भांति मजदूर वर्ग भी देश के आर्थिक विकास में सहयोग देते हैं

---

1. शीम - किसान - प्रथम अंक - पृ.10
2. वही - दूसरा अंक - पृ.78
3. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला - प्रथम अंक - पृ.23
4. श्यामलाल मधुप - जय जवान जय किसान - प्रथम सं.पहला अंक-पृ.9

स्वतंत्रता के उपरान्त मज़दूर वर्ग ने काफी प्रगति हासिल की है । संगठन तथा संघर्ष के क्षेत्र में उनकी उपलब्धि नगण्य नहीं है । श्रमिक वर्ग अपने सशक्त यूनियनों में संगठित हो गये हैं । केवल मिल मालिकों और मैनेजरों के खिलाफ ही नहीं सरकार के खिलाफ भी वे संघर्ष भिरत हैं । मांगों केलिए जूझना श्रमिकों का मौलिक अधिकार मान लिया गया है । उनके जीवन में यह एकदम क्रान्तिकारी परिवर्तन है । स्वाभाविक है, हमारा साहित्य भी इस क्रान्ति की दुंदुभी से प्रतिध्वनित हो उठा ।

दयानाथ झा के 'कर्मपथ' में मज़दूरों का जागरण ही मुख्यतया प्रतिपादित है । श्रमिकवर्ग सशक्त यूनियन के सहारे स्वाधिकार केलिए संग्राम कर रहे हैं । इस तथ्य का संकेत जमीन्दार चन्द्रिका बाबू करता है[1] ।

मज़दूर, संगठन का महत्व समझने लगे हैं । वे अपने अधिकारों की मांग पेश कर रहे हैं । वे किसी के अधीन नहीं । अब उनका अपना अस्तित्व है, और अपना व्यक्तित्व भी ।

मज़दूरों पर मालिकों का जो अधिकार था, वह खत्म हो गया है । मज़दूर वर्ग आज इतना सजग है कि वह किसी का आज्ञानुवर्ती नहीं रहना चाहता मजदूर मालिकों पर अपना अधिकार जमाने लगे हैं । जयनाथ नलिन के अवसान नाटक में यह प्रवृत्ति स्पष्ट पायी जाती है[2] । इसके मुकुटलाल का विचार है कि ये मज़दूर भविष्य में देश के नेता बन जायेंगे[3] । इसमें नाटककार मज़दूरों के उज्ज्वल भविष्य की झांकी प्रस्तुत करते हैं ।

---

1. दयानाथ झा - कर्म पथ - प्रथम सं• 1953, प्रथम अंक, दूसरा दृश्य-पृ•22
2. जयनाथ नलिन- अवसान - सं•2022, दूसरा अंक - पृ•52
3. वही - पृ•53

लक्ष्मी नारायण लाल के "रातरानी" में मालिक - मज़दूर संघर्ष का उज्ज्वल चित्रण है । प्रेस का मालिक है जयदेव । कुन्तल उसकी पत्नी है । प्रेस के कर्मचारी बोनस केलिए संघर्ष करते हैं । मालिक बोनस देने को तैयार नहीं होता । लेकिन कुन्तल मज़दूरों की कठिनाइयाँ समझ लेती है और उनका समर्थन करती है । वह अपने पति को समझाते हुए कहती है - "उसे कौन अस्वीकार करता है । पर मालिक का अपना यह भाव अब कर्मचारियों के प्रति बदलना होगा"[1] ।

इस नाटक के अवलोकन से यह विदित होता है कि वैयवसायिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जो परिवर्तन स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद शुरू होता है उससे पूँजीपति भी मुँह नहीं मोड़ सकते । उनमें भी ऐसे व्यक्ति प्राप्त होते हैं जो मज़दूरों के न्यायोचित संघर्षों का समर्थन करते हैं । कुन्तल इसका उदाहरण है । देश के इतिहास के बदलते परिप्रेक्ष्य में ही इस परिवर्तन का सही मूल्यांकन संभव है ।

"तीन दिन तीन घर" में गीश ने इसी विषय की चर्चा की है । इसमें मालिक की प्रेरणा से एक मज़दूर की हत्या की जाती है । इससे सारे मज़दूरों में आतंक छा जाता है । वे तालाबन्दी करने केलिए तैयार होते हैं[2] ।

मज़दूर-वर्ग के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना है । उनमें वर्ग बोध रूढ़ हो गया है । अपने वर्ग हित केलिए संघर्ष करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं ।

मज़दूर-मालिक संघर्ष स्वतंत्र भारत की मामूली बात बन गई है । इससे फेक्टरियाँ बन्द करनी पड़ती हैं जिससे उत्पादन कम हो जाता है ।

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रातरानी - प्रथम सं०पहला अंक - पृ०26
2. गीश - तीन दिन तीन घर - प्रथम सं०दूसरा अंक - पृ०105

उत्पादन की कमी राष्ट्र-हित में बाधक बनती है । फिर भी हमें यह मानना पड़ता है कि यह संघर्ष श्रमिक - वर्ग की सफलता का सूचक है । आत्यंतिक दृष्टि से इसका परिणाम अच्छा ही होगा । वर्ग संघर्ष के द्वारा ही सोशलिज़्म की स्थापना संभव होती है ।

व्यवसायों की वृद्धि भी मालिक-मज़दूर संघर्ष का कारण बनती है । श्रमिक वर्ग की मांगों को ठुकरा देना संभव नहीं है । अधिकारों की उपलब्धि केलिए संघर्ष जारी रखना अनुचित नहीं कहा जा सकता । स्वतंत्र भारत इस प्रकार के सैकड़ों संघर्षों का अखाड़ा हो गया है । पिकेटिंग हड़ताल मज़दूर जीवन का अंग है । नाटककारों ने इन संघर्षों का सशक्त अंकन अपनी रचनाओं में किया है ।

भगवती चरण वर्मा और लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में इन हड़तालों ने प्रमुख स्थान पा लिया है ।

"बुझता दीपक" [भगवतीचरण वर्मा] का शिवलाल एक मिल मालिक है । रिश्वत और चोरबाज़ारी से वह काफी रुपया कमाता है । पर मज़दूरों का वेतन नहीं बढ़ा देता । इसपर मज़दूर हड़ताल की नोटिस देते हैं । शिवलाल विरोध करता है । राधेश्याम शर्मा स्थानीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष है । वह हड़ताल का समर्थन करता है और शिवलाल को समझाता है - "जहाँ तक मैं समझता हूँ, मांगें अनुचित नहीं हैं । लेकिन इस हड़ताल को रोक सकना तो मेरे हाथ में नहीं है - यह मामला आपके और यूनियन लीडर्स के बीच का है । आप दोनों के अलावा सरकार भी इस मामले में पड़ सकती है"[1] ।

नाटककार हड़ताल का समर्थन करता है और यह साबित करता है कि इसके द्वारा ही मज़दूर वर्ग उन्नति प्राप्त कर सकता है ।

---

1. भगवती चरण वर्मा - बुझता दीपक - पृ.83

हड़ताल का समर्थन "रात रानी" [लक्ष्मी नारायण लाल] में भी प्राप्त होता है । प्रेस का मालिक जयदेव, किशोरीलाल नामक कर्मचारी को नौकरी से निकाल देता है । उसे बोनस भी नहीं दिया जाता है । इसको लेकर प्रेस के अन्य मज़दूर हड़ताल करते हैं । वे जुलूस निकालकर जयदेव के घर के सामने आते हैं और मारे जाते हैं[1] ।

यद्यपि हड़तालों से मज़दूरों को आर्थिक कठिनाई उठानी पड़ती है तथापि उनके क्रान्तिकारी कदमों का परिणाम श्रमिक वर्ग केलिए अच्छा ही निकलता है ।

हमारे देश में श्रमिक वर्ग की संघर्ष-शक्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही पूर्णतया क्रियाशील दिखाई देती है । इसका परिणाम निश्चित रूप से केवल मज़दूरों केलिए ही नहीं सारे देश केलिए शुभ प्रद सिद्ध हुआ । हमारे नाटककार आर्थिक क्रान्ति को सामाजिक क्रान्ति के सोपान के रूप में स्वीकार करते हैं । आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों की क्रियाशीलता के वास्तविक चित्रण करने में वे सफल निकले हैं ।

भूदान-यज्ञ और कुटीर-उद्योग

आलोच्यकालीन आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालनेवाले तत्व और भी विद्यमान हैं जिनकी चर्चा यत्र-तत्र नाट्य साहित्य में उपलब्ध है । इनमें से उल्लेख योग्य हैं भूदान आन्दोलन तथा कुटीर उद्योग ।

यह आन्दोलन भले ही सन् 19   में शुरू हुआ पर आर्थिक व्यवस्था पर इसका प्रभाव धीरे-धीरे ही लक्षित होने लगा । कृषकों को कृषि-भूमि के स्वामी बनाने में इसने काफी सहायता पहुंचायी । यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भूदान आन्दोलन के प्रभाव से ही देश के नाना राज्यों ने भू नियम पारित किया

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रातरानी - पृ.129-130

आचार्य विनोबा भावे की इस अहिंसात्मक क्रान्ति का प्रभाव तो साहित्य पर अपेक्षाकृत कम ही दृष्टिगत होता है ।

इस दिशा में उल्लेखनीय नाटक है "भूदान यज्ञ" । लेखक है सेठ गोविन्द दास । इसमें विनोबा भावे राजेन्द्र प्रसाद आदि नेताओं को पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

नाटककार के अनुसार आज की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का एक मात्र समाधान है भूदान-आन्दोलन[1] ।

गांधी जी के आन्दोलनों का केन्द्र हमेशा कृषक वर्ग ही रहा । विनोबा भावे ने इसी कारण कृषक - समस्या के हल का प्रयत्न किया । सेठ गोविन्द दास ईमान्दारी के साथ भूदान यज्ञ को समस्त सामाजिक समस्याओं के हल के रूप में प्रस्तुत करते हैं । इस पर मत भेद हो सकता है । लेकिन लेखक की इमानदारी, जहाँ तक साहित्य की बात है, बहुत ही महत्वपूर्ण है । इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह ईमान्दारी है ।

भारत जैसे जन-बहुल देश केलिए कुटीर-उद्योग आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है । यह पुराने ज़माने में हमारी अर्थ व्यवस्था की रीढ़ था । विदेशी शासन ने ही उसे तोड़ डाला । परिणाम स्वरूप बहुसंख्यक जनता गरीबी में डूबी जीवन बिताने लगी । महात्मा गांधी, आर्थिक स्वतंत्रता में कुटीर उद्योगों की महत्ता जाननेवाले थे । अतएव उन्होंने उसका उद्धार अपना अन्यतम लक्ष्य बना लिया । भारत की स्वतंत्र सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में कुटीर उद्योगों के विकास केलिए बड़े बड़े रकमें नियोजित की । सरकारी नीति के कारण कुटीर उद्योगों में नई प्राण-शक्ति आयी । इस जागृति का स्फुरण नाट्य साहित्य में भी पाया जाता है ।

---

1. सेठ गोविन्द दास - भूदान यज्ञ - दूसरा सं॰1961, दूसरा अंक, पहला दृश्य - पृ॰54

इसके प्रमाण स्वरूप शील के 'हवा का रुख' नाटक का उल्लेख किया जा सकता है ।

इस नाटक का पात्र कुमार श्यामू गांधी आश्रम का सूत कातकर जीवन बिताता है । बहुत कष्ट झेलकर वह मास्टर्स पास होता है । फिर भी उसे कोई नौकरी नहीं मिलती । किशनलाल बाबू उसे यह उपदेश देता है - 'तुम किसी कुटीर उद्योग में क्यों न लगे गए । अब तो कुटीर उद्योग केलिए सरकार बड़े बड़े अनुदान दे रही है'[1]। इसी नाटक का दूसरा पात्र अशोक, छोटे छोटे उद्योग धन्धों की सहकारी को बेकारी का सही इलाज मानता है[2]।

इस नाटक में बेकारी निवारण में कुटीर-उद्योग की महत्ता स्थापित करने के साथ ही लेखक सरकारी प्रोत्साहनों का अभिनंदन भी करते है ।

प्रत्यवलोकन

स्वातंत्र्योत्तर नाटक देश की जटिल आर्थिक - स्थिति से सर्वथा प्रभावित होकर चलते है । देश की दुर्दशा पर लेखक क्षोभ और दुःख प्रकट करते हैं । वे क्रान्तिकारी परिवर्तन के पक्ष धर हैं भले ही क्रान्ति के मूल में गांधीवादी विचारधारा प्रबल है । श्रमजीवी वर्ग की महत्ता सभी लेखक स्वीकार करते हैं । श्रमिकों के जीवन के सुख दुःखों और संघर्षों का चित्रण उक्त काल की प्रमुख प्रवृत्ति है । लेखक ग्रामीण जनता के विकास में अधिकाधिक तत्परता भी प्रकट करने लगे हैं ।

निष्कर्ष

1. अर्थ-व्यवस्था सामाजिक जीवन की आधार शिला है । इस तथ्य की स्वीकृति स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में सर्वत्र पायी जाती है ।

---

1. शील - हवा का रुख - दूसरा अंक - पृ.66
2. वही - पृ.71-72

2. देश की आर्थिक विपन्नता पर रचनाकार विक्षोभ प्रकट करते हैं। नव समाज-सृष्टि की इच्छा उनकी सामान्य प्रवृत्ति है।

3. श्रमिक वर्ग की महानता और नव-भारत निर्माण में उनका अद्वितीय स्थान साहित्यकारों ने स्वीकार किया है।

4. यह भी स्वीकार किया गया है कि पूंजीवादी सभ्यता में मानवता का पनपना कठिन है।

5. भौतिकवाद और समाजवाद का लोगों के दिल पर प्रभाव अधिकाधिक प्रबल होने लगा है। साथ ही, गांधीवादी अर्थ-व्यवस्था, कुटीर उद्योग भूदान आदि का भी लेखकों ने समर्थन किया है।

6. लेखक सम्मिश्रित अर्थव्यवस्था का ही समर्थन करते दिखाई पड़ते हैं।

7. सहकारी समिति के माध्यम से रासायनिक उर्वरक बीज आदि के वितरण द्वारा अर्थ - व्यवस्था को गतिशील बनाने की आवश्यकता पर लेखक बल देते हैं।

8. महंगाई, चोरबाजारी, जमाखोरी जैसी आर्थिक दुष्प्रवृत्तियों का अनावरण नाट्य साहित्य में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

9. जमीन्दारी की समाप्ति, देश की आर्थिक प्रगति के शुभ लक्षण के रूप में ही नाट्य साहित्य में चित्रित की गई है।

10. स्वतंत्र भारत के आर्थिक पहलुओं का जागरूक चित्रण इन नाटकों में प्राप्य है। वे समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर कराने में ये सहायक हैं।

****

अध्याय - 10

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में धार्मिक परिस्थिति का प्रतिफलन

1948-65

दशम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में धार्मिक परिस्थिति का प्रतिफलन 1947-'65

धर्म मानव संस्कृति की विकास प्रक्रिया में निरंतर प्रेरक तत्व रहा है । मानव-समाज के संघटन में धर्म का अपना योगदान है । वर्तमान युग में भी उसका निश्चित महत्त्व है ।

यह तो सुविदित है कि भारतीय समाज, साहित्य तथा संस्कृति विशेष रूप से धर्म-युक्त है । अतः उसके साहित्य या सामाजिक संस्कृति का धर्म-निरपेक्ष रूप में अध्ययन असंभव है ही । कालगत व्यवधान का कोई स्थान उसमें नहीं है । आधुनिक नाट्य साहित्य की सामाजिकता आंकलित करने के प्रयत्न में धार्मिक परिस्थिति का प्रतिफलन इसलिए अध्ययन का स्वयं विषय बन जाता है । हम यहाँ स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में प्रतिफलित धार्मिक परिस्थिति का संक्षेप में अध्ययन करेंगे ।

स्वतंत्र भारत में धर्म

स्वतंत्र भारत की धर्म - निरपेक्षता ने यहाँ के विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता और आदर का भाव रखा है । सरकार ने धार्मिक सहिष्णुता बनाये रखने की ओर भी खूब ध्यान दिया है । लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि स्वतंत्र भारत का धार्मिक वातावरण विषाक्त हो गया है ।

इसके अनेक ऐतिहासिक कारण हैं । प्राय: सभी धर्मों ने अपना सच्चा स्वरूप छोड़के नकली रूप धारण कर लिया है । धर्म धुरंधरों का वैयक्तिक जीवन नैतिक प्रतिमानों का अतिक्रमण करनेवाला हो गया है । पश्चिम के बुद्धिवाद ने धर्म के प्रति भारतीयों की आस्था और विश्वास को विचलित कर दिया है । नई पीढ़ी नास्तिक बनती जा रही है । यद्यपि नरबलि, पशुबलि जैसे हिंसात्मक धार्मिक अत्याचारों को अवैध घोषित किया गया है तथापि हमारे बीच यह अत्याचार आंशिक रूप में अब भी प्रचलित है। वर्तमान समाज में ईश्वर की अनेक रूपता पर आस्था प्राय: लुप्त हो गई है । एकेश्वरवाद बल पकड़ता जा रहा है ।

उपर्युक्त धार्मिक स्थितियों से हिन्दी के आधुनिक नाटककार अवश्य प्रभावित हुए हैं । उन्होंने इन परिस्थितियों और धार्मिक समस्याओं का विशद चित्रण अपनी रचनाओं में किया है । धर्म के कुत्सित और संकीर्ण पक्षों से वे परिचित हैं । पतनोन्मुख धार्मिक परिस्थिति से समाज को बचाने की आवश्यकता पर उन्होंने ज़ोर डाला है । नाटकों में इस बात का कैसा प्रतिफलन हुआ, उसका अवलोकन हमारा लक्ष्य है ।

धर्म के नाम पर शोषण

यह एक वैषम्य सा प्रतीत होता है कि धर्म प्रधान भारतवर्ष में ही धर्म के नाम पर शोषण अधिक हो रहा है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक इसका निदर्शन है । इस दिशा में अधिक सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाले नाटककार हैं वृन्दावनलाल वर्मा और कान्तिदास कपूर ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने "खिलौने की खोज" {1956} में धर्माधिकारियों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठायी है । पुजारी नैनुचन्द देवी मन्दिर बनवाने की चेष्टा करता है । इसका विरोध करते हुए डॉ॰ सलिल का कथन है - "मन्दिर, मन्दिर ! कितने मन्दिर और बनेंगे अब ? गाँव के लोग यों ही काफी मूर्ख हैं, उनके अन्धविश्वासों से लाभ उठाने और उनको मुट्ठी में कसे रखने का अच्छा उपाय है यह"[1] ।

यह कथन अक्षरशः सत्य है । पुजारी लोग गरीब जनता की मूर्खता से लाभ उठाते हैं । नैनुचन्द हमारे धार्मिक क्षेत्र में सुविदित है । नाटककार ने इसके द्वारा पुरोहितों पर तीखा व्यंग्य किया है ।

इस दृष्टि से उल्लेखनीय दूसरा नाटक है वर्मा जी का "निस्तार" {1955} । राजापुर के राधाकृष्ण मन्दिर का पुजारी भोगीलाल धर्म के नाम पर गरीबों का कठोर शोषण करनेवाला है । एक दरिद्र किसान से भोगी लाल का यह कथन उसकी प्रस्तुत प्रवृत्ति का परिचायक है - "ब्याह बारात के बम - पटाकों में तो तुम ने सैकड़ों रुपये फूँक दिये सत्य नारायण की कथा कराने की दक्षिणा दो रुपया बतला रहे हो"[2] ।

निर्धनों का धार्मिक शोषण करनेवाले इस प्रकार के हज़ार भोगी लाल हमारे समाज में जीवित हैं ।

कालिदास कपूर का नाटक है "धर्म विजय" {1964} । वर्तमान समाज के धार्मिक शोषण की झाँकी देनेवाले अनेक प्रसंग इसमें दृष्टव्य हैं ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज - छठा सं॰ तीसरा अंक पहला दृश्य - पृ॰72-73
2. वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - चतुर्थ सं॰ दूसरा अंक - छठवाँ दृश्य पृ॰63

"ह - ह - ह - ह - कुण्ठित तो आप लोग अपने कर्म से हो रहे हैं। ह - ह - ह - ह - आप लोग धर्म के नाम पर प्रजा का शोषण कर रहे हैं। भगवान के नाम पर स्वर्ण, अन्न और गोरस से अपना घर भर रहे हैं"[1] - राजपुरोहित चक्रपाणि की अवहेलना करते हुए श्रमणक की यह उक्ति धार्मिक-शोषण का पर्दाफाश करती है।

पुरोहित वर्ग शासकों को अपने काबू में रखना चाहता है। शासकों की अधिकार-शक्ति की ओट में पुरोहित जनता का शोषण करते रहते हैं। इस नाटक में इस प्रवृत्ति को सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है। "मैं पुरोहित प्रथा के सर्वदा विरुद्ध हूँ; क्योंकि पुरोहितों को राज्य-सत्ता का प्रश्रय तथा सम्बल प्राप्त है। वे धर्म के नाम पर प्रजा को अमानुषिक ढंग से पीड़ित तथा प्रताड़ित करते हैं। प्रजा जब राज-सत्ता से त्राण पाने की याचना करती है तो राज्य तक उसकी पहुँच नहीं हो पाती; क्योंकि सत्ताधिपति सदैव पुरोहितों से घिरे रहते हैं"[2] - कौण्डिन्य की यह उक्ति एक जटिल सामाजिक सत्य का ही अनावरण करती है।

मिथ्याचार और बाह्याडंबर

आज पशुबलि और नरबलि जैसे अत्याचार वैधानिक दृष्टि से दण्डनीय हैं। इसलिए यह कुरीति प्राय: लुप्त होती जा रही है। लेकिन मूर्ति-पूजा का प्रचार बढ़ता जा रहा है। जनता का विश्वास इससे घटेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। आधुनिक नाटककारों की दृष्टि इस तथ्य पर पड़ी है। अतएव उन्होंने अपनी कृतियों में नरबलि, पशुबलि आदि का विरोध करते हुए मूर्ति-पूजा व्यर्थ साबित की है।

---

1. कालिदास कपूर - धर्मविजय - 1964 - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य- पृ.10
2. कालिदास कपूर - धर्मविजय - " प्रथम अंक - दूसरा दृश्य-पृ.30

वृन्दावनलाल वर्मा के "पूर्व की ओर" 1955 नाटक में धार्मिक क्षेत्र के अनाचारों का, विशेष कर नरबलि, पशुबलि आदि का विरोध पाया जाता है । इसमें आव-सुंग एक भिक्षु द्वारा नरबलि और पशुबलि को समाप्त कर देता है[1] ।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की रचना है "धर्म की धुरी" (1953) । इसमें पशुबलि के विरुद्ध आवाज़ उठायी गई है । संतराम से दुर्गादास कहता है "भला सोचो तो एक निरपराध की जान लेकर क्या पुण्य कमाया तुमने ? उधर के उन मज़हबी उन्मादों की बलि चढ़ाते तो खैर, एक बात भी थी - अपने किए का जवाब पाते"[2] ।

इस नाटक में मूर्ति-पूजा का भी विरोध किया गया है । संतराम, मूर्ति को हमारे मनोयोग का एक अवलंब मानता है । दुर्गादास को वह समझाता है "मूर्ति तो एक प्रतीक है या यों कहो हमारे मनोयोग का एक अवलम्ब - एक आसान अभ्यास साधन आमार्जन कैमिस्ट जैसे अक्षर"[3] ।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के "गौतम नन्द" 1960 नाटक में रक्त-मांस के पशुओं के बदले उनकी छोटे की पूरे आकार की मूर्तियाँ बनवाकर उनकी बलि दी जाने की बात कही गई है[4] ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - पूर्व की ओर - चौथा अंक, बारहवाँ सं. सातवाँ दृश्य - पृ.201
2. राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी - द्वि.सं. तृतीय अंक प्रथम दृश्य - पृ.57
3. राधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी - तृतीय अंक दूसरा दृश्य पृ.81
4. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - गौतम नन्द - तेरहवाँ सं. पहला अंक, तीसरा दृश्य - पृ.39

धार्मिक क्षेत्र के मिथ्याचार और बाह्याडंबर का अब भी प्रचलन काफी है । जनता इसका शिकार बनती जा रही है । लक्ष्मी नारायण लाल ने "सूखा सरोवर" 1959 में ऐसे एक धर्मच्युत समाज की आलोचना की है । इसमें नगरी का सरोवर धर्म का प्रतीक माना गया है । समाज के धर्मच्युत जीवन के कारण यह सरोवर सूख जाता है । नगर के पाँच व्यक्ति इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए परस्पर चर्चा कर रहे हैं । अचानक एक अदृश्य आवाज़ सुनाई पड़ती है जो सरोवर के सूख जाने का कारण बता रही है -

"मैं धर्म राज हूँ इस नगरी का,
तुम सब धीरे - धीरे धर्मच्युत हो गये,
राजा से तर्क करने लगे तुम
राजा को व्यक्ति मानने लगे तुम
ईश्वर पर शंका करने लगे तुम
दान पुण्य लोकाचार धर्माचार
सबको छोड़ते गये तुम
जो कुछ धर्म था, धर्म जनित कर्म था,
सबसे, सब को सब तरह
तोड़ते गये तुम"[1] ।

धर्मच्युत समाज का चित्रण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - सूखा सरोवर - प्रथम सं. पहला अंक पृ. 20-21

धर्माधिकारियों के घृणित जीवन की निन्दा

समसामयिक धार्मिक क्षेत्र में सर्वत्र विलासिता और दुराचार का ताण्डव हो रहा है। धर्म की पवित्रता विनष्ट हो चुकी है। धर्माधिकारी अनैतिक जीवन बिता रहे हैं। मदिरा और मदिराक्षी उनकी प्रिय वस्तु बन गई है। निरीह जनता की आँखों में धूल डालकर "साधु लोग" धनोपार्जन करते हैं। कभी-कभी वे अपनी "दिव्य शक्ति" की चमक दिखाकर भोली-भाली ललनाओं को फँसा लेते हैं। आधुनिक नाटककारों ने धर्माधिकारियों के अनैतिक जीवन, ढोंग और भ्रष्टाचार का बड़ा मार्मिक और विशद चित्रण किया है। इनमें प्रमुख हैं, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, कालिदास कपूर और लक्ष्मी नारायण लाल।

उदयशंकर भट्ट के "शक विजय" 1949 नाटक में यह दिखाया गया है कि धार्मिक क्षेत्र के अधिकारी मदिरा पीने और मांस खाने में ही अपना मोक्ष मानते हैं।[1]

भगवतीचरण वर्मा ने सन् 1950 में "वासवदत्ता का विषपान" लिखा। इसमें भी धर्माधिकारियों के घृणित जीवन का प्रतिपादन है। इसमें सोमदत्त सन्यास ले लेता है और धर्म की ओट में सभी प्रकार का भ्रष्टाचार करता है। उस वैरागी के लिए मदिरा अनिवार्य चीज़ है। मालती से चरस और मदिरा मँगवाने की वह आदेश देता है "एक छटाँक चरस और एक बड़ा कच्ची अँगूरी मदिरा। यह छिपाकर भेजना जिससे अरवालों को पता न चले"[2]।

---

1. उदयशंकर भट्ट - शक विजय - तृतीय सं०, तृतीय अंक - पृ० 57
2. भगवती चरण वर्मा - वासवदत्ता का विषपान - प्रथम सं० - पृ० 183

"ललित विक्रम", "नील कंठ", "धर्म विजय", "सुन्दर रस", "उजाला" आदि नाटकों में साधुओं के ढोंग का चित्रण पाया जाता है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के "ललित विक्रम" 1953 में ब्राह्मणों का ढोंग दिखाया गया है । ललित का कथन है "पाखण्डी, बुरे कर्मवाले, बिल्ली और बगुले के ऐसे व्रत का रूप धरे हुए, वेद विद्या से शून्य ब्राह्मणों से बात भी न करें । इस प्रकार के ब्राह्मण बक और मार्जार वृत्ति के नीचे पाप छिपाकर अल्प-बुद्धि और अबोध नर-नारियों की वंचना और ठगी करते फिरते हैं । इनको तो पानी भी न दो । ये झूठे ब्राह्मण अंध नरक में गिरेंगे"[1] ।

"नीलकंठ" में भी वर्मा जी ने उदरपूर्ति केलिए भोली जनता का रक्त चूसनेवाले पाखंडी साधुओं का चित्रण किया है । बेचारी जनता इन पूज्य महात्माओं" की सेवा शुश्रूषा करके अपने को धन्य समझती है । उदाहरणार्थ, शिप्रा के तट पर साधु वेष धारण किए ध्यान मग्न बैठा है कल्लू । उसकी पूजा केलिए भक्त गृहस्थ सम्मिलित होते हैं । कल्लू की तलाश में वहाँ पहुँचने-वाली पुलिस उसे पकड़ लेती है । इस पर गृहस्थ लोग क्रुद्ध होते हैं । उनको समझाते हुए पुलिस सिपाही का कहना है "इन साधुओं की जितनी सेवा पूजा करो, इनका दिमाग उतना ही आसमान में चढ़ता है"[2] । इस प्रकार के प्रकरण उनके अन्य नाटकों में भी द्रष्टव्य हैं ।

"धर्म विजय" नाटक में स्त्रियों को बहकाकर उनके आभूषणों की चोरी करनेवाले साधुओं का चित्रण मिलता है । ब्राह्मण वज्रमुठ नगर की एक स्त्री को पुत्र-लाभ का प्रलोभन देता है । इस बहाने वह काफी स्वर्ण मुद्राएँ

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - तृ.सं. पहला अंक - छठवाँ दृश्य पृ.37
2. वृन्दावनलाल वर्मा - नील कंठ, चतुर्थ सं. तीसरा अंक, दूसरा दृश्य पृ.73

पैठ लेता है । अगणक उसे पकड़करराजपुरोहित के पास ले जाता है और कहता है - "म - म - म - म - म मैं ने इसे रंगे हाथों पकड़ा है । उ - उ - उ - उस युवती का पति किसी कार्यवश बाहर गया है । य - य - यह उसके घर पूजा करवाने के निमित्त गया हुआ था । कि - कि - कि किन्तु अवसर पाकर इसने उसके आभूषणों को लेकर भागना चाहा । प - प - प - परन्तु उसने तुरन्त हल्ला कर दिया । ब - ब - ब - बस मैं ने पहुँचकर इसे पकड़ लिया"[1] ।

सन्यासियों का वेष धारण करके स्त्रियों के आभूषणों को चुराने वाले पाखंडी लोगों की आधुनिक समाज में भी कमी नहीं है ।

हमारे बीच ऐसे "साधु" भी हैं जो "औषधि" प्रदान करके बीमारों को स्वस्थ बनाने का दावा करते हैं । इन पर लोगों का विश्वास भी कम नहीं है ।

लक्ष्मीनारायण लाल के "सुन्दर रस" 1959 में ऐसे एक पण्डित पात्र का दर्शन होता है । यह पण्डित एक विशिष्ट औषधि का निर्माण करता है जो कुरूप को सुन्दर बनाने में समर्थ है । इसके बारे में पण्डित का कथन है "इस सुन्दर रस से वस्तुतः कोई सुन्दर नहीं होता, इसके विधिवत् सेवन से हृदय एवं मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव अवश्य पड़ता है कि पीनेवाला अपने आपको सुन्दर समझने लगता है"[2] ।

---

1. कालिदास कपूर - धर्म विजय - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ.9
2. लक्ष्मीनारायण लाल - सुन्दर रस - प्र.सं. तीसरा अंक, पृ.78

केदार और पंडितराज की पत्नी दोनों ने सुन्दर रस का पान किया । इसका परिणाम बड़ा विचित्र ही हुआ । दोनों पहले के जैसे बुक्स ही रहे ।

सन् 1958 में रचित "उजाला" का लेखक है कृष्ण बहादुर चन्द्रा । उजाला का एक पात्र है सुन्दरिया जो पंडितों और पुरोहितों की बातों पर विश्वास रखती है । सुन्दरिया को पंडित विश्वास दिलाता है कि अंधी राधिका के घर-प्रवेश के साथ घर का सत्यानाश हो जायगा । इस बात से डरकर सुन्दरिया, राधिका की परछाईं से भी भाग जाती है । पंडितों के ढोंग और पाखण्ड का विरोध करती हुई क्रुद्ध राधिका कहती है "पंडित शिवानंद का नाम है । मैं कहती हूँ कि इन पाखंडियों के चक्कर में मत पड़ो । यह सब पैसा वसूलने का तरीका है इनका । पाखंडी कहीं के ...."[1]।

नाटककार इस सत्य का उद्घाटन करता है कि ढोंग रचकर बेचारी जनता से पैसा वसूल करके ही वर्तमान युग के साधु लोग अपना जीवन निर्वाह करते हैं ।

धार्मिक क्षेत्र के अत्याचारों के प्रति नाटककारों की प्रतिक्रिया विविध रूपों में व्यक्त होती है । धर्म के मौलिक सिद्धान्तों से उनकी आस्था छूट गई है, यह नहीं कहा जा सकता । पर व्यर्थ, आचारबहुल धार्मिकता के प्रति उनमें एक प्रकार की उपेक्षा दृष्टिगोचर होने लगी है ।

---

1. कृष्ण बहादुर चन्द्रा - उजाला [1958] तृतीय अंक - पृ.58

धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है ?

आधुनिक नाटककार धर्म-विरोधी नहीं है । उनका विरोध धार्मिक अनाचारों से है । इसलिए वे धर्म के नाम पर प्रचलित भ्रष्टाचारों का खण्डन करते हुए उसके विशुद्ध रूप का समर्थन करना चाहते हैं । इस दृष्टि से जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का नाटक "प्रियदर्शी" 1962 विशेष उल्लेखनीय है ।

प्रस्तुत नाटक में "मिलिन्द" ने धर्म के सच्चे स्वरूप का परिचय दिया है । इसमें आचार्य उपगुप्त, सम्राट अशोक को धर्म के वास्तविक रूप से अवगत कराते हैं "धर्म संप्रदायों, आडंबरों, अहंकार और संकीर्णता की सीमाओं में घिरे हुए अन्धविश्वास का नाम नहीं है, वह तो विश्व मानव के हित केलिए किए जानेवाले प्रत्येक मनुष्य के निस्वार्थ कर्तव्य-पालन ही का नाम है"[1] ।

यहाँ नाटककार का मंतव्य यह है कि धर्म, केवल परम्परागत अन्धविश्वास नहीं है । मानव के प्रति मानव का कर्तव्य पालन है धर्म । इसका स्वच्छ रूप ग्राह्य है और विकृत रूप त्याज्य ।

धर्म और राजनीति का गठबन्धन

आधुनिक भारत के शासकों पर धर्माधिकारियों का प्रभाव कम नहीं है । नाट्य साहित्य में उसका प्रतिफलन मिलता है । ऐसी नाट्यकृतियाँ यद्यपि संख्या में कम हैं तथापि प्रवृत्ति की दृष्टि से प्रमुख होने के कारण उनकी भी चर्चा यहाँ की जाती है ।

---

1. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द - प्रियदर्शी - प्रथम सं. तीसरा अंक पृ.79

लक्ष्मी नारायण लाल ने "सूखा सरोवर" नाटक में राजनीतिक कार्यों में पुरोहितों के हस्तक्षेप का चित्रण किया है । सूखा सरोवर धर्म का प्रतीक है । एक व्यक्ति भागता हुआ सरोवर के पास आता है । वह तीस वर्ष से बन्दी गृह में बंद था । उसका अभी अभी मोचन हुआ है । सरोवर के सूख जाने पर राजा ने सारे बन्दियों को स्वतंत्र बना दिया था । पुरोहित, भाग आये व्यक्ति को होश में रहने का आदेश देता है तो पुरोहित से उसका कथन है -

"मैं होश में हूं
तुम्हें पहचानता हूं मैं
धर्म के पीछे राजनीति है तू
पुरोहित नहीं, राजा का वाहन है तू
मैं होश में हूं"[1] ।

यहाँ नाटककार यह दिखाता है कि आधुनिक जीवन में धर्माधिकारी राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं और उसके द्वारा स्वार्थ लाभ कर लेते हैं ।

कंचनलता सब्बरवाल की कृति है "अनन्ता" 1959 । यह भी धर्म और राजनीति के गठबन्धन का उद्घाटन करता है । राजनीति और धर्म के एक साथ गुंथ जाने की अनिवार्यता पर अनन्ता सन्देह प्रकट करती है । उसे समझाते हुए वृद्ध का वक्तव्य है "जहाँ धर्म का अर्थ केवल परम्परागत संस्कार ही रह जाए, वहाँ धर्म धर्म नहीं रह जाता है .... रह जाता है केवल बाह्याडम्बर मात्र और तब ही मानव का मूल्य मानव ही की दृष्टि में कम हो जाता है, वह तुच्छ हो उठता है और वह आश्रय लेता है राजनीति का दाव-पेंच का कृत्रिम रूप से अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए"[2] ।

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - सूखा सरोवर - प्रथम अंक - पृ.16
2. कंचनलता सब्बरवाल - अनन्ता - प्रथम सं. द्वितीय अंक-सातवाँ दृश्य - पृ.71

दोनों नाटकों का अभिप्राय यह नहीं कि धर्म मानव के विकासक्रम में बाधक है । उनमें स्थापित यही किया गया है कि राजनीति के क्षेत्र में धर्म के प्रवेश के कारण धर्म की पवित्रता मिट गई है ।

धार्मिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता का भाव

सभी भारतीय नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है । वह अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म का अनुष्ठान और प्रचार कर सकता है । इस धार्मिक स्वतंत्रता का उदात्त स्वर आधुनिक नाटकों में मुखरित हुआ है ।

उदयशंकर भट्ट का "शक विजय" धार्मिक स्वतंत्रता का समर्थन करता है । इसका पात्र वरद, मालवगण का राजकुमार है । सौम्या से उसका कथन है "मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब देश, धार्मिक स्वतंत्रता को वैयक्तिक मानकर देशी विदेशी का भेद समझ सके । उसी भावना में हमारे देश का कल्याण है"[1] ।

इसमें केवल धार्मिक स्वतंत्रता पर ही बल नहीं दिया जाता, अपितु देशी-विदेशी भेद चिन्तन से परे शुद्ध मानवतावादी दृष्टि रखना ही धर्म के लिए अभीप्सित माना जाता है ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - शकविजय - चतुर्थ अंक - प्रथम दृश्य - पृ. 95

इसी नाटक में शालकाचार्य भी धार्मिक - स्वतंत्रता की अभिलाषा प्रकट करता है "प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह यथेष्ट रूप से अपनी इच्छानुसार धर्म का पालन करें"[1] ।

वृन्दावनलाल वर्मा का "निस्तार" धार्मिक-स्वतंत्रता का उद्‌घोष करता है । अछूत रामदीन का विश्वास है "भगवान सबके हैं, किसी के बनाये या बनवाये हुए नहीं है"[2] । भगवान पर सबका समान अधिकार है । यही धार्मिक स्वतंत्रता का मूल तत्त्व है ।

"मृत्युंजय" 1957 नाटक में लक्ष्मी नारायण मिश्र ने धार्मिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति की है । उन्होंने अपने धर्म का इच्छानुसार आचरण करने की स्वतंत्रता पर बल दिया है । इस नाटक में पटेल से गांधी जी अपना विचार व्यक्त करते हैं कि स्वतंत्रता का अर्थ उनकी संस्कृति की स्वतंत्रता है । गाय की पूजा को वे अपनी स्वतंत्रता का अंग मानते हैं । उनकी दृष्टि में इसके बिना उनका गोपाल दूर हो जायगा[3] ।

सेठ गोविन्द दास के "रहीम" 1955 में भी इसका तात्त्विक समर्थन विद्यमान है । सम्राट अकबर ने सबको धार्मिक स्वतंत्रता दी है । उनकी इस नीति की चर्चा करते हुए रहीम से तुलसीदास का कथन है - "अपने अपने धर्म के अनुसरण की सबको पूर्ण स्वतंत्रता है । हिन्दू और मुसलमान को एक दृष्टि से देखा जाता है । मन्दिर और मसजिद एक से माने जाते हैं"[4] ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - शक विजय - तृतीय अंक - प्रथम दृश्य - पृ.59
2. वृन्दावनलाल वर्मा - निस्तार - दूसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.55
3. सेठ गोविन्द दास - मृत्युंजय - तृतीय सं. तीसरा अंक - पृ.129
4. सेठ गोविन्द दास - रहीम - दूसरा अंक - तीसरा दृश्य - पृ.45

भारत धर्म-प्रधान देश है । यहाँ अनेक धर्म वर्तमान हैं । सभी ही सारे धर्मों का लक्ष्य एक ही है लेकिन व्यावहारिक क्षेत्र में धार्मिक सहिष्णुता बहुत कम ही पायी जाती है । वैविध्य में अन्तर्निहित ऐक्य को पकड़ लेना भारतीय परंपरा की विशिष्ट प्रवृत्ति है । इससे प्रचोदन पाकर हमारे साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से धार्मिक भेद भाव का परिहार करना चाहा है । आधुनिक नाटककार इस दिशा में अग्रणी हैं ।

हरिकृष्ण प्रेमी ने सन् 1962 में "आन का मान" लिखा । इसमें उदात्त धार्मिक सहिष्णुता का उज्ज्वल प्रतिपादन है । नाटककार यह स्थापित करता है कि धार्मिक दृष्टि से उदार रहना सरकार केलिए भी आवश्यक है । इसलिए कहा गया है कि यदि एक धर्म को राजधर्म के पद पर आसीन किया जा सकता है, और दूसरे धर्मावलम्बियों के अधिकार इसलिए छीने जाते हैं कि वे राजधर्म को नहीं मानते तब संघर्षों और संग्रामों का तो जन्म होगा ही"[1] ।

"शकविजय" नाटक धार्मिक सहिष्णुता का अच्छा परिचय देता है । मालवगण का राजकुमार वरद, शकों को परास्त करके एक परिषद् की स्थापना करता है । परिषद् से एक नृपति आग्रह करता है "परस्पर धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भी आवश्यकता है । प्रत्येक नृपति, गण, जाति को उपेक्षित है कि वे एक दूसरे के प्रति उदार हों"[2] ।

उपर्युक्त नाटककारों की स्थापना यह है कि जनता को पूरी धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए । सभी धर्मों का समान आदर देश के हित केलिए परम आवश्यक है ।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी - आन का मान - दूसरा सं॰ दूसरा अंक - पृ॰92
2. उदयशंकर भट्ट - शकविजय - चतुर्थ अंक - पंचम दृश्य - पृ॰111

धर्मों का समान महत्व

स्वतंत्र भारत में सभी धर्मों को समान महत्व दिया गया है। सर्व धर्म समानता नाट्य साहित्य में विशेष रूप से प्रतिफलित पायी जाती है। उत्तम श्रेणी के नाटकों में से आवश्यक उदाहरण देते हुए हम इसका समर्थन करेंगे।

सेठ गोविन्द दास के "अशोक" 1957 में सम्राट अशोक राज - सभा में धर्म - संबंधी अपनी विचार धारा को यों प्रस्तुत करते हैं - "सद्धर्म के प्रचार का कोई भी यह अर्थ न समझे कि अन्य धर्मों का इस राज्य में कोई नीचा स्थान है। वैदिक धर्म, जैन धर्म, सद्धर्म और अन्य जो धर्म हैं वे एक सी पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं और देखे जायेंगे"[1]।

इसमें यद्यपि बौद्ध धर्म को सम्राट द्वारा सर्वथा उपादेय माना गया है तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य धर्म किसी भी दृष्टि से बौद्ध धर्म से निम्न स्तर के हैं। जो अपने धर्म पर पूरी आस्था रखता है वह कभी दूसरे धर्म की अवहेलना नहीं कर सकता। अविरोधी धर्म ही वास्तविक धर्म है।

सभी धर्मों को समान महत्व दिये जाने का आदेश "शक विजय" में पाया जाता है। राज मार्ग से आने जानेवालों के बीच धर्म संबन्धी वाद-विवाद चलता रहता है। उनमें से एक का कथन है "देखो बन्धु, कोई धर्म भी निन्दनीय नहीं है किन्तु तुम्हें हमारे धर्म की निन्दा करने का कोई अधिकार नहीं है"[2]।

---

1. सेठ गोविन्द दास - अशोक 1961 - तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.64
2. उदयशंकर भट्ट - शकविजय - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ.9-10

ऊपर के विवेचन से विदित यह होता है कि आधुनिक हिन्दी नाटककारों की धार्मिक दृष्टि अत्यंत उदार तथा विश्व जनीन है। धर्म की मध्य युगीन प्रवृत्ति सर्वथा लुप्त हो गई और धर्म के व्यावहारिक क्षेत्र में समन्वयवादी चेतना क्रमशः जागृत होने लगी है।

एकेश्वरवाद

आधुनिक युग की वैज्ञानिक चेतना ने हमारे साहित्यकारों के भौतिक दृष्टिकोण को ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टिकोण को भी अनुप्राणित किया है। धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में वैषम्य धीरे-धीरे मिटता जा रहा है। समग्र मानव समाज के लिए एक ही धर्म तथा एक ही ईश्वर की भावना ही कल्याणकारी है, यह सिद्धांततः ग्रहण किया जा चुका है। हिन्दी के नाटककार अपनी रचनाओं में "एक ईश्वर" वाद की स्थापना करते दिखाई देते हैं।

"धर्म की धुरी" में राधिका रमण प्रसाद सिंह एकेश्वरवाद का समर्थन करते हैं। हिन्दू - मुस्लिम संघर्ष के कारण अहमद की बीवी वैष्णव मन्दिर में शरण लेती है, अपने बेटे के साथ। वैष्णव मठाधीश का मुख्य चेला मुकुन्द अचंभे में पड जाता है। अहमद की बीवी उससे कहती है "जी, आपका राम तो हमारा भी रहमान ठहरा"[1]। इसका समर्थन करते हुए गांधीवादी संतसरन यों कहता है "नाम और रूप चाहे जो अलग हो, वह तो एक है - अकेला। क्या काशी और काबा - क्या मन्दिर, मस्जिद या गिरजा"[2]। नाटककार की दृष्टि में ईश्वर एक रूप और अभिन्न है।

1. राधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी - द्वितीय अंक प्रथम दृश्य पृ.36

2. वही

यही बात वृन्दावनलाल वर्मा के "ललित विक्रम" नाटक में भी पायी जाती है । इसमें नीलमणि का विश्वास है कि इन्द्र की स्तुति वर्ज्य है और वरुण की स्तुति वांछनीय । इसलिए वह राजपुरोहित सोम से कहता है कि वरुण की स्तुति की जाय । इसका विरोध करते हुए उससे सोम का कथन है "परमात्मा एक है । न दूसरा, न तीसरा, न चौथा । उसके नाम अनेक हैं । आत्मा दर्पण है । उसमें अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार परमात्मा को देखकर आज का काम आरंभ करो"[1] । यहाँ लेखक ने ईश्वर की अखंड सत्ता और शक्ति का समर्थन किया है ।

वृन्दावनलाल वर्मा की दूसरी रचना "हंस मयूर" 1948 में भी ईश्वर की एकता का समर्थन है । इसमें नरसूर उन्मद का नायक इन्द्रसेन और विदिशा का नाग-राजा रामचन्द्र के बीच वार्तालाप हो रहा है । रामचन्द्र नाग अपना मंतव्य यों प्रकट करता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नाम एक ही परमात्मा की विभिन्न शक्तियों का सूचक है"[2] ।

"महात्मा गांधी 1959 नाटक में नाटककार सेठ गोविन्द दास की स्पष्ट मान्यता है कि हर अलग धर्म का केवल एक ही रूप हो सकता है । विरुद्ध पुरुषियों में उसका आचरण करना मूर्खता है । प्रार्थना सभा में महात्मा गांधी के भाषण का एक दृश्य प्रस्तुत करते हुए लेखक ने इसकी पुष्टि की है । धर्म की व्याख्या करते हुए महात्मा गांधी कहते हैं "सब धर्म हर अलग एक ही है । तब सवाल उठ सकता है कि फिर वे अलग अलग धर्म क्यों ? जिस तरह आत्मा एक है पर शरीर अलग-अलग उसी तरह हम सब शरीरों को एक नहीं कर सकते पर सब शरीरों में एक आत्मा को देख सकते हैं । वही बात धर्मों के संबंध में भी है[3]

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - पहला अंक - छठवाँ दृश्य - पृ.29
2. वृन्दावनलाल वर्मा - हंस मयूर - छठवाँ सं. तीसरा अंक - पहला दृश्य,पृ.91
3. सेठ गोविन्द दास - महात्मा गांधी 1959, पाँचवाँ अंक - पाँचवाँ दृश्य पृ.128

ईश्वर तथा धर्म की एकात्मता पर आस्था आधुनिक युग की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है । धर्म ने रूढ़िवादिता छोड़कर यथार्थवादी वैज्ञानिक दृष्टि ग्रहण करने का आरंभ किया है । यही कारण है कि आधुनिक हिन्दी नाटककार नई विचारधारा को स्वीकार करके अपनी रचनाओं के माध्यम से उसका प्रसार करने लगे हैं ।

अन्धविश्वासों की आलोचना

आज के वैज्ञानिक युग में भी जनता धार्मिक अन्धविश्वासों में फंसी रहती है । इसकी विस्तृत चर्चा स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में पाई जाती है ।

महामारी, अकाल आदि को जनता अब भी ईश्वर के क्रोध का परिणाम मानती है । समाज की अधोगति का यह एक प्रमुख कारण है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के "ललित विक्रम" नाटक में यह बात उठाई गई है । अयोध्या के राजा रोमक की पत्नी ममता, लोगों के इस अन्धविश्वास के असली कारण पर विचार करती है । राजा से वह कहती है "बहुत से लोगों में विश्वास उत्पन्न हो गया है कि ये बारह वर्षों के अकाल देव कोप के कारण हुए हैं । वे आपको दोषी नहीं ठहराते । अकाल, प्रकृति के किसी विपर्यय के कारण पड़ते हैं, दुराग्रही और अन्ध विश्वासी इस बात को न जानते हैं न सुनते हैं।[1] आज भी ग्रामीण जनता प्रकृति के विपर्यय को देव कोप मानकर उसकी शान्ति केलिए धार्मिक अनुष्ठान करती है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - ललित विक्रम - चौथा अंक - पहला दृश्य - पृ.98

वृन्दावनलाल वर्मा के "नीलकंठ" नाटक का अन्यत्र उल्लेख हो चुका है। इसमें अन्धविश्वासों की पूरी भर्त्सना की गई है। लोग, साधु सन्यासियों को इतना पूज्य मानते हैं कि उनके हाथ और चरण से स्पर्शित वस्तुओं को भी वे अमृत मानते हैं।

प्रस्तुत नाटक में सिंधु नदी के तट पर ध्यान-मग्न साधु के सम्मुख कुछ गृहस्थ मिष्ठान्न की एक रकाबी रख देते हैं। साधु उसे अपने पैर के झटके से उलट पलट देता है। साधु के पैरों से स्पर्शित उस मिष्ठान्न को प्रसाद मानते हुए एक गृहस्थ कहता है "मेरेलिए तो आपके चरणों का छुआ हुआ यह मिष्ठान्न बड़ा प्रसाद हो गया। जानता था कि आप किसी से कुछ नहीं लेते। चरण स्पर्श से आपने मुझे सब कुछ दे दिया"[1]।

यहाँ यह स्थापित किया गया है कि हमारी जनता के दिल में साधु महात्माओं के प्रति अन्ध श्रद्धा अब भी विद्यमान है।

"खिलौने की खोज" नाटक में भी वर्मा जी अन्धविश्वासों की रूढ़ता पर प्रकाश डालते हैं। देहात के लोग अब भी धर्मांधता की गहराई में डूबे रहते हैं। उनके विचार से, देवताओं के रुष्ट हो जाने पर महामारी फैलती है और अकाल पड़ता है[2]। वे विश्वास करते हैं कि पुराने पापों का बदला लेने केलिए ही भगवान ने बीमारी को भेजा है[3]। रोग की शान्ति केलिए गाँववाले काली माई की पूजा करते हैं।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - नीलकंठ - तीसरा अंक - तीसरा दृश्य - पृ.71
2. वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज - पहला अंक - चौथा दृश्य - पृ.31
3. वही दूसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ.52

"पूर्व की ओर" में परम्परागत अन्धविश्वासों का अनावरण है । नागद्वीपवालों का यह विश्वास है कि द्वीप का कोई व्यक्ति जब कहीं दूर जाने लगता है तब उसका हाथ फूंकना प्रत्येक द्वीप निवासी केलिए अनिवार्य है । इससे वह मर्मदंश से बच जाता है[1] । इस प्रकार के अनेक अनाचारों की अर्थहीनता पर लेखक विचार करता है और स्थापित करता है कि अनाचारों तथा अन्ध - विश्वासों के कारण हमारी जनता प्रगति के पथ में प्रवेश नहीं कर पाती ।

कालिदास कपूर के "धर्म विजय" की महारानी का विश्वास है कि राजपुरोहित चक्रपाणि के अनुग्रह से ही उसे पुत्र लाभ हुआ है । राज-पुरोहित इसे भगवान शिव की कृपा मानते हैं[2] । लेकिन महारानी अपने विश्वास पर अटल रहती है और राजपुरोहित से कहती है "भगवान तो मूल है, परन्तु आपने उपक्रम न किया होता तो क्या मुझे महाराज के बुढापे में पुत्र-लाभ हो पाता"[3] ।

"उजाला" में कृष्ण बहादुर चन्द्रा यह दिखाता है कि चेचक के कारण अनेक गाँववालों की मृत्यु हो जाती है । फिर भी लोग देव-प्रीति केलिए धार्मिक पूजा - पाठ कर रहे हैं । इसके बारे में पुतली का कथन है "झूठमूठ के अन्धविश्वासों में पडकर कितने बिचारे तबाह हो गये । हर साल चेचक की बीमारी से लाखों आदमी मर जाते हैं । अंधे हो जाते हैं"[4] ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - पूर्व की ओर - तीसरा अंक - आठवाँ दृश्य - पृ.170
2. कालिदास कपूर - धर्म विजय - प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ.13
3. वही पृ.14
4. कृष्ण बहादुर चन्द्रा -उजाला - द्वितीय अंक - पृ.31

यहाँ नाटककार ने यह व्यक्त किया है कि अन्धविश्वासों के कारण कितने निरीह जनों के प्राण छूट जाते हैं ।

ऊपर हमने जिन नाटकों का उल्लेख किया है उनके अध्ययन से यह विदित होता है कि वर्तमान बौद्धिक युग में भी लोग परम्परागत रूढ़िवादिता का पालन करते रहते हैं । इसलिए नाटककारों ने जनता का ध्यान अन्धविश्वासों के खोखलेपन की ओर आकृष्ट किया है ।

एकता का सन्देश

भारत में विभिन्न धर्मों के बीच कभी कभी संघर्ष होता रहता है । हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक संघर्ष ने ही राष्ट्र को दो टुकड़ों में विभाजित किया । संघर्ष को समाप्त करके धार्मिक समन्वय लाने का प्रयत्न महात्मा गांधी द्वारा किया गया। उनके प्रयत्नों से तत्कालीन समाज प्रभावित हो उठा । हिन्दी नाटककार इससे अप्रभावित नहीं रहे । यह बात उनके नाटकों में दर्शित है ।

लक्ष्मी नारायण लाल की रचना "रक्तकमल" 1962 धार्मिक एकता का सन्देश देता है । इसमें डॉ॰ देसाई यह मानता है कि धार्मिक संघर्ष के कारण ही देश खंडित हो गया "इस देश को अलग-अलग टुकड़ों में बाँटने की जितनी जिम्मेदारी यहाँ के धर्मों की है, उतनी जिम्मेदारी यहाँ के इतिहास की नहीं"[1]।

1॰ लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - द्वितीय सं॰ पहला अंक - पहला दृश्य पृ॰42-43

भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है । फिर भी यह दु:ख की बात है कि यहाँ धर्म के नाम पर झगड़े होते रहते हैं । 'शक विजय' नाटक में इस बात पर खेद प्रकट करते हुए नाटककार उदयशंकर भट्ट, एक नागरिक के मुँह से धार्मिक एकता की घोषणा कराते हैं "हम, हम लोग भिन्न धर्मों को स्वीकार करते हुए भी मनुष्य के नाते भारतीय के नाते एक हैं"[1] ।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की दिशा में गांधी जी के प्रयासों का अंकन आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'पगध्वनि' 1952 नाटक में किया गया है । नोआखाली के गाँव के घर - घर में घूमकर गांधीजी धार्मिक एकता का सन्देश फैलाते हैं । इसका समर्थन करते हुए हमीद से शकूर का कथन है "हिन्दू-मुसलमान में वह [गांधी] भेद नहीं मानता है । वह कहता है हिन्दू मुसलमान भाई भाई है"[2] ।

यह केवल गांधी अथवा शकूर का ही दृष्टिकोण नहीं है । आधुनिक साहित्य तथा समाज में यह दृष्टि निरन्तर बल पकड़ती दिखाई देती है ।

भारत के विभिन्न धर्मों के आपसी संघर्ष का प्रतिपादन हरिकृष्ण प्रेमी के 'प्रकाश स्तंभ' 1954 में मिलता है । भारत के संघर्षयुक्त धार्मिक वातावरण पर प्रकाश डालते हुए नाटक का पात्र बाबा हारीत कहता है "आर्यों का मूल वैदिक धर्म अपना स्वरूप खो बैठा है । अनेक मतमतान्तरों ने जन्म ले लिया है । बौद्ध और जैन धर्म भी अपने आदर्शों और सिद्धान्तों को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं । प्रत्येक धर्म के अवलंबन करनेवाले भारत में केवल अपने धर्म को जीवित रखना चाहते हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति केलिए राज-सत्ता पर अपना अधिकार चाहते हैं और अधिकार पाने पर अन्य धर्मावलंबियों पर अत्याचार करते हैं"[3] ।

---

1. उदयशंकर भट्ट - शक विजय - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ.10
2. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - पगध्वनि - विद्यार्थी सं. तीसरा अंक - पृ.41
3. हरिकृष्ण प्रेमी - प्रकाश स्तंभ - प्रथम सं. दूसरा अंक - पहला दृश्य - पृ.51

यहाँ नाटककार धार्मिक संघर्षों की ही नहीं बल्कि सब प्रकार के अत्याचारों की भी अवहेलना करते हैं ।

ऊपर हम ने जिन नाटकों की चर्चा की है उन सबमें धार्मिक संघर्ष का चित्रण प्राप्त है । संघर्ष का प्रतिपादन एक लक्ष्य की सिद्धि केलिए किया गया है । वह लक्ष्य है धार्मिक समन्वय की स्थापना । इन नाटकों के सभी प्रमुख पात्र धर्म की मूल भूत एकता पर ध्यान देते हुए प्रतीयमान विरोधों का परिहार करना चाहते हैं । विरोध के परिहार के बिना सामाजिक मंगल की कामना व्यर्थ है । आधुनिक नाटककार इस बात से अपरिचित नहीं हैं । उपर्युक्त नाटक इसके उत्तम दृष्टांत हैं ।

दीवारें गिरती हैं

स्वतः आधुनिक भारत की धार्मिक सहिष्णुता केवल सैद्धान्तिक समन्वय तक सीमित रहनेवाली नहीं है । उसका प्रवेश जनता के व्यावहारिक जीवन में भी हुआ है । इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है चिराचरित सामाजिक धार्मिक संकीर्णता को तोड़ते हुए विधर्मी विवाहों का प्रचलन । यह एकदम क्रान्तिकारी घटना है । साहित्य में सामान्यतया और विशेष रूप से नाट्य साहित्य में इस प्रवृत्ति द्वारा धार्मिक एकता की स्थापना का प्रयत्न दृष्टव्य है ।

राधिका रमण प्रसाद सिंह के "धर्म की धुरी" में विभिन्न धर्मावलंबी सदस्यों से युक्त चीनी परिवार का उल्लेख मिलता है । इसमें संतराम की उक्ति है "अजब नहीं कि दो दिन बाद यह पता पाना भी मुश्किल होगा कि कोई क्या है - हिन्दू, मुस्लिम, क्रिस्तन या बौद्ध चूंकि धर्म की लौ अन्दर होगी, बाहर नहीं । जानते हो न, चीन के अन्दर एक ही परिवार में पति है बौद्ध तो पत्नी ईसाई और पुत्र मुसलमान"[1] ।

1. राधिका रमण प्रसाद सिंह - धर्म की धुरी - तृतीय अंक - दूसरा दृश्य-पृ.79

यहाँ लेखक ने विधर्मी विवाह के फलस्वरूप एक ही परिवार में तीन विधर्मियों का संयोग दिखाया है। यह विधर्मी विवाह धार्मिक एकता का समर्थन करता है।

हरिकृष्ण प्रेमी के "प्रकाश स्तंभ" में भी विधर्मी विवाह के द्वारा धार्मिक एकता की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। इस नाटक का बाप्पा रावल हिन्दू वीर है। उसका विवाह यवन कन्या हमीदा से होता है।

इन प्रकरणों द्वारा नाटककार यह सन्देश देते हैं कि भारतीयों को अपने धार्मिक भेद भाव छोड़कर एकता और प्रेम के साथ रहना है। इसलिए ही वे विधर्मी - विवाह का समर्थन करते हैं।

<u>आधुनिक सामाजिक चेतना का प्रभाव</u>

हमारा समाज फैशन के मोह में अधिकाधिक ग्रस्त होता जा रहा है। शिक्षितों की संख्या बढ़ती रहती है। नवीन विचारों से वे खूब प्रभावित होते रहते हैं। ईश्वर और धर्म पर नई पीढ़ी का विश्वास कम होता जा रहा है। वह नास्तिकता की ओर झुक रही है। अतः स्वाभाविक है कि आधुनिक नाटकों में इसका प्रभाव लक्षित हो। वृन्दावनलाल वर्मा, उदयशंकर भट्ट लक्ष्मी नारायण लाल, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह आदि के नाटकों में यह बात पायी जाती है।

वृन्दावनलाल वर्मा के "खिलौने की खोज" में आधुनिक समाज की नास्तिकता का चित्रण है । इस नाटक का डॉ॰ मलिक नास्तिक है । वह, माई के भजन करनेवालों की खिल्ली उड़ाता है । वह कहता है - "सब का सब गाँव कुछ दूर जाकर हल्ला - गुल्ला करते करते अधमरा हो जाया करे तो बहुत ही अच्छा हो । किसी के सिर कोई देवता भी आया था ? क्या कहता था"[1]

सन् 1953 की रचना "मंगल सूत्र" में वृन्दावनलाल वर्मा धर्म और ईश्वर के प्रति उपेक्षा रखनेवाले, पैसे को ही परमेश्वर माननेवाले आधुनिक समाज का अंकन करते हैं । इसके रोहत का विचार है कि आर्थिक आधारों पर स्थापित धर्महीन समाज बहुत दिनों तक टिक नहीं सकता[2] । समाज के भविष्य के संबंध नाटककार की व्याकुलता यहाँ स्पष्ट होती है ।

उदयशंकर भट्ट का नाटक है "नया समाज" 1955 । इसके जमीन्दार मनोहरसिंह का बेटा चन्द्र बदन सिंह धर्म के प्रति उपेक्षा रखनेवाला है । वह आधुनिक युवा-पीढ़ी का प्रतिनिधि है । वह महाभारत की कथा से अनभिज्ञ है । उसकी दृष्टि में यह सब एक पचड़ा है, एक बकवास[3] ।

धर्म के प्रति उपेक्षा - भाव का प्रतिपादन लक्ष्मी नारायण लाल के "रक्तकमल" में भी किया गया है । इस नाटक का पात्र कमल ईश्वर पर विश्वास नहीं रखता । उसका विचार है कि युग-युगों से ईश्वर पर भक्ति और पूजा-पाठ का अनुष्ठान किये जाने पर भी जनता की गरीबी, दीनता और गुलामी की सीमा :

1• वृन्दावनलाल वर्मा - खिलौने की खोज - पहला अंक - दूसरा दृश्य - पृ•13

2• वृन्दावनलाल वर्मा - मंगल सूत्र - चतुर्थ सं• तीसरा अंक - चौथा दृश्य - पृ•88

3• उदयशंकर भट्ट - नया समाज - दूसरा सं• प्रथम अंक - प्रथम दृश्य - पृ•4

घोर अन्धकारपूर्ण जीवन में आधुनिक मानव का कोई सहारा नहीं । स्वभावतः धर्म पर जनता का विश्वास घटता जा रहा है । अपनी इस मान्यता का प्रतिपादन करते हुए वह महावीर से कहता है "युग युग से तो यह देश पूजा-पाठ करता आ रहा है, ऋषि मुनियों के धार्मिक उपदेश सुन रहा है, लेकिन इससे मनुष्य के जीवन में कहीं से प्रकाश तो नहीं आया । उसी दीनता, फूट, गरीबी, गुलामी और मन के घोर अन्धकार में ही तो मनुष्य डूबा है"[1] ।

ईश्वर और धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की रचना "नज़र बदली बदल गए नज़ारे" 1961 में देखा जा सकता है । इसके ठाकुर साहब के अनुसार कृष्ण जन्माष्टमी जैसे त्योहारों को मनाना अनावश्यक है । जमीन्दारी के समाप्त होते ही ईश्वर पर भी उसका विश्वास टूट गया है । पुजारी से वह कहता है "तो मैं क्या करूँ ? भगवान आज मेरे होते तो क्या राज पाट चला जाता ? आज ही सोचिये - मेरा क्या कसूर जाने वह । वह चमन ही लुट गया जिसमें बहार आती रही उन दिनों । रह गया बस बंजर । अब मैं कैसे क्या कर सकता हूँ ? हाँ, जो पुरानी प्रथा चली आ रही है, बस उसे सीने पर पत्थर रख पान-फूल से निभा लेना ठहरा....."[2] ।

उद्धृत नाटकों के अवलोकन से यह विदित होता है कि हमारे आधुनिक नाटककार सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर है, पिटीपिटाई परम्पराओं का निराकरण आवश्यक समझनेवाले हैं । धर्म और ईश्वर आधुनिक मानव केलिए एक विशेष अर्थ में ही ग्राह्य है । मानव और मानव के मिलन केलिए वे बाधक न हों, यही उनकी दृष्टि है । बाधक होने पर दोनों त्याज्य हैं । कहने की आवश्यकता नहीं, नई सामाजिक चेतना से हमारे नाटककार काफी प्रभावित हैं ।

---

1. लक्ष्मी नारायण लाल - रक्तकमल - पहला अंक - पहला दृश्य - पृ.44
2. राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह - नज़र बदली बदल गए नज़ारे - द्वितीय अंक - दूसरा दृश्य - पृ.38

धर्म में मानवतावाद का प्रवेश

हिन्दी के आधुनिक नाटककारों की धार्मिक - सामाजिक दृष्टि अत्युदार दीख पड़ती है । वे धार्मिक संकीर्णता को मानव समाज केलिए अहितकर समझते हैं । इस उदार दृष्टि से अनुप्राणित अनेक नाटक हैं । उनमें प्रमुख का प्रतिपादन नीचे किया जाता है ।

हरिकृष्ण प्रेमी 'प्रकाश स्तंभ' में मानवता को ही सबसे बड़ा धर्म मानते हैं । हिन्दू राजा बाप्पा, यवन कन्या हमीदा से विवाह करना चाहता है । लेकिन नागदा - नरेश इस विजातीय विवाह का विरोध करता है । तब उससे बाप्पा का कथन है "मेरेलिए तो संसार में, केवल एक धर्म है और वह है मानवता"[1] ।

यहाँ सभी धर्मों को समान मानते हुए नाटककार ने मानवतावादी आदर्श की स्थापना की है ।

प्रस्तुत नाटक विश्वबन्धुत्व की भावना पर भी बल देता है । बाप्पा की माता ज्वाला, समाज में व्याप्त स्वार्थ की भावना को समाप्त करने की बात पर विचार करती है । तब हारीत इसका सुझाव यों देता है "उपाय है विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय । यह आर्य है, यह द्राविड और यह यवन इस प्रकार सोचने की मनोवृत्ति हमें त्यागनी होगी । हमें किसी पर अपना धर्म, अपने व्यवहार, अपनी परम्पराएं लादने की अभिलाषा छोड़नी होगी, हमें एक दूसरे से सामाजिक संपर्क बढ़ाने होंगे, विजयी और विजित की भावना को नष्ट कर समान बन्धु बनकर रहना होगा"[2] ।

1. हरिकृष्ण प्रेमी - प्रकाश स्तंभ - दूसरा सं० तीसरा अंक - दूसरा दृश्य - पृ० 12[?]
2. वही दूसरा संस्करण अंक पहला दृश्य - पृ० 4[?]

यहाँ भी लेखक ने सबके समन्वय पर बल दिया है और विश्वबन्धुत्व की घोषणा की है ।

"जगद्गुरु" 1958 में लक्ष्मी नारायण मिश्र मानवतावादी दिखाई पड़ते हैं । इस में आचार्य शंकर, लोक कल्याण पर अधिक ध्यान देने की बात करते हुए भारती को उपदेश देते हैं "अनेक धर्म, अनेक संप्रदाय लोक-काय के कोढ बन गये हैं । अपने मोक्ष की चिन्ता न कर हमें लोक कल्याण की चिन्ता करनी है"[1] ।

स्वार्थपरता वर्तमान मनुष्य को घेर चुकी है । मनुष्य ही मनुष्यका शत्रु बन गया है । यह स्थिति विश्व के अस्तित्व केलिए विनाशकारी है । यही कारण है मानवतावाद का प्रचार हमारे नाटककारों को आवश्यक प्रतीत हुआ । यह मानवीय दृष्टि मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बनाती है । मनुष्य के मन में असीम करुणा और दया की प्रतिष्ठा करती है । त्याग की ओर उसे प्रवृत्त बनाती है । इसी भावना के अन्तर्गत "वसुधैवकुटुम्बकम्" का आदर्श भी स्वीकारा गया है । आलोच्य युग में गांधीवादी विचारधारा इसका समर्थन करती रही है । आश्चर्य नहीं, हिन्दी साहित्यकार इससे प्रभावित हो उठे और उन्होंने नाटकों में प्रासंगिक रूप से मानवतावादी आदर्श की प्रतिष्ठा की ।

1· लक्ष्मी नारायण मिश्र - जगद्गुरु 1958 - प्रथम सं॰ - पृ॰47

प्रत्यवलोकन

हिन्दी के आधुनिक नाटककार सामाजिक मंगल की कामना से प्रेरित होकर नाटकों की रचना करते हैं। उनकी अवधारणा है, सामाजिक-कल्याण में धर्म का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसलिए वे अपनी रचनाओं में वर्तमान समाज की धार्मिक स्थिति का प्रतिपादन करते हैं। देश के धार्मिक वातावरण से वे बिलकुल सन्तुष्ट नहीं हैं। इसलिए इस क्षेत्र में परिवर्तन लाना वे आवश्यक मानते हैं। अपने नाटकों के माध्यम से धर्म के स्वरूप में शुचिता तथा सभ्यता लाना भी उनका लक्ष्य है। धार्मिक कुरीतियों, पापाचारों और परंपरागत अन्धविश्वासों की कटु आलोचना इसी उद्देश्य से की गई है। साथ ही, हमारे नाट्य साहित्यकारों ने धर्म के वास्तविक स्वरूप का आदर्श भी उपस्थित किया है।

निष्कर्ष

1. सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि प्राय: सभी आधुनिक नाटक सामाजिक अवबोध से परिचालित हैं।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में धार्मिक जीवन के चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है।

3. धर्म के कुत्सित स्वरूप को हेय और सच्चे एवं आदर्श रूप को ग्राह्य माना गया है।

4. वर्तमान धार्मिक स्थिति के प्रति लेखकों का असंतोष पूर्णत: प्रतिफलित होता है।

5. आधुनिक नाटककार मानवतावाद के पूरे समर्थक हैं।

6. उनका मंतव्य है कि धर्म के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आवश्यक है।

****

उपसंहार

उ प सं हा र

पिछले अध्यायों में स्वातंत्र्योत्तर नाटकों की सामाजिक चेतना का साांगोपांग निरूपण किया गया है । इससे उत्तरोत्तर इस तथ्य का उद्घाटन होता रहा है कि भारतीय जनता अपने जीवन के बंधनों को तोड़ने में बद्ध परिकर हो रही है और उसकी अभिव्यक्ति ही आलोच्य कालीन नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है । साहित्य की सभी विधाओं में इस प्रक्रिया की अभिव्यक्ति हो रही है । पर नाटक में ही इसकी सशक्त अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है । अन्य साहित्यिक विधाऍं मुख्यत: पुस्तकीय हैं जबकि नाटक जीवन से सीधे संबद्ध । नाटक में ही युग का राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पक्ष प्रतिफलित होता है । युग परिवर्तन के कारण सामाजिक मूल्यों में जो परिवर्तन होते रहते हैं ये सब नाटक में ही सफलतापूर्वक अभिव्यंजित होते हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की भारतीय समाज अनेक रूढ़ियों अन्ध विश्वासों, और रीति रिवाजों से ग्रस्त था । जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार-प्रथा आदि अपरिवर्तनीय मानी जाती थी । नारी युगों से पीड़ित रहती थी । अछूतों की दशा अत्यंत शोचनीय थी । पर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद स्थिति बदल जाती है । जाति व्यवस्था के बन्धन ढीले पड़ने लगे हैं ।

नारी समाज और दलित वर्ग जाग उठा । संयुक्त परिवार प्रथा टूट गई । पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव स्वरूप राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों में नवीन आदर्श और मूल्य उठ खडे हुए । पूर्व की अपेक्षा वर्तमान सामाजिक जीवन अधिक जटिल हो गया है । व्यक्तिवाद सर्वत्र प्रबल हो रहा है । जीवनमूल्यों की अवधारणा बदल रही है । आधुनिक साहित्य इस सांस्कृतिक - सामाजिक परिवर्तन का अभिव्यंजक है । स्वातंत्र्योत्तर नाट्य साहित्य इस अवस्थान्तर का विशेष परिचायक है ।

सामाजिक चेतना की सीधी अभिव्यक्ति आधुनिक साहित्य की अपनी विशेषता है । पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के संपर्क से भारतीय जनजीवन में नव जागृति उत्पन्न की । ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज आदि धार्मिक - सांस्कृतिक संस्थाओं तथा इसाई मिशनरियों की बहुमूल्य सेवाओं ने हमारे साहित्य के विकास में पर्याप्त सहायता दी । उस समय तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में ब्रज भाषा का ही राज था । ब्रज भाषा काव्योचित थी, पर [illegible] जीवन की कटु अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की क्षमता उसमें नहीं थी । इस आवश्यकता की पूर्ति खडी बोली (आधुनिक हिन्दी) के द्वारा हुई । इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर आधुनिक हिन्दी की विकास यात्रा प्रारंभ हुई । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, जिनकी साहित्यिक चेतना रूढि मुक्त तथा आधुनिकता बोध से संपृक्त थी, खडीबोली को उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक निबन्ध आलोचना आदि सारी साहित्यिक विधाओं केलिए उत्तम माध्यम के रूप में विकसित कर दिया । इन माध्यमों के द्वारा साहित्यकारों ने जनता की सामाजिक रुचि के परिमार्जन का कार्य ही मुख्यरूप से किया । अतः इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक साहित्य की सबसे सशक्त प्रवृत्ति सामाजिकता ही है । साहित्यकारों ने समाज कल्याण को साहित्य सेवा का प्रमुख ध्येय माना और इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये । सामाजिक कुरीतियों और बुराइयों के प्रति जनता को सचेत करना साहित्यकार का कर्तव्य माना जाने लगा है । उसके दिशा-निर्देशन का अनुसरण परोक्ष रूप से ही क्यों न हो, समाज करता रहता है ।

इस प्रसंग में यह स्मर्तव्य है कि पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से ही हिन्दी नाट्य साहित्य में सामाजिक चित्रण की प्रवृत्ति को उत्तेजित किया। फलस्वरूप समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा वैयक्तिक समस्याओं को लेकर विभिन्न प्रकार के नाटक लिखने में हमारे आधुनिक नाटककारों ने रुचि ली।

यह तो निर्विवाद है कि आधुनिक नाटकों का आरंभ भारतेन्दु - युग में ही हुआ। उस समय से लेकर सामाजिक पक्ष का चित्रण नाट्य में स्पष्ट पाया जाता है। स्वयं भारतेन्दु ने नाटक का अपने सिद्धान्त प्रतिपादन के प्रबल माध्यम बना लिया था। उनके समकालीन नाटककारों ने भी नाटक को समाजोद्धार का सर्वोत्तम साधन स्वीकार किया। ऐतिहासिक नाटकों में भी तत्कालीन सामाजिक जीवन का प्रतिपादन दर्शित है। भारतेन्दु की दृष्टि नाटक के व्यावहारिक पक्ष के अतिरिक्त उसके सैद्धान्तिक पक्ष की ओर भी उन्मुख हुई थी। उस समय के नाटक रंगमंच पर अभिनीत भी हुए थे। जयशंकर प्रसाद और उनके सहयोगी नाटककारों ने इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। प्रसाद उच्च कोटि के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटकों के प्रणेता थे। फिर भी उनके नाटक तत्कालीन समाज के सच्चे दर्पण थे। अतएव सामाजिक भी। प्रसाद युगीन नाट्यकारों ने समाज के जीर्ण-शीर्ण रूप और अनाचारों के विरुद्ध आवाज़ उठायी। इस युग के नाटक मुख्यतः सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अनुप्राणित हैं। फिर भी उनमें सामाजिक चेतना का स्वर भी कम नहीं। प्रसाद युग में जो सामाजिक नाटक लिखे गए, वे अधिकाधिक यथार्थवादी रूप धारण करने लगे। बुद्धिवादी प्रेक्षकों को विशेषकर आकृष्ट किया। सामाजिक नाटकों के द्वारा प्रेक्षक अपने जीवन की व्यक्तिगत तथा समाजगत समस्याओं का बौद्धिक विश्लेषण अधिक चाहने लगे। फलस्वरूप प्रसादोत्तर काल में अनेक सामाजिक नाटक लिखे जाने लगे जिनमें व्यक्ति, समाज और परिवार की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण किया गया।

प्रस्तुत प्रबंध में केवल सामाजिक नाटकों का ही विश्लेषण नहीं है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, पौराणिक तथा धार्मिक नाटकों का भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इसमें विश्लेषण हुआ है। चार अध्यायों में प्रतिनिधि नाटकों की सामाजिक चेतना का विश्लेषण उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए किया गया है। युग की ज्वलंत सामाजिक समस्याओं के संबंध में नाटककारों के अपने दृष्टिकोण का भी स्पष्टीकरण हुआ है।

राजनीति आधुनिक सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग है। नाटकों में राजनीति की चेतना अतएव स्पष्टलक्षित होती है। भारत-विभाजन के फलस्वरूप राजनीति में जो परिवर्तन आये, सामाजिक जीवन पर उनका जो प्रभाव पड़ा इन बातों की भी चर्चा की गई है। इच्छाहीन जनता को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से नाटककारों ने सामाजिक परिस्थितियों का ज्यों का त्यों चित्रण अपने नाटकों में किया है।

स्वातंत्र्योत्तर नाटक देश की अर्थ-व्यवस्था को सामाजिक जीवनकी आधार-शिला मानते हैं। वर्तमान अर्थ-व्यवस्था पर आधुनिक नाटककार बिलकुल सन्तुष्ट नहीं। उनका अटल विश्वास है कि पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति पर ही देश की आर्थिक स्वतंत्रता निहित है। कृषकों और मज़दूरों का जागरण, कुटीर-उद्योगों का विकास सरकारी समितियों का प्रचार आदि के द्वारा ही देश का उद्धार संभव है।

भारतीय समाज और संस्कृति विशेष रूप से धर्म प्रवण है इसलिए नाटकों में धार्मिक परिवेश का प्रतिफलन स्वाभाविक ही है। आधुनिक नाटककार धर्म को सामाजिक जीवन से अलग नहीं मानते। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में स्वातंत्र्योत्तर भारत की धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में हैं आधुनिक नाटककार। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही उन्होंने धार्मिक मिथ्याडंबरों,

कुरीतियों तथा परम्परा गत अन्ध विश्वासों का डटकर विरोध किया है । वे विश्वबन्धुत्व और मानवतावाद की घोषणा करते हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर नाटकों के सामाजिक चित्रण के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि हमारा समाज निरन्तर गतिशील रहा करता है । उसमें नये नये परिवर्तन होते रहते हैं । पुरानी सामाजिक मान्यताओं, जीवन मूल्यों तथा नैतिक बोधों में विघटन शुरू होने लगा है । समाज का ध्यान अतीत की ओर नहीं, भविष्य के जीवन की उज्ज्वलता की ओर है । पुराने धार्मिक विश्वासों के स्थान पर आधुनिक भौतिकवादी जीवन दृष्टि को महत्व दिया जाने लगा है । यह सब समाज की ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति के लक्षण हैं । इन प्रवृत्तियों को पूर्णत: समेटने में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक समर्थ हुआ है । समाज के नवोत्थान और प्रगति के शीघ्रीकरण में इन नाटकों का महत्वपूर्ण योगदान अवश्य स्वीकार किया जायेगा, यही विश्वास है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि सारे आलोच्य नाटक सामाजिक अवबोध से परिचालित है । इनमें व्याप्त सामाजिक पक्ष की अभिव्यक्ति यह निष्कर्ष निकालती है कि स्वातंत्र्योत्तर नाटक उपरितल से ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक या धार्मिक दिखाई पड़े तो भी मूलत: वे सब सामाजिक नाटक ही हैं ।

****

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ - सूची

प्रबन्ध में चर्चित नाटक

सं.	नाटक	नाटककार	प्रकाशक, संस्करण
1	अंजो दीदी	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद दूसरा सं, 1956
2	अंधा कुआँ	डा. लक्ष्मीनारायणलाल	भारती भण्डार, प्रयाग पहला संस्करण
3	अंधी गली	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं. 1967
4	अजातशत्रु	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद उन्नीसवाँ सं.
5	अलग अलग रास्ते	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं. 1954
6	अनीता	डा. कंचनलता सब्बरवाल	- किताब महल, इलाहाबाद पहला सं. 1959
7	अपना पराया	राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह	- श्री राजराजेश्वरी साहित्य मंदिर पटना, दूसरा सं. 1960
8	अपनी धरती	धृती सत्न शर्मा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
9	अमर आन	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, जलंधर, पहला सं. 1964

10	अशोक	सेठ गोविन्द दास	भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली 1961
11	अवसान	जगन्नाथ नलिन	हिन्दी निकेतन, होशियारपुर
12	आधी रात	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी चौबीसवां सं. 1972
13	आन का मान	हरिकृष्ण प्रेमी	कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद दूसरा सं.
14	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
15	आहुति	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद चौबीसवां सं. 1972
16	उजाला	कृष्ण बहादुर चन्द्र	किताब महल, इलाहाबाद
17	उद्धार	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली चौथा सं. 1956
18	कर्मपथ	दयानाथ झा	हिन्दी भवन, इलाहाबाद पहला सं.
19	कवि भारतेन्दु	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पहला सं. 1955
20	कामना	जयशंकर प्रसाद	भारतीय भण्डार, इलाहाबाद
21	किसान	शील	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
22	कीर्ति स्तंभ	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
23	कुलीनता	सेठ गोविन्द दास	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर लि. बंबई पांचवां सं. 1955

24	केवट	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, चौथा सं 1959
25	कोणार्क	जगदीश चन्द्र माथुर	भारती भण्डार, इलाहाबाद पांचवां सं.
26	क्रान्तिकारी	उदयशंकर भट्ट	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली 1960
27	खंडित यात्राएं	नरेश मेहता	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई, पहला सं 1962
28	खिलौने की खोज	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, छठवां सं. 1973
29	गरीबी या अमीरी	सेठ गोविन्द दास	हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद दूसरा सं 1953
30	गरुड़ध्वज	लक्ष्मी नारायण मिश्र	गंगा प्रसाद एण्ड संस, दिल्ली 1948
31	चन्द्र गुप्त	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद तेरहवां संस्करण
32	चन्द्रहार	विष्णुप्रभाकर	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद पहला संस्करण, 1952
33	चाय पार्टियां	सन्तोष नारायण नौटियाल-	भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी पहला संस्करण, 1963
34	चिराग की लौ	रेवती सरन शर्मा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पहला सं. 1962
35	छलावा	परितोष गार्गी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

36	छठा बेटा	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद छठवाँ संस्करण, 1961
37	छाया	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली चौथा सं. 1958
38	जनमेजय का नागयज्ञ	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद, आठवाँ सं पहला सं
39	जय पराजय	उपेन्द्रनाथ अश्क	
40	जय जवान जय किसान	श्यामलाल मधुप	नवोत्थान प्रकाशन, दिल्ली पहला सं. 1966
41	जगद्गुरु	लक्ष्मी नारायण मिश्र	कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं.
42	जहर	जगत् ऋषि भटनागर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पहला सं. 1966
43	झाँसी की रानी	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झाँसी
44	तट और उसकी	चिरंजीत	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली पहला सं.
45	तीन आँखोंवाली मछली	लक्ष्मी नारायण मिश्र	रामनारायणलाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद पहला सं. 1960
46	तीन दिन तीन घर	शील	लोक भारत प्रकाशन इलाहाबाद पहला संस्करण
47	तीन युग	विमला रैना	किताब महल, इलाहाबाद
48	तोता मैना	लक्ष्मी नारायण लाल	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं. 1962

49	दर्पण	लक्ष्मी नारायण लाल	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली दूसरा संस्करण 1966
50	दशाश्वमेध	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी भवन इलाहाबाद, सोलहवां संस्करण, 1970
51	देखा देखी	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन झांसी, दूसरा सं. 1959
52	दाहर अथवा सिन्धपतन	उदयशंकर भट्ट	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली दूसरा सं. 19[illegible]2
53	धर्म की धुरी	राजा राधिकारमण प्रसाद-	श्री राजराजेश्वरी साहित्य मन्दिर, पटना, दूसरा सं. 1960
54	धर्म विजय	कालिदास कपूर	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1964
55	धरती माता	रघुवीर शरण मित्र	भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ चौथा सं 1963
56	धीरे धीरे	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, चौथा सं 1960
57	ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद सत्रहवां सं.
58	नया युग	पृथ्वीनाथ शर्मा	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली 1962
59	नया समाज	उदयशंकर भट्ट	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली दूसरा संस्करण
60	नये हाथ	विनोद रस्तोगी	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

61	नज़र बदली बदल गए नज़ारे	राजाराधिकारमणप्रसादसिंह-अशोक प्रेस, पटना	
62	न्याय की रात	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, तीसरा संस्करण
63	नाना फड़नवीस	डा. रामकुमार वर्मा	रामनारायणलाल बेनीप्रसाद इलाहाबाद, 1962
64	निर्माण	सैय्यद कासिम अली	हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ पहला सं 1960
65	निस्तार	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, चौथा सं 1973
66	नीलकंठ	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, चौथा संस्करण, 1973
67	नींव की ईंटें	कृष्ण किशोर श्रीवास्तव	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
68	नेफा की एक शाम	ज्ञानदेव अग्नि होत्री	राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली चौथा सं 1967
69	पञ्चध्वनि	चतुरसेनशास्त्री	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
70	पार्वती	उदयशंकर भट्ट	हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 195
71	पीले हाथ	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, छठवां संस्करण, 1962
72	पूर्व की ओर	वही	वही बारहवां संस्करण, 1974
73	प्रकाश	सेठ गोविन्द दास	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली 1958

74	प्रकाश स्तंभ	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद, दूसरा सं. 1962
75	प्रतिशोध	वही	वही तीसरा संस्करण 1956
76	प्रियदर्शी	जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद—गया प्रसाद शुक्ल, रूप कमल	आगरा, पहला सं. 1962
77	फूलों की बोली	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, छठवीं सं. 1962
78	बन्धन	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद पांचवीं सं. 1956
79	बांस की फांस	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, पांचवां सं. 1963
80	बिना दीवारों का घर	मन्नू भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण
81	बुझता दीपक	भगवती चरण वर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पहला संस्करण
82	भंवर	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद संशोधित पहला सं. 1961
83	भूदान यज्ञ	सेठ गोविन्द दास	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली दूसरा सं. 1961
84	मंगल सूत्र	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, चौथा संस्करण

85	ममता	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली चौथा सं. 1962
86	महात्मा गांधी	सेठ गोविन्द दास	भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली 1959
87	मादा कैक्टस	लक्ष्मी नारायणलाल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पहला सं. 1959
88	मुक्तिदूत	उदयशंकर भट्ट	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली 1960
89	मुक्ति का रहस्य	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1967
90	मोहिनी	परितोष गार्गी	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली पहला सं. 1964
91	मृत्युंजय	लक्ष्मी नारायण मिश्र	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद तीसरा संस्करण
92	रक्षा बन्धन	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद [illegible] सं. 1963
93	रक्त कमल	लक्ष्मी नारायणलाल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा सं. 1963
94	रक्तदान	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पहला सं 1962
95	राज्यश्री	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद दसवां संस्करण
96	रानी की लाज	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी बारहवां संस्करण

97	रात रानी	लक्ष्मी नारायण लाल	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली पहला सं 1962
98	राक्षस का मन्दिर	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, तीसरा सं. 1958
99	ललित विक्रम	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी तीसरा सं 1958
100	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- 1963
101	लोक देवता जागा	रामगोपाल शर्मा दिनेश	बाल भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं 1964
102	वासवदत्ता का चित्रपीठ	भगवती चरण वर्मा	भारती भण्डार, इलाहाबाद, पहला सं.
103	विक्रमादित्य	उदयशंकर भट्ट	हिन्दी भवन, इलाहाबाद, छठवाँ सं 1958
104	वितस्ता की लहरें	लक्ष्मी नारायण मिश्र	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली चौथा सं 1962
105	विजय पर्व	डा रामकुमार वर्मा	रामनारायण, इलाहाबाद दूसरा सं. 1957
106	विद्रोहिणी अम्बा	उदयशंकर भट्ट	मसिजीवी प्रकाशन, नई दिल्ली
107	विशाख	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद- सातवाँ संस्करण
108	विवास	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	अखिल भारतीय किसान परिषद वाराणसी, दूसरा संस्करण

109	विष पान	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्मा राम एण्ड संस, दिल्ली, पाँचवाँ सं 1958
110	शक विजय	उदयशंकर भट्ट	मसिजीवी प्रकाशन, नई दिल्ली तीसरा सं 1955
111	शपथ	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्मा राम एंड संस, दिल्ली दूसरा सं 195[illegible]
112	शशिगुप्त	सेठ गोविन्द दास	एस. चन्द एण्ड कं दिल्ली दसवाँ सं 1960
113	शतरंज के खिलाड़ी	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली 1955
114	शारदीया	जगदीश चन्द्र माथुर	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पहला सं 1959
115	शिव साधना	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी भवन, जालंधर, चौथा सं 1952 ठा सं 1961
116	सगुन	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी, चौथा सं.
117	समझौता	चावली सूर्य नारायण मूर्ति	पहला सं 1956
118	सरहद	कृष्ण बहादुर खन्ना	किताब महल, इलाहाबाद 1958
119	सन्यासी	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, तीसरा सं 1961
120	सन्तोष कहाँ	सेठ गोविन्द दास	
121	स्कन्द गुप्त	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद पन्द्रहवाँ संस्करण

122	स्वप्न भंग	हरिकृष्ण प्रेमी	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली चौथा सं॰ 1952
123	स्वर्ग की झलक	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद पांचवां सं॰
124	सागर विजय	उदयशंकर भट्ट	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली छठा सं॰ 1956
125	सांपों की सृष्टि	हरिकृष्ण प्रेमी	हंसल एण्ड कं॰ दिल्ली, तीसरा सं॰ 1966
126	सिंदूर की होली	लक्ष्मी नारायण मिश्र	भारती भण्डार, इलाहाबाद दसवां सं॰
127	सिद्धान्त स्वातंत्र्य	सेठ गोविन्ददास	भारतीय विश्व प्रकाशन, दि॰ 1958
128	सुन्दर रस	लक्ष्मी नारायण लाल	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पहला सं॰ 1959
129	सूखा सरोवर	66	66 पहला सं॰ 1960
130	सेवा पथ	सेठ गोविन्ददास	हिन्दी भवन, इलाहाबाद 1959
131	हंस मयूर	वृन्दावनलाल वर्मा	मयूर प्रकाशन, झांसी छठा सं॰ 1960
132	हवा का रूख	शील	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा सं॰ 1962
133	हर्ष	सेठ गोविन्द दास	भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली पांचवां सं॰ 1960
134	हिंसा या अहिंसा	66	चौखंबी विद्या भवन, वाराणसी, दूसरा सं॰
135	होरी	विष्णु प्रभाकर	हंस प्रकाशन, चौथा सं॰ 1961

आलोचनात्मक ग्रंथ [हिन्दी]

सं०	ग्रंथ	लेखक	प्रकाशक, संस्करण
1	अरी ओ करुणा प्रभामयी	अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी पहला सं० 1959
2.	अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ		नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं० 1960
3.	अशोक के फूल	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, सातवाँ सं० 1962
4.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी परिषद, प्रयाग तीसरा सं०
5	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० राम गोपाल सिंह चौहान	विनोद पुस्तक मंदिर, पहला संस्करण
6	आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी परिषद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पहला व दूसरा संस्करण
7	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्णलाल	
8.	आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानववादी भूमिकाएं	डा० देवेश ठाकुर	मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 197
9.	आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970
10	आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिद्धांत	डॉ० निर्मला हेमन्त	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली पहला सं० 1973
11	आधुनिक नाटक का मसीहा - मोहन राकेश	डॉ० गोविन्द चातक	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली पहला संस्करण 1975
12	आधुनिक निबन्धावली	सं० विद्यानिवास मिश्र	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1976
13	आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० कृष्णबिहारी मिश्र	आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली पहला सं० 1972

14	आजादी की कहानी	मौलाना अब्दुलकलाम आज़ाद	ओरियेंटल लौ ंगमैन्स, दिल्ली, प्रथम सं• 1965
15•	आस्था के चरण	डा• नगेन्द्र	पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पहला सं• 1968
16	इन्द्रधनु रौंदे हुए थे	अज्ञेय	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद पहला सं• 1957
17	उदयशंकर भट्ट = काव्य और नाटक	डा• सुरेशचन्द्रशर्मा	विमल प्रकाशन, गाजियाबाद पहला सं• 1972
18•	उदयशंकर भट्ट-व्यक्ति और साहित्यकार	सं• बाँके बिहारी भटनागर	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली पहला सं• 1965
19	कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ-पं• रामचन्द्रशुक्ल		हिन्दी समिति, समाचार विभाग, लखनऊ, दूसरा सं•
20	कला और संस्कृति	डा• वासुदेवशरण अग्रवाल	साहित्य भवन, इलाहाबाद
21	कायाकल्प	प्रेमचन्द	पंचम सं• 1954
22	कर्मभूमि	•	आठवाँ सं• 1950
23	कविता कौमुदि-दूसरा भाग - सं• रामनरेश त्रिपाठी-दूसरा सं•		
24	काँग्रेस का इतिहास	डा• पट्टाभिसीतारामय्या-	सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली, पहला सं• 1948
25	कुछ और कविताएँ	शमशेर सिंह बहादुर	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1973
26	कुछ चन्दन की कुछ कपूर की- विष्णुकान्त शास्त्री-हिन्दी ••		
27	कुटज	हजारी प्रसाद द्विवेदी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद तीसरा सं• 1970
28	खादी के फूल	हरिवंश राय बच्चन	पहला सं•
29	गबन	प्रेमचन्द	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 197?

30	गांधी पंचशती	भवानी प्रसादमिश्र	सरला प्रकाशन, दिल्ली, पहला सं• 1969
31	ग्राम्या	सुमित्रानंदनपंत	
32	गर्म हवाएं	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	
33	गोदान	प्रेमचन्द	
34	घरोंदे	रांगेय राघव	
35	घोंसले और सांप	लक्ष्मी नारायण लाल	
36	चकित है दु:ख	भवानी प्रसाद मिश्र	
37	चांद का मुंह टेढा है	मुक्तिबोध	भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता पहला सं 1964
38	चिन्तामणि पहला भाग	पं• रामचन्द्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस, पब्लिकेशन्स, प्रयाग, 1967
39	चेतना की शिखा	रामधारी सिंह दिनकर	पहला सं
40	जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायणमिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	शशिशेखर नैथानी	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पहला सं• 1969
41	झूठा सच - पहला और दूसरा भाग	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ 1961
42	तार सप्तक	सं• अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठप्रकाशन, कलकत्ता, दूसरा सं• 1966
43	तीन वर्ष	भगवती चरण वर्मा	
44	तीसरा सप्तक	सं• अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता
45	त्रिशंकु	अज्ञेय	सूर्य प्रकाश मंदिर, बिकानेर, 1978
46	देश द्रोही	यशपाल	विप्लव कार्यालय
47	दु:खमोचन	नागार्जुन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा सं• 1962

48	द्विवेदी काव्यमाला	महावीरप्रसादद्विवेदी	
49	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा॰लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	-राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली पहला सं॰
50	धर्म और समाज	डा॰एस॰राधाकृष्णन	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली पहला सं॰
51	धार के इधर उधर	हरिवंशराय बच्चन	
52	धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	भारतीय ज्ञानपीठ,काशी दूसरा सं॰1958
53	धूम शिखा	उदयशंकर भट्ट	
54	ध्रुवस्वामिनी का शास्त्रीय-विवेचन	डा॰पुरुषोत्तमदास अग्रवाल	- पहला सं
55	नदी फिर बह चली	हिमांशु श्रीवास्तव	
56	नया साहित्य:नये प्रश्न	नन्ददुलारे वाजपेयी	
57	नयी कविता-नये कवि	विश्वंभर मानव	लोकभारती,प्रकाशन, इलाहाबाद,दूसरा सं॰1968
58	नाट्य कला	रघुवंश	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पहला सं॰1961
59	नाट्य कला मीमांसा	सेठ गोविन्ददास	सूचना तथा प्रकाशन, सूचनालय, 1961
60	नाट्य निबन्ध	डा॰दशरथ ओझा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पहला सं॰
61	नाटक और यथार्थवाद	कमलिनी मेहता	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पहला सं॰
62	नाटक की परख	एस॰पी॰ खत्री	साहित्य भवन, इलाहाबाद तीसरा सं॰1959
63	नाटक के तत्व	कमलिनी मेहता	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पहला सं॰
64	नाटककार अश्क	सं॰ श्रीमती कौशल्या अश्क	नीलाभ प्रकाशन, वाराणसी पहला सं॰ 1954

65	नाटककार उदयशंकर भट्ट	मनोरमा शर्मा	आत्माराम एंड संस, दिल्ली, पहला सं०
66	नाटककार जगदीशचन्द्रमाथुर-डा० गोविन्दचातक-		1973
67	नाटककार सेठ गोविन्द दास-सावित्री शुक्ल		लखनऊ विश्वविद्यालय, 1958
68	नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व	विश्व प्रकाश दीक्षित बटुक	साहित्य सदन, दिल्ली, पहला सं० 1960
69	निबन्ध नवनीत	प्रताप नारायणश्रीवास्तव-	
70	निर्मला	प्रेमचन्द	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, चौथा संस्करण
71	नील कुसुम	दिनकर	उदयाचल, पटना, तीसरा सं० 1960
72	प्रसाद के नाटक: स्वरूप और संरचना	डा० गोविन्द चातक	साहित्य भारती, दिल्ली पहला सं० 1975
73	प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प	,,	आत्माराम एण्ड संस, पहला संस्करण
74	प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक-डा० भगवती शुक्ल		मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1971
75	प्रेमघन सर्वस्व		
76	परिमल	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला	
77	पल्लविनी	सुमित्रानंदन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, चौथा सं०
78	पिघलते पत्थर	रांगेय राघव	
79	फूल नहीं रंग बोलते हैं	केदारनाथ अग्रवाल	
80	बहता पानी	मन्मथनाथ गुप्त	
81	बावरा अहेरी	अज्ञेय	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद पहला सं० 1954
82	बीसवीं शताब्दी के	लाजपतराय गुप्त	कल्पना प्रकाशन, मेरठ

82 बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन — लाजपतराय गुप्त — कल्पना प्रकाशन, मेरठ, पहला सं॰ 1954

83 कुछ और समुद्र — रांगेय राघव

84 भट्ट निबन्धमाला पहला व दूसरा भाग

85 भारत भारती — मैथिलीशरण गुप्त — साहित्य सदन, झाँसी, उन्नीसवाँ सं॰

86 भारत का राजनैतिक इतिहास-राजकुमार — हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय दूसरा सं॰

87 भारत का सांस्कृतिक इतिहास-हरिदत्तवेदालंकार-आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली तीसरा सं॰ 1962

88 भारत की सुरक्षा — बलराज मधोक — नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 1967

89 भारतीय ग्राम-सांस्कृतिक परिवर्तन और आर्थिक विकास - पूरनचन्द्र जोशी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पहला सं॰ 1966

90 भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास — मन्मथनाथ गुप्त — आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1966

91 भारतीय नाट्य साहित्य सं॰डा॰ नगेन्द्र — एस॰ चन्द एण्ड कं॰दिल्ली पहला सं॰

92 भारतीय नारी-प्रगति के पथ पर - रजनी पनिक्कर

93 भारतीय समाज के स्वरूप डा॰ सीताराम झा श्याम - बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, बिहार, पहला सं॰ 1974

94 भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण — भगवतशरण उपाध्याय

95 भारतीय संस्कृति कुछ विचार- डॉ॰ एस॰राधाकृष्णन अनु॰ श्रीरामनाथ सुमन — पहला सं॰

96

96	भारतीय संस्कृति के उपादान - डा॰ डि॰एन॰ मजुमदार - एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1958		
97	भारतीय संस्कृति के प्रवाह - इन्द्र विद्यावाचस्पति		
98	भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य	गोपीनाथ तिवारी	हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1959
99	भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डा कमला कानोडिया	विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पहला सं॰ 1971
100	भारतेन्दु की नाट्यकला	प्रेमनारायण शुक्ल	ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, दूसरा सं॰
101	भारतेन्दु के नाटक	वासुदेव शुक्ल	,,
102	भारतेन्दु ग्रंथावली तीसरा भाग	सं॰ ब्रजरत्नदास	
103	भारतेन्दु नाटकावली पहला और दूसरा भाग	सं॰ ब्रजरत्नदास	
104	भारतेन्दु युग	राम विलास शर्मा	चौथा संस्करण
105	भारतेन्दु साहित्य	डा॰ राम गोपाल सिंह- चौहान	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पहला सं॰
106	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डा॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद, दूसरा सं॰
107	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	ब्रजरत्नदास	हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद, तीसरा सं॰ 1962
108	मनुष्य के रूप	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पाँचवाँ सं॰ 1961
109	महर्षि दयानन्द	यदुवंशी सहाय	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पहला सं॰ 1971
110	माधवमिश्र निबन्धमाला		

111	मिलन	रामनरेश त्रिपाठी	पाँचवाँ सं
112	मोहन राकेश की रंगसृष्टि	जयदेव वर्मा	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
113	युगवाणी	सुमित्रानन्दन पन्त	भारतीय भण्डार, आगरा, तीसरा सं,
114	रंगभूमि	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
115	रामचरितमानस	सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-काशी राज, वाराणसी पहला सं	
116	रामराज्य	शैलेन्द्र	
117	राष्ट्रभारती		राष्ट्रीय शिक्षा ग्रंथ माला, आगरा पहला सं
118	राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त	शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं दूसरा सं / 1962
119	राष्ट्रीय और हिन्दी नाटक	विष्णुराम मिश्र	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पहला सं० 1960
120	रेणुका	दिनकर	उदयाचल, पटना, चौथा सं 1960
121	लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक	उमेशचन्द्र मिश्र	साहित्य भवन, इलाहाबाद, पहला संस्करण 1959
122	विचार और वितर्क	हजारी प्रसाद द्विवेदी	" दूसरा सं 1961
123	विवेकानन्द	रोमां रोलां	[illegible] पहला सं
124	व्यक्तिचेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डा पुरुषोत्तम दुबे	अनुपमा प्रकाशन, बंबई, पहला संस्करण 1973
125	वृन्दावनलाल वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व	डा पद्मसिंह शर्मा कमलेश	बंसल एण्ड कं दिल्ली
126	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, पटना
127	समकालीन हिन्दी साहित्य	वेद प्रकाश शर्मा	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा पहला तीसरा सं 1972
128	साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	साहित्य सदन, झाँसी
129	साहित्य और कला	भगवतशरण उपाध्याय-आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, पहला सं 1960	

130	साहित्य का समाजशास्त्रीय मान्यता और स्थापना	श्रीराम महरोत्रा	रचना प्रकाशन, वाराणसी, पहला सं 1970
131	साहित्य चिन्तन	डा. रामकुमार वर्मा	
132	साहित्य की समस्यायें	शिवदान सिंह चौहान	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, पहला सं
133	साहित्य तथा साहित्यकार	डा देवराज उपाध्याय	मंगल प्रकाशन, जयपुर, पहला संस्करण, 1960
134	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध	महादेवी वर्मा	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
135	सेवासदन	प्रेमचन्द	
136	स्वप्न भंग	प्रभाकर माचवे	
137	स्वातंत्र्योत्तर भारत की झलक	बाबू राजेन्द्र प्रसाद	सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली
138	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण	हेमेन्द्र कुमार पानेरी	संघी प्रकाशन, जयपुर, पहला स
139	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	रामगोपाल सिंह चौहान	विनोद पुस्तक मंदिर, पहला सं
140	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	सं डा. महेन्द्र भटनागर -	नवभारती साक्षर प्रकाशन पहला सं. 1969
14	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	डा. बच्चन	राष्ट्रभाषा प्रकाशन, पहला सं
143	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन	विवेकी राय	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पहला सं
144	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य	रामगोपाल सिंह चौहान	
145	स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य	डा. रामगोपाल शर्मा दिनेश	
146	हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ	कृष्णाचार्य	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पहला सं 1966
147	हिन्दी के समस्या नाटक	डा विनय कुमार	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, पहला सं

148	हिन्दी नाटक	बच्चन सिंह	साहित्य भवन इलाहाबाद- पहला संस्करण
149	हिन्दी नाटक कोश	सं दशरथ ओझा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पहला सं 1975
150	हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन	रामचन्द्र महेन्द्र	..
151	हिन्दी पत्रकारिता	डा. कृष्ण बिहारी मिश्र	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली पहला संस्करण 1968
152	हिन्दी पत्रकारिता-विविध आयाम	सं. वेदप्रताप वैदिक	पहला सं 1976
153	हिन्दी साहित्य का इतिहास	पं. रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सोलहवाँ संस्करण
154	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	गणपती चन्द्र गुप्त	प्रथम संस्करण
155	हिन्दी साहित्य: युगीन सामाजिक चेतना	डा. रत्नाकर पाण्डेय	पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सं 1978
156	हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शती	सं. डा. नगेन्द्र	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा प्रथम सं 1972
157	हिन्दू	मैथिलीशरण गुप्त	साहित्य प्रेस, झांसी चौथा संस्करण
158	हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास	डा. कृष्णदेव उपाध्याय	सातवाँ संस्करण
159	हिमकिरीटिनी	माखनलाल चतुर्वेदी	भारती भण्डार, प्रयाग, तीसरा सं
160	हुंकार	दिनकर	

CRITICISM BOOKS (English)

1.	A History of India	Michael Edwards	
2.	A history of India	N.K. Sinha & Nisit Roy	Orient Longmans Ltd. New Delhi, Ist Ed.1973.
3.	A history of modern India (1740-1974 AD)	Iswari Prasad & S.K. Subedkar	The Indian Press publication Pvt.Ltd.Allahabad
4.	A new look on Modern Indian history	G.L. Grover & R.R. Sethi	S.Chand & Co. Delhi, 4rth Edn. 1979.
5.	A Survey of Indian History	K.M. Panicker	Asian publishing house 4rth Edn.

6.	Advanced study in the history of Modern India Vol.II	G.S. Chhavra	
7.	Advent of Independence	A.K. Majumdar	Bharatheeya Vidyabhavan, Ist Edn.
8.	An introduction to the study of literature	William Henry Hudson	George G.Harrap & Co. Ltd. London 2nd Edn. 1913
9.	Annie Besant	C.P.Ramaswami Iyer	Publication Dvn. Govt. of India, 2nd Edn.1971
10.	Britain in India	R.P. Masani	Oxford University Press London, 2nd Edn. 1962
11.	British Dominion in India and After	V.B.Kulkarni	Ist Edn.1964
12.	Dictionary of Literary terms	Harry shaw	MC.Graw Hill Book Co. Newyork,1972
13.	Discovery of India	Jawaharlal Nehue-Asaia publishing house,	Bombay, 1961
14.	Economic study of Modern India	D.H. Bhutan	
15.	Encyclopaedia of India's struggle for freedom	Jagadish Sharma	S. Chand & Co. Delhi, Ist Edn. 1971
16.	Evolution of Indian culture	B.N. Luniya	Educational publication, Agra
17.	Faminer in India	B.M. Bhatia	
18.	Fodor's India - 1972	Eugene Fodor	Hodder & Stonanghton
19.	Freedom struggle in India (1858-1909)	V.M. Ahluwalia	Ranjith Printers & publishers, Delhi, Ist Edn. 1965.
20.	History and culture of Indian people Vol.X/XI	Gen.Ed. R.C. Majumdar	Bharatheeya Vidhyabhavan Ist Edn.1965
21.	History of Freedom Movement in India Vol. I and III	R.C.Majumdar	K.L. Mukhopadhyaya Ist Edn. 1962.
22.	History of Indian National Congress	Pattabhi Sitharamayya	S.Chand & Co. Delhi, 2nd Edn.1969
23.			

23.	History of the Freedom Movement in India Vol. II,III & IV	Tharachand	Publications Dvn.Govt. of India
24.	India - A reference Annual 1974		-do-
25.	Indian and world civilization Vol. II	D.P. Singhal	Roopa & Co. Calcutta,197
26.	India from Curqon to Nehru and After	Durga Das	Collins, St.James Place, London 1969
27.	India Through the Ages	K.C. Vyas, D.R. Sardesai, S.R. Naik	Allied publishers, 2nd Edn.
28.	India Today	Ashok Mehtha	S. Chand & Co. New Delhi Ist Edn. 1974
29.	India of my dreams	M.K.Gandhi	
30.	India since 1526	V.D. Mahajan	S.Chand & Co. Delhi, 7th Edn.
31.	Indian Educational reforms in culturral perspective	T.M. Thomas	S. Chand & Co. Delhi, 1970
32.	Indian Literature since Independence	Ed.K.R.Srinivas Iyengar	Ist Edn.1973
33.	Indian National Movement and constitutional Development	D.C. Gupta	Vikas publishing house, Delhi, 3rd Edn.1976
34.	India's culture through the Ages	M.L. Vidhyarthi	Meenakshi Prakasan
35.	India's struggle for Freedom Vol.I	Jagadish sharma-	S.Chand & Co. Delhi,1962
36.	Labour Movement in India It's past and present	G.K. Sharma	Sterling publishers Delhi, 1971.
37.	Last years of British India	Michael Edwards	Ist Edn.
38.	Life and culture of Indian People A historical survey-	K.A. Neelakanta Sastri/ G.Sreenivasachari	Allied publishe pvt.Ltd.2nd Edn
39.	Mahatma Gandhi 100 years	Ed.S. Radhakrishnan -	Gandhi peace Foundation,Delhi, 1968.

40. Marriage and Family in India - K.M.Kapadia-Oxford University pres London 3rd Edn.1966

41. Modernity and Contempetory Indian Literature - proceedings of a seminar - Indian Institure of Advanced study, Simla 1968

42. My experiments with Truth M.K. Gandhi - Navajeevan Press, Ahmadbad, 1940

43. Nationalism and Social reform in India - Sitharam Singh - Ranjith Printers & publishers, Delhi

44. Oxford History of India - Vincent A Smith - Oxford University Pre London 3rd Edn.1961

45. Planning and the poor - B.S. Minhas - S.Chand & Co. Delhi,Ist Edn. 1974

46. Position of Women in Hindu Civilisation - Dr. A.S. Altekar - 3rd Edn.

47. Rajaram Mohan Roy - Saumyendranath Tagore - Publication Dvn. Govt. of India, April,1973.

48. Realism in Drama - H.K. Davis - Cambridge Press 1934

49. Recent Trends in Indian Nationalism - A.R, Desai

50. Social Background of Indian Nationalism ~~xxxxx~~ - A.R. Desai - Papular prakasan, Bomba 4rth Edn,1966 ~~xxxxx~~

51. Social change in India - B.Kuppuswamy - Vikas publications, Del

52. Social novel in England (1830-1850) - Louis Cazamian Trans.Martin Fido - Routledge & kegan pau Ltd. London, Ist Edn 1973.

53. Social Problems - John Lewis Gillian Clarence G.Dittmer Roy, J. Collert - Times of India, Bombay, 4rth Edn.

54. Socialism of my conception-M.K. Gandhi

55. Socialogy - A guide to problems and Literature - T.B. Bottomore - George Allen & Unwin Ltd. London Ist Edn. 1962

56. Sepoy Mutiny - R.C. Majumdar - Firma K.L. Mukhopadhyay Calcutta 2nd Edn. 1963.

57.	The Art of Drama	Ronald peacock	Rout ledge & Kegan Paul London 2nd Edn.
58.	The Cambridge History of India Vol.IV,V	Ed.Sr.Richard Burn - Ed.H.H. Dodwell	S. Chand & Co. Delhi, 1963
59.	The Complete prefaces of Bernard Shaw		Paul Hamlyn Ltd. London 1965
60.	The Concise cambridge History of English Literature-George Sampson -		3rd Edn.
61.	The Cultural Heritage of India Vol IV	Ed. Haridas Battacharya	
62.	The Development of Hindi Prose literature in the early 19th Century	Sarada Devi Vedalankar	Ist Edn.1969
63.	The Economic history of India (1873-1900)	Romesh Dutt	April 1963
64	The Foundations of new India	K.M. Paniker	Allen & Unwin Ltd. Ist Edn.
65	The Gazetteer of India Vol. I & II	Ed.P.N. Chopra	Ministry of Education & Social Service, Govt. o India 1973.
66	The rise and fall of East India Company	Ramakrishna Mukherjee	Popular prakasan, Bomba Ist Edn. 1973
67	The rise and growth of Hindi Journalism	Ramaratna Batnagar	
68	The problem play - A study in theory and practice	R.C. Gupta	Educational publishers Agra, Ist Edn.1961.
69	The study of Indian society	Hans Nagpal [redacted]	S.Chand & Co. Delhi 2nd Edn.
70	What is art and essays on art -	Leo Tolstoy Trans.Aylmer Maude	Oxford Univer Press, London 1962
71	Women in Mughal India	Rekha Misra	Ist Edn.
72	World History in the Twentieth Century	R.D. Cornwell	Longmans & Co. Ist Edn. 1969.

पत्र पत्रिकाएं

1 अनुराग - अप्रैल - जुलाई 1976 राष्ट्रीय हिन्दी परिषद

2 कल्पना - फरवरी 1974

3 धर्मयुग, 24 अक्टूबर 1976 सं. धर्मवीर भारती टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, बंबई

वही 4, जनवरी 1976 वही

4 नई धारा - अप्रैल - मई - जून 1970 सं. उदयराजसिंह अशोक प्रेस, पटना

5 प्रकर - मई - जून 1973 सं. विद्यासागर विद्यालंकार

6 विश्व भारती पत्रिका - जुलाई-सितंबर 1970 सं. रामसिंह तोमर

7 संचेतना - सितंबर - दिसंबर 1977 सं. डा. महीप सिंह